स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-107

इतिहास लेखन और इतिहास दर्शन

Historiography and Philosophy of History

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

MAAH-107
इतिहास लेखन और इतिहास–दर्शन
Historiography and Philosophy of History

पाठ्यक्रम

इकाई 1	इतिहास–परिचय, प्रकृति और क्षेत्र	03
इकाई 2	ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता	11
इकाई 3	मूल्य एवं इतिहास की विषय–वस्तु	16
इकाई 4	इतिहास : विज्ञान अथवा कला	22
इकाई 5	प्राचीन भारत में इतिहास की अवधारणा	29
इकाई 6	इतिहास और कारण	36
इकाई 7	इतिहास की संरचना एवं स्वरूप	43
इकाई 8	इतिहास में वस्तुनिष्ठता की समस्या	50
इकाई 9	ईसाई इतिहास–लेखन	56
इकाई 10	ग्रीको–रोमन परंपरा	61
इकाई 11	चीनी इतिहास लेखन	70
इकाई 12	इतिहास के आधुनिक दार्शनिक–हेगेल, मार्क्स, स्पैंगलर, टॉयनबी, आर.जी. कॉलिंगवुड	74
इकाई 13	भारतीय इतिहास लेखन का एक सर्वेक्षण–वैदिक, महाकाव्य और पौराणिक परंपरा	86
इकाई 14	भारत के प्राचीन इतिहासकार–बाण, बिल्हण, जयानक, कल्हण	94
इकाई 15	प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकार–आर.जी. भण्डारकर, के.पी. जायसवाल, आर. सी.मजुमदार, ए.के. कुमारस्वामी, डी.डी. कोशाम्बी	103

MAAH-107

इतिहास लेखन और इतिहास दर्शन

Historiography and Philosophy of History

परामर्श समिति

आचार्य सत्यकाम कुलपति,उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो.जे.एन.पाल पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो.हर्ष कुमार आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

प्रो.राजकुमार गुप्ता आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) वि.वि.,प्रयागराज

डॉ.सुनील कुमार सहायक आचार्य,प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा,,उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि.,प्रयागराज

लेखक **इकाई**

डॉ. मुकेश कुमार सिंह **1–15**

सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. अतुल कुमार सिनहा पूर्व आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रथम मुद्रण– मई, 2025

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. –978-93-48987-50-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे ंमिनियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही ंहै।

उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव की अनुमति से मुद्रित एवं प्रकाशित, 2025

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ो ंआदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नही ंहैं।

मुद्रक–चन्दकला यूनिवर्सल प्रा0लि0, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज–211002

इकाई 1 : इतिहास – परिचय, प्रकृति और क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 परिचय

1.3.1 इतिहास की परिभाषा

1.4 इतिहास की प्रकृति

1.4.1 इतिहास अतीत का अनुभव है

1.4.2 इतिहास का केंद्र मनुष्य होता है

1.4.3 सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है

1.4.4 निरन्तरता एवं प्रासंगिकता इतिहास के आवश्यक अवयव है

1.4.5 समय एवं स्थान की इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है

1.4.6 इतिहास अतीत तथा वर्तमान के बीच सेतु है

1.4.7 इतिहास अत्यन्त ही विविधता पूर्ण होता है

1.5 इतिहास का क्षेत्र

1.5.1 राजनीतिक इतिहास

1.5.2 सामाजिक इतिहास

1.5.3 आर्थिक इतिहास

1.5.4 सांस्कृतिक इतिहास

1.5.5 धार्मिक इतिहास

1.5.6 संवैधानिक इतिहास

1.5.7 कला इतिहास

1.5.8 विज्ञान एवं तकनीक का इतिहास

1.5.9 क्षेत्रीय इतिहास

1.5.10 सैनिक इतिहास

1.6 सारांश

1.7 संदर्भ पुस्तकें

1.8 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इतिहास मानव समाज के अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख विषयों में से एक है। यह विषय ऐतिहासिक युग के प्रारम्भ से मनुष्य के साथ किसी न किसी रूप में जुड़ा है। यह विषय साहित्य से लेकर विज्ञान होने तक की यात्रा के विभिन्न पड़ावों से गुजरा है। इतिहास का विषय अतीत है पर उसका परिप्रेक्ष्य वर्तमान रहता है। जब क्रोचे

ने इतिहास को समकालीनता से जोड़ा था तो कुछ विचारकों ने उनके ऊपर अतीत पर वर्तमान की वरीयता स्थापित करने का प्रयास माना। ऐसा भी माना गया कि इसमें इतिहास की वस्तुनिष्ठता प्रभावित होगी। लेकिन बीसवीं सदी में विज्ञान की निरपेक्ष वस्तुनिष्ठता असंदिग्ध नहीं रही। ऐसे में अब इतिहास का विद्यार्थी मान सकता है कि इतिहास वर्तमान के लिए ही होता है। इतिहास का महत्व इससे नहीं सिद्ध होता कि वह कितना वस्तुनिष्ठ है। ऐतिहासिक प्रवृत्तियों ने समाज को कितना प्रभावित किया, यह वास्तविक अध्ययन का क्षेत्र होता है। इतिहास की प्रकृति, इतिहास की यात्रा में शामिल तत्वों की विविधता से निर्धारित होती है। इतिहास किवंदतियों, लोक कथाओं, गाथाओं, मिथकों, भौतिक सामग्रियों आदि के रूप में मिश्रित होकर हम तक पहुँचता है। इतिहासकार का यह दायित्व होता है कि वह अपने विवेक का उपयोग करते हुए इतिहास के अंगीभूत तत्वों का परिप्रेक्ष्य निर्धारित करें एवं इतिहास की वास्तविक प्रकृति को उद्घाटित करें।

1.2 उद्देश्य

इतिहास क्या है ? यह प्रश्न जितना सरल है, इसका उत्तर उतना ही जटिल है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में मनुष्य का प्रत्येक कर्म मानव इतिहास का अंग है। अतः किन प्रक्रियाओं एवं व्यक्तियों को मुख्य इतिहास का अंग अथवा निर्माणक तत्व कहा जाय, यह इतिहासकारों का विचारणीय बिन्दु रहा है। इसी कारण इतिहास की परिभाषा एवं प्रकृति में बहुत विविधता दिखाई पड़ती है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम निम्नलिखित तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे –

1. इतिहास को विविध तरीके से परिभाषित किए जाने के आधार
2. इतिहास की प्रकृति का विश्लेषण
3. इतिहास के क्षेत्र की जानकारी
4. विविध इतिहासकारों का इतिहास के प्रासंगिकता पर विचार
5. इतिहास की जटिल प्रकृति के अंगीभूत तत्व

1.3 परिचय

इतिहास शब्द की उत्पत्ति इति+ह+आस शब्दों से मिलकर हुई है। इसका तात्पर्य है कि 'निश्चित रूप से ऐसा हुआ'। आचार्य दुर्ग ने अपनी 'निरूक्त भाष्यवृत्ति' में इतिहास शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए लिखा है–**''इति हैवमासीदिति यत् कथ्यते तत् इतिहासः''** अर्थात् यह निश्चित रूप से इस प्रकार हुआ था। यह जो कहा जाता है, वह इतिहास है। इतिहास के अर्थ के संदर्भ में जर्मन शब्द 'गेश्चिचटे' उल्लेखनीय है जिसका अर्थ है विगत घटनाओं का विशेष एवं बोधगम्य विवरण। यूनानी परम्परा में हेरोडोटस द्वारा इतिहास के संदर्भ में 'हिस्ट्री' को गवेषणा, खोज या अनुसंधान के अर्थ में ग्रहण किया गया। रेनियर ने 'हिस्ट्री' को एक स्टोरी या कहानी के रूप में परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। हेनरी पिरेन ने 'हिस्ट्री' को समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी बताया है। वर्तमान में 'हिस्ट्री' अथवा 'इतिहास' को अनेक संदर्भों में देखने का प्रयास किया जाता है। इतिहास के वर्तमान स्वरूप को लाने वाले इतिहासकारों ने रांके विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इतिहास में रांके की रूचि का प्रारम्भ 'संदर्भ और महत्व' की तलाश से शुरू हुई। तथ्यों की यथार्थता, सत्यता एवं अधिकारिता को वे सबसे महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने यूरोपीय अभिलेखागारों एवं पुस्तकालयों का भरपूर सर्वेक्षण किया। उन्होंने इतिहास के लिए एक विशिष्ट पद्धति तैयार करने का प्रयत्न किया। आगे चलकर अनेक इतिहासकारों ने इतिहास को एक विशिष्ट अनुशासन के रूप में विकसित करने में सहायता की। वर्तमान समय में इतिहास को बौद्धिक संस्कृति का अनिवार्य अंग और सामाजिक जीवन को समझने और बदलने का आवश्यक उपकरण माना जाने लगा है।

1.3.1 इतिहास की परिभाषा

'इतिहास' एक प्रमुख, प्राचीन एवं जटिल विषय के रूप में विकसित हुआ है। इस कारण इसे अनेक तरीके से परिभाषित करने एवं समझने का प्रयास हुआ है। कुछ लोगों ने इतिहास को एक कहानी, ज्ञान का शास्त्र, राजनीतिक विवरण, अतीत एवं वर्तमान के मध्य संवाद के रूप में परिभाषित किया है तो कुछ ने इसे सत्यान्वेषण एवं सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन का उपकरण माना है। यहाँ इतिहास के कुछ प्रमुख परिभाषाओं पर विचार करते हैं –

जी0एम0 ट्रेवेलियन के अनुसार, ''इतिहास अपने अपरिवर्तनीयअंश में कहानी है।'' इसी क्रम में **हेनरी पिरेन** का मानना है कि ''इतिहास समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी है।'' **रेनियर** ने भी इसी तरह से इतिहास को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''इतिहास में सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों के कार्यों एवं उपलब्धियों का उल्लेख होता है।'' वर्तमान समय में इतिहास को मनुष्यों की उपलब्धियों एवं उसकी कहानी तक सीमित नहीं रखा जा रहा है बल्कि वह परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने का उपकरण माना जा रहा है।कुछ इतिहासकारों ने इतिहास को एक सामाजिक विज्ञान या ज्ञान की एक विशेष शाखा के रूप में परिभाषित किया है। **चार्ल्स फर्थ** के अनुसार ''इतिहास मानवीय सामाजिक जीवन का वर्णन है। इसका उद्देश्य सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले सक्रिय विचारों का अन्वेषण है जो समाज के विकास में बाधक अथवा सहायक सिद्ध हुए हैं।

ए0एल0 राउज ने भी इससे मिलता–जुलता मत व्यक्त किया है। उनका मानना है कि ''इतिहास भौगोलिक तथा वातावरण के परिवेश समाज में रहने वाले मनुष्यों का विवरण है।'' सामाजिक तथा सांस्कृतिक उद्‌भव एवं विकास मनुष्य तथा पर्यावरण की अर्न्तक्रिया की प्रक्रिया पर आधारित होता है। अतः इसलिए इतिहासके अध्ययन के समय भौगोलिक परिस्थितियों तथा वातावरण पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।इतिहास को एक विशेष प्रकार का ज्ञान मानने वाले इतिहासकारों में **चार्ल्स फर्थ**उल्लेखनीय है। उनके अनुसार, ''इतिहास ज्ञान की एक शाखा नहीं, अपितु एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जो मनुष्य के दैनिक जीवन में उपयोगी है।''

क्रोचे और कॉलिंगवुड भी इतिहास को एक विशेष प्रकार का ज्ञान मानते हैं। **क्रोचे** कहते हैं कि, ''मनुष्य प्रकृति के परिमंडल की अपेक्षा स्वयं अपने परिमंडल को अधिक गहराई से समझ सकता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक ज्ञान के सापेक्षतावाद तथा इससे वैज्ञानिक ज्ञान के यथार्थवादी स्वरूप के पार्थक्य पर बल देकर वह ऐतिहासिक ज्ञान की विशेषताओं पर प्रकाश डालता है।''कॉलिंगवुड ने भी इतिहास को एक अद्वितीय प्रकार का ज्ञान माना है तथा यह मानव में सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत है। कुछ इतिहासकार इतिहास को विचारों के प्रवाह के रूप में देखते हैं। **कॉलिंगवुड** कहते हैं कि, ''सम्पूर्ण इतिहास विचारधारा का इतिहास होता है।'' मनुष्य का कार्य विचारपूर्ण होता है। इतिहास में विचार को प्रधानता देने का तात्पर्य है कि विचार ही मानवीय कार्य व्यापार का मूल स्रोत तथा उद्‌गम स्थल है।

कुछ इतिहासकारों ने इतिहास के वैज्ञानिक एवं समसामयिकता के संदर्भ में परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। इस संदर्भ में **जे0बी0 व्यूरी** की परिभाषा उल्लेखनीय है कि ''इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक।'' वैज्ञानिक विधा में रूचि रखने वाले इतिहासकारोंने विज्ञान की सार्वभौमता और अनुभवगम्यता से प्रभावित होकर वैज्ञानिक प्रविधियों को इतिहास में लागू करने का प्रयत्न किया। उनका मानना था कि यदि वैज्ञानिक विधियों का समुचित प्रयोग ऐतिहासिक अध्ययनों में किया जाय तो अतीत संबंधी अनेक नवीन तथ्य प्रकाश में आयेंगे तथा इतिहास की उपयोगिता में वृद्धि होगी। इतिहास को उपयोगी एवं सामाजिक मानने वाले इतिहासकारों में **क्रोचे** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके अनुसार, ''सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है।'' वस्तुतः **क्रोचे** का मानना था कि प्रत्येक वर्तमान इतिहासकार अतीत का अपनी दृष्टि से अवलोकन करता है। अतीतः को उस रूप में नहीं देखता जिस रूप में वह था।

इसी संदर्भ में **ई0 एच0 कार0**की परिभाषा भी उल्लेखनीय है कि ''वस्तुतः इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अर्न्तक्रिया की अविच्छिन्न, प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत संवाद संवाद है।'' इस प्रकार अतीत एवं वर्तमान के बीच चलने वाला निरन्तर संवाद है और अतीत तथा वर्तमान इतिहास में एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अतीत और वर्तमान के साथ ही कुछ इतिहासकारों ने भविष्य कथन को इतिहास का अंग माना है। **ओकशाट** के अनुसार, ''अतीत की आधारशिला पर वर्तमान का आर्विभाव हुआ है, जो मनुष्य के भविष्य का निर्णायक होगा।'' इसी संदर्भ में **डेवी** ने कहा है कि ''इतिहास का अध्ययन अतीत में रुचि, वर्तमान में सुरक्षा तथा भविष्य के निर्माण के लिए किया जाता है।''

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इतिहास निरन्तर गतिशील तथा अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों को अपने में समेटे हुए हैं। इतिहासकार इतिहास की सेतु पर बैठकर समसामयिक समाज को अतीत का अवलोकन कराता है। वह मानवता को सभ्यता का विकासक्रम बताता है। वह मानता है कि अतीत के उदाहरणों द्वारा वर्तमान को प्रशिक्षित करना तथा भविष्य का मार्गदर्शन करना इतिहास एवं इतिहासकार का दायित्व है।

1.4 इतिहास की प्रकृति

इतिहास एक अत्यन्त प्राचीन विषय है। इस कारण इसकी प्रकृति अत्यन्त ही विविधता से युक्त व जटिल भी है। यह अनेक शाखाओं एवं विशिष्टताओं को समेटे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक बार इतिहास अपने को स्वयं दोहराता है। लेकिन उसी घटना को अन्य दृष्टि से देखें तो प्रत्येक घटना अपने आप में विशिष्ट होती है। इतिहास अपनी घटनाओं की प्रकृति में समसामयिकता लिए हुए भी होता है। साथ ही उसमें अतीत का भी पर्याप्त प्रतिनिधित्व होता है। इतिहास में भविष्यवाणी करने की भी पर्याप्त क्षमता है। साथ वह इस बात को भी प्रकट करता है कि मनुष्य और उसके निर्णयों के बारे में कोई निर्णायक बात नहीं की जा सकती। प्राचीन एवं मध्यकालीन समाजों के इतिहास लेखन में अतीत के वर्णनात्मक अध्ययन को ही प्रमुखता प्राप्त है परन्तु आधुनिक युग में ऐतिहासिक अध्ययनों में वैज्ञानिक पद्धति को प्राथमिकता दी जाती है। वर्तमान समय में इतिहासकार का दायित्व अतीत का तथ्यपरक वर्णन करने से लिया जाता है। इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि इतिहासकार को अपने व्यक्तिगत पूर्वधारणओं से ऐतिहासिक तथ्यों को दूर रखना चाहिए। इतिहास एक अत्यन्त व्यापक विषय है जो मानव का अनेक क्षेत्रों में मार्गदर्शन करता है और बेहतर भविष्य के लिए रोशनी दिखाता है। एक विषय के रूप में इतिहास की प्रकृति को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है।

1.4.1 इतिहास अतीत का अनुभव है

अतीत का प्रत्यक्ष सम्भव नहीं होता। उसके बारे में उनके छोड़े गए सामग्रियों एवं उनके बारे में कहे गए विचारों के माध्यम से हम केवल अनुमान कर सकते हैं। ऐतिहासिक स्रोतों एवं पाण्डुलिपियों में उपलबध अतीत संबंधी सूचनाओं के आधार पर इतिहासकार अतीत की घटनाओं, परिवर्तनों एवं व्यक्तियों का परिकल्पनात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। रेनियर ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए अपने अनुभव के संस्मरण का सर्वोच्च महत्व है। प्रत्येक युग का मानव समाज अपने बच्चों को अतीत की कहानियां एवं संस्मरण सुनाता है तथा परम्परा के रूप में ज्ञान परम्परा एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती है। अशोक के धम्म का यथार्थ मूल्यांकन तभी सम्भव है जब इतिहासकार अपने को अशोक की स्थिति में रखकर तत्कालीन सामाजिक–धार्मिक परिस्थिति का अध्ययन करे। परम्पराओं का विवरण इतिहासकार को स्पष्टीकरण के लिए कारणों, उद्देश्यों, प्रभाव तथा गवेषणा के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करता है।

1.4.2 इतिहास का केंद्र मनुष्य होता है

इतिहास युगों–युगों से मनुष्यों के संघर्षों का विवरण है। पाषाण युग से वतर्मान समय तक में मनुष्य के जीवन में असंख्य परिवर्तन हुए है। इतिहास इन परिवर्तनों को अभिलेखित करने का प्रयत्न करता है। इतिहास ऐतिहासिक विकास के दीर्घकाल में प्रमुख व्यक्तियों एवं घटनाओं को उसके समकालीन संदर्भ में समझने का प्रयत्न करता है। इस विवरण से इस बात की भी जानकारी होती है कि मनुष्य का विकास विभिन्न कालों में किस प्रकार हुआ। मनुष्य का पर्यावरण से अनुकूलन भी ऐतिहासिक अध्ययन का ही अंग होता है। इतिहास के अन्तर्गत राष्ट्र एवं मानव की अर्न्तक्रिया तथा भौतिक व भौगोलिक संदर्भ का भी ज्ञान होता है।

1.4.3. सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है

महान इटालियन दार्शनिक एवं इतिहासकार **क्रोचे** की अभिव्यक्ति है कि ''सम्पूर्ण इतिहास समसामयिक इतिहास होता है।'' क्रोचे के इस वाक्य का अभिप्राय है कि प्रत्येक वर्तमान इतिहासकार अतीत का अपनी दृष्टि से अवलोकन करता है। घटनाएँ तथा विचार सभी इतिहास प्रवाह के अंग है। चूंकि उनकी विषयवस्तु का वर्तमान काल से संबंध होता है। इस कारण इतिहास सदैव समसामयिक होता है। अतीतकालिक घटना पेलोपोनेश्यिन युद्ध, कलिंग युद्ध, तरायन का युद्ध वर्तमान को क्या अभिरूचि दे सकता है, परन्तु इनमें से प्रत्येक उस क्षण इतिहास का स्वरूप धारण कर लेता है जब वर्तमान में हम अपनी आत्मिक अथवा वैचारिक आवश्यकता हेतु उसका पुनर्विस्तरण कर लेते है। जब अतीत के विषय में जिज्ञासापूर्ण अनुसंधान करते हैं तो यह हमारे व्यक्तित्व के साथ उतने घनिष्ठ रूप में जुटा रहता

है जितना कि हमारे वर्तमान कालिक अस्तित्व के विषय। इस प्रकार सामयिकता इतिहास का महत्त्वपूर्ण अभिलक्षण है। वस्तुतः इतिहास तथा जीवन का संबंध एकात्मकता से है। प्रमाणविहीन इतिहास निरर्थक होता है तथा परीक्षासिद्ध प्रमाण का संबंध सदैव वर्तमान से होता है।

1.4.4 निरन्तरता एवं प्रासंगिकता इतिहास के आवश्यक अवयव है

इतिहास मानव प्रगति का भार वहन करता है क्योंकि यह पीढ़ी दर पीढ़ी, समाज से समाज तक पहुँचता है। उसका यह गुण निरन्तरता की भावना का परिचायक है। इसके साथ ही इतिहास के अध्ययन में प्रायः उन्हीं घटनाओं को शामिल किया जाता है जो वर्तमान जीवन को समझने के लिए प्रासंगिक है। मनुष्य एवं राष्ट्र के जीवन का घटनाक्रम निरन्तर परिवर्तनशील होता है। उसी क्रम में ऐतिहासिक अध्ययन के परिप्रेक्ष्य बदल जाते हैं। अतीत में यह केवल वर्णनात्मक तरीके से क्रमबद्ध घटनाओं की सूची थी। लेकिन वर्तमान में आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक इतिहास लेखन को ही समयानुकूल माना जा रहा है। इस प्रकार प्रासंगिक विषयों के अध्ययन ही इतिहास में स्थायी महत्व के होते हैं।

1.4.5 समय एवं स्थान की इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है

इतिहास की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह समय एवं स्थान के संदर्भ में ही प्रासंगिक होताहै। इसका तात्पर्य है कि अतीत की घटनाओं का अध्ययन करते समय समकालीन स्थिति एवं समय को समझना होगा। समुद्रगुप्त के दक्षिणापथ विजय का अध्ययन करते समय समकालीन भारत के भौगोलिक वास्तविकताओं से परिचित होना होगा। इसके साथ ही उस काल में सक्रिय राजनैतिक–सांस्कृतिक परिदृश्य को भी जानना होगा। तरायन में पृथ्वीराज चौहान के अंतिम रूप से पराजित होना तत्कालीन भौगोलिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का अध्ययन हेतु प्रासंगिक होगा। इससे उस युग में हिन्दू राज्य पद्धति की कमजोरियों का भी पता चलेगा। इस प्रकार इतिहास हमेशा ही समय एवं स्थान के संदर्भ में प्रासंगिक होता है।

1.4.6 इतिहास अतीत तथा वर्तमान के बीच सेतु है

इतिहासकार **ई.एच.कार** का यह कथन है कि ''इतिहास, इतिहासकार तथा तथ्यों के बीच अर्न्तक्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया तथा वर्तमान और अतीत के बीच अनवरत संवाद है।'' यह संवाद एकाकी व्यक्तियों का नहीं है अपितु अतीत कालिक तथा वर्तमान कालिक समाज के बीच का संवाद है। अंतः अतीत और वर्तमान इतिहास एक–दूसरे से सम्पृक्त है। उल्लेखनीय है कि इतिहास में केवल अतीत और वर्तमान ही नहीं होते बल्कि भविष्य की जड़े भी होती है। वर्तमान में इतिहासकार समसामयिक समाज को अतीत की गवेषणा, अपने पूर्वजों की उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित तथा प्रोत्साहित करता है कि उसमें वर्तमान को बेहतर किया जाय। यही पर अतीत एवं वर्तमान संयुक्त रूप से सुसम्पन्न भविष्य की कल्पना करके अतीत की परम्पराओं को भविष्य की गोद में प्रक्षेपित करता है। इसी संदर्भ में **ओकशाट** का कथन प्रासंगिक है कि अतीत की आधारशिला पर वर्तमान का आर्विभाव है, जो मनुष्य के भविष्य का निर्णायक होगा।

1.4.7 इतिहास अत्यन्त ही विविधता पूर्ण होता है

इतिहास की उत्पत्ति को ध्यान में रखे तो यह स्पष्ट है कि इसका विकास साहित्य की एक शाखा के रूप में हुआ। प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परंपरा को देखें तो यह बात और भी प्रासंगिक हो जाती है। **हेनरी पिरेन** भी कहा है कि ''इतिहास प्राचीन काव्य है तथा काव्य के रूप में हमारी स्वभाव के अनुरूप है।'' प्राचीन एवं मध्ययुग में इतिहास के केंद्र में राजनैतिक जीवन रहा। लेकिन आधुनिक युग में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्ष इतिहास के अंगीभूत तत्व बन गए। इतिहासकार **बुशमेकर** ने कहा कि ''इतिहास मानव जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।'' इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन को निर्धारित करने वाले विविध पक्षों का अध्ययन इतिहास के अन्तर्गत होता है। इसी कारण इतिहास का वर्तमान स्वरूप अत्यन्त ही वैविध्यपूर्ण होता है।

1.5 इतिहास का क्षेत्र

इतिहास एक अत्यन्त प्राचीन अनुशासन है जिसका प्रत्येक समाज में अध्ययन होता है। इसक कारण आदिकाल से आधुनिक युग तक इतिहास के क्षेत्र में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इसके स्वरूप में होने वाले परिवर्तन का मुख्य कारक युगीन सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक आवश्यकताएँ रही है। प्रारम्भ में ऐतिहासिक चिंतन का उद्‌गम

अतृप्त ज्ञान तृष्णा को तृप्त करने के उद्देश्य से हुआ था। इतिहास के जनक हेरोडोटस ने इतिहास को अतीत के मानवीय कार्यों एवं उपलब्धियों की कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। रेनियर का मानना है कि प्रत्येक युग का समाज इतिहासकारों से कुछ प्रश्न करता है और इतिहासकार नवीन तथ्यों एवं अनुसंधानों के परिप्रेक्ष्य में उनका उत्तर प्राप्त कर समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। हेरोडोटस से लेकर वर्तमान पीढ़ी तक के इतिहासकारों ने इतिहास के क्षेत्र के प्रति हमेशा नवीन संभावनाओं समावेश किया है। उनके विचारों के आलोक में ऐतिहासिक क्षेत्र का वर्गीकरण निम्नवत किया जा सकता है।

1.5.1 राजनीतिक इतिहास

यह इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा है। प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास लेखन में राजनीतिक इतिहास की प्रधानता रही है। ए.एल. राउज ने इसे इतिहास की रीढ़ माना है। राजनैतिक इतिहास के माध्यम से महापुरुष या राजनेता अपने कृत्यों द्वारा समय के पृष्ठ पर अपनी छाप छोड़ते हैं। अतीत–संबंधी महापुरुषों के कार्यों, उपलब्धियों, सफलता और असफलता से युगपुरुष शिक्षा प्राप्त कर वर्तमान एवं भविष्य की रूपरेखा बनाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में अशोक, हर्षवर्धन एवं पृथ्वीराज चौहान के कार्यों से भविष्य की पीढ़ियाँ मार्गदर्शन लेती रही है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अध्ययन महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, बाल गंगाधर तिलक एवं गोपाल कृष्ण गोखले के जीवन–गाथा के अभाव में अधूरा रहेगा। उल्लेखनीय है कि भारत की स्वतंत्रता केवल जननायकों के प्रयास का परिणाम नहीं है बल्कि असंख्य भारतवासियों ने इस गौरवपूर्ण उपलब्धि में अपने बलिदान एवं त्याग से योगदान दिया है। वर्तमान राजनीतिक इतिहास लेखन में जन सामान्य के योगदान को अनुरेखित करने का विशेष प्रयास हो रहा है।

1.5.2 सामाजिक इतिहास

सामाजिक इतिहास भी इतिहास के अध्ययन का एक प्रमुख विषय है। इसमें सामाजिक वर्गीकरण, सामाजिक सोपान, स्त्रियों की स्थिति, शिक्षा संस्थाओं के विकास, स्त्री–पुरुष संबंधों का इतिहास आदि का अध्ययन किया जाता है। **कोम्ते** ने इतिहास को सामाजिक भौतिक शास्त्र कहा हैं इसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार के सामान्य नियमों का अध्ययन किया जाता है। बीसवीं सदी के इतिहासकारों ने सामाजिक इतिहास के अध्ययन पर विशेष बल दिया। प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास के अध्ययन को **राम शरण शर्मा, रोमिला थापर, अनन्त सदाशिव अल्तेकर** आदि के अध्ययनों में विशेष स्थान प्राप्त हुआ। **रेनियर एवं ट्रेवेलियन** के अध्ययनों में भी सामाजिक इतिहास के विविध पक्ष प्रकाशित हुए। **रेनियर** के अनुसार सामाजिक इतिहास आर्थिक इतिहास की पृष्ठभूमि तथा राजनीतिक इतिहास की कसौटी है। सामाजिक इतिहास के एक विशेष पक्ष सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन है। इसके आधार पर इतिहास के युगीन संदर्भों को यथार्थ चित्रण सम्भव है।

1.5.3 आर्थिक इतिहास

आर्थिक इतिहास भीऐतिहासिक अध्ययन का एक प्रमुख पक्ष है। मनुष्य के जीवन में अर्थ का अत्यधिक महत्त्व है। ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया को भी आर्थिक तत्वों के आधारपर जाँचा–परखा जाता है। उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में आर्थिक तत्वों का महत्त्व इतिहास लेखन में निरन्तर बढ़ता चला गया। आर्थिक इतिहास को महत्त्वपूर्ण बनाने में **कोम्ते, बर्कले, मार्क्स** आदि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।**कार्लमार्क्स** ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या का सिद्धान्त देकर इतिहास को नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयास किया। आर्थिक इतिहास के अन्तर्गत आजीविका के साधन, कृषि, यातायात के साधन, उद्योग, व्यापार आदि विषयों का अध्ययन है। उत्पादन के साधन एवं उत्पादन के वितरण का अध्ययन वर्तमान समय में इतिहास के अध्ययन का प्रमुख विषय है। प्राचीन भारत आर्थिक पक्षों को उद्घाटित करने वाले विद्वानों में **आर.सी. मजूमदार, यू.एन. घोषाल, डी.डी. कोसंबी, रामशरण शर्मा, रणवीर चक्रवर्ती** आदि प्रमुख है।

1.5.4 सांस्कृतिक इतिहास

सांस्कृतिक इतिहास सामाजिक इतिहास का अभिन्न अंग है। इसके अन्तर्गत रीति–रिवाज, संस्कार, शिक्षा, साहित्य, वास्तुकला, चित्रकला, संगीत, तथा आमोद–प्रमोद के साधनों का विवरण दिया जाता है। सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन को युगों के संदर्भ में अध्ययन किया जाता है। प्राचीन, मध्ययुगीन एवं आधुनिक संस्कृति। किसी महान शासक के युग का भी सांस्कृतिक दृष्टिसे अध्ययन किया जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में वैदिक साहित्य, महाकाव्य एवं पुराण सांस्कृतिक इतिहास का अद्भुत सामग्री समेटे हुए है।

1.5.5 धार्मिक इतिहास

धर्म इतिहास का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है। विविध धर्मों के उद्‌भव एवं विकास ने इतिहास के गति को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया है। यहूदी, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, हिन्दू आदि धर्मों के प्रचार–प्रसार में संघर्ष एवं प्रेम के असंख्य उदाहरण इतिहास में पाए जाते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के संदर्भ में बौद्ध धर्म, जैन धर्म एवं हिन्दू धर्म के विविध पक्षों पर **गोविन्द चन्द्र पाण्डे, हीरालाल जैन, एस. राधाकृष्णन** आदि विद्वानों ने प्रभूत लेखन किया है। मानव समाज को नैतिक रूप से संयमित करने में भी धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मानव समाज की धर्म सम्मत जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए इतिहास धर्म के सम्यक् अध्ययन पर बल दिया। मानव के सर्वांगीण विकास में धार्मिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। वैदिक, बौद्ध, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख, जैन आदि धर्म बड़ी ही मजबूती आज भी अपना सकारात्मक सहयोग समाज एवं इतिहास में दे रहे हैं। आपसी सहयोग के विकास में भी इनकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है।

1.5.6 संवैधानिक इतिहास

किसी राष्ट्र के विकास में उस समाज के संस्थाओं का इतिहास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। जी.एन. क्लार्क के अनुसार संस्थाओं के इतिहास का राजनीतिक इतिहास के साथ घनिष्ठ संबंध होता है। समाज के राजनैतिक एवं सामाजिक रूप से नियंत्रित करने में संवैधानिक इतिहास की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्राचीन भारत में स्मृति साहित्य में वर्णित नियमों एवं व्यवस्थाओं से समाज संचालित होता था। समय–समय शासक भी आदेश निकालकर समाज को निर्देश देने का कार्य करते है। आधुनिक समाजों में प्रत्येक राष्ट्र का अपना एक विशिष्ट संविधान होता है। जिसके आधार पर उस राष्ट्र का समाज संचालित होता है। प्राचीन भारतीय संवैधानिक संस्थाओं के विकास को जानने हेतु **पी.वी. काणे** के 'धर्मशास्त्र का इतिहास' एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

1.5.7 कला इतिहास

इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण शाखा कला इतिहास के रूप में विकसित हुई है। वस्तुतः कला मानव के विकास का सम्पूर्णता प्रदान करती है। कला को जानने एवं समझने में साहित्य एवं भौतिक अवशेषों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में शिल्प एवं कला के रूपों को स्पष्ट किया है। प्राचीन भारतीय कला के इतिहास को **वासुदेवशरण अग्रवाल, आनन्द कुमार स्वामी, वाचस्पति गैरोला** आदि की रचनाओं में सम्यक् तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

1.5.8 विज्ञान एवं तकनीक का इतिहास

मानव के उद्‌भव एवं विकास को तद्‌युगीन तकनीक महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती है। तकनीक एवं प्रौद्योगिकी ही मनुष्य को वे उपकरण देती है जिसके आधार पर मनुष्य परिवर्तन की प्रक्रिया को गति देता है। वर्तमान युग में तकनीक का समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का गहन अध्ययन किया जा रहा है। प्राचीन भारतीय विज्ञान के संदर्भ में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में चरक एवं सुश्रुत, खगोल विज्ञान एवं गणित के क्षेत्र में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि का योगदान अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के इतिहास लेखन को **सत्यप्रकाश सरस्वती, देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, रजनीकान्त पंत** के लेखन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

1.5.9 क्षेत्रीय इतिहास

क्षेत्रीय इतिहास का तात्पर्य भौगोलिक सीमाओं में बँधे क्षेत्र विशेष के इतिहास से है। इस प्रकार के इतिहास लेखन में उस क्षेत्र के ऐतिहासिक विकास को सम्पूर्णता से उभारा जाता है। **ई.एल. हस्लुक** का मानना है कि इतिहास के अध्ययन के अन्तर्गत स्थानीय इतिहास के कुछ पाठों का समावेश अवश्य होना चाहिए जिससे हम उस स्थान विशेष की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सके। कल्हण कृत राजतरंगिणी प्राचीन भारतीय क्षेत्रीय इतिहास लेखन का अप्रतीम उदाहरण है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के इतिहास लेखन को **के.ए.नीलकण्ठ शास्त्री एवं टी.वी. महालिंगम** की रचनाओं में सम्पूर्णता से उभारा गया है।

1.5.10 सैनिक इतिहास

राज्यों के उत्थान एवं पतन में सैन्य कारकों की केंद्रीय भूमिका होती है। मौर्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्य, पृथ्वीराज

की पराजय आदि के पतन में सामरिक कारणों ने केंद्रीय भूमिका निभाई है। नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी के उत्थान एवं पतन में सैन्य कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रथम विश्वयुद्ध एवं द्वितीय विश्वयुद्ध ने यह सिद्ध किया कि सैन्य कारक इतिहास की गति को परिवर्तित अथवा अप्रत्याशित मोड़ प्रदान कर सकते हैं। वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार के संहारक अस्त्रों का विकास हो चुका है जिससे कभी भी इतिहास की दिशा परिवर्तित की जा सकती है। इस संदर्भ में **रेनियर** का मत है कि ''आधुनिक इतिहासकारों का पुनीत कर्तव्य है कि नैतिकता के माध्यम से युद्ध संबंधी नवीन अस्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।''

इसके अतिरिक्त विश्व इतिहास, इतिहास दर्शन, विचारों का इतिहास, कामनवेल्थ का इतिहास आदि वर्गीकरण भी लिए जाते है। इस विभाजनों का कोई अंतिम स्वरूप नहीं है। इतिहास का कालिक विभाजन यद्यपि महत्वपूर्ण है, परन्तु इतिहासकारों को विशिष्ट दक्षता के परिवेश में अपने को बंदी नहीं बनाना चाहिए। यद्यपि ये सभी क्षेत्र इतिहास के विशिष्ट अध्ययन हेतु आवश्यक है लेकिन विशिष्ट दक्षता के साथ–साथ इतिहासकार को सामान्य इतिहास का भी जानकार होना चाहिए। तभी वह विशिष्ट क्षेत्र की ऐतिहासिक प्रगति में भूमिका को निर्धारित कर पाएगा।

1.6 सारांश

अंततः कहा जा सकता है कि इतिहास मानव समाज की प्रगति का एक क्रमबद्ध अध्ययन है और उसकी प्रगति में सहायक भी है। वस्तुत इतिहास संस्कृतियों की जीवन लीला है जिसके नियम सुनिश्चित होते है। संस्कृतियों की जीवन लीला से ही इतिहास की प्रक्रिया चलती है। विभिन्न इतिहासकारों ने इतिहास को अलग–अलग परिभाषाओं एवं विशेषताओं से विभूषित किया है जो उसके प्रकृति को निर्धारित करते हैं। कुछ लोगों ने इतिहास को एक ज्ञान, एक कहानी, सामाजिक विज्ञान, चिंतन विद्या, अतीत–वर्तमान का संलाप, इत्यादि कहा है तो कुछ ने इसे सभ्यता, संस्कृति, सत्यान्वेषण, उत्पादन, प्रगति आदि से संबोधित किया है। इतनी विविधता से युक्त होने के कारण इतिहास की प्रकृति अत्यन्त जटिल है। मानव जीवन को निर्धारित करने वाले सभी तत्व इसकी परिधि में आ गए हैं। अंततः कहा जा सकता है कि इतिहास मानव उद्विकास को समझने एक महत्त्वपूर्ण औजार है। यह मनुष्य के अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों को ही अपने में समेटे हुए है। संभवतः इसी कारण प्राचीन भारत में इतिहास का प्रतिदिन स्वध्याय करने हेतु प्रेरित किया गया था।

1.7 संदर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहास क्या है? इसको परिभाषित कीजिए।
2. इतिहास की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
3. इतिहास के क्षेत्र को विश्लेषित कजिए।
4. आधुनिक युग में इतिहास के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों को रेखांकित कीजिए।
5. इतिहास अतीत एवं वर्तमान के मध्य संवाद है। व्याख्या कीजिए।

इकाई : 2 : ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता के प्रमुख तत्व

2.3.1 इतिहास की विषयवस्तु

2.3.2 वस्तुनिष्ठता

2.3.3 इतिहासकार की गुणवत्ता

2.3.4 ऐतिहासिक साक्ष्य

2.3.5 कूट कार्य का अन्वेषण

2.3.6 ऐतिहासिक व्याख्या

2.3.7 ऐतिहासिक पूर्वाग्रह से दूरी

2.4 सारांश

2.5 संदर्भ पुस्तकें

2.6 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

सही इतिहास का लिखा जाना राष्ट्रीय संस्थाओं के विकास का एक महत्वपूर्ण आधार होता है। इसमें इतिहासकार का दायित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन के अभाव में लेखकों के विचारों और व्याख्याओं ने समाज का बहुत अनिष्ट किया है। इतिहास की उत्कृष्ट रचना के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अत्यन्त आवश्यकता है। आधुनिक युग में इतिहास के अध्ययन क्षेत्र का बहुत परिवर्धन हुआ तथा विज्ञान की उन्नति ने इतिहास को एक स्वतंत्र तथा गहन बौद्धिक विषय का रूप प्रदान किया।19वीं शताब्दी में इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया और सदियों से उपेक्षित साधारण जनसमुदाय इतिहास का प्रमुख विषय बना। 20वीं सदी में विज्ञान एवं लोकतंत्र ने इतिहास को एक तार्किक अनुशासन के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैध सामाजिक विज्ञान के रूप में इतिहास की पहचान को मजबूत बनाना समकालीन इतिहासकारों की सबसे बड़ी चिंता रही है। इस मार्ग की मुख्य विशिष्टताओं एवं बाधाओं का विश्लेषण इस इकाई में किया गया है।

2.2 उद्देश्य

कोई भी समाज अपने इतिहास के माध्यम से ही स्वयं अपने को जान पाता है। अपने को और अपने समाज को सही ढंग से जानने हेतु वैध ऐतिहासिक ज्ञान का लेखन व प्रसार आवश्यक होता है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित विचारों को अवगत होंगे –

1. ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता
2. वैध ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने में आने वाली बाधाएं
3. वैध ऐतिहासिक ज्ञान एवं साक्ष्य के मध्य संबंध
4. वैध ऐतिहासिक ज्ञान एवं पूर्वाग्रह के मध्य संबंध
6. वैध ऐतिहासिक ज्ञान के संबंध में प्रमुख इतिहासकारों के विचार

2.3 ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता के प्रमुख तत्व

ऐतिहासिक अनुशासन का एक आधुनिक विषय के रूप में विकास इस बात का परिचायक है कि इतिहास के द्वारा प्राप्त ज्ञान पर लोग विश्वास करते हैं। आधुनिक काल में इतिहास से प्राप्त ज्ञान को वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक बनाने हेतु इतिहासकारों ने सशक्त प्रयास किए हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के एकत्रण एवं वर्गीकरण में पर्याप्त सावधानी बरती जा रही है। नए उपकरणों के माध्यम से भौतिक अवशेषों से सटीक जानकारियाँ प्राप्त की जा रही है। इस कारण ऐतिहासिक निष्कर्षों पर विद्वत समुदाय एवं सामान्य जन का विश्वास बढ़ता जा रहा है। इतिहास के ज्ञान से मानवीय समाज को लाभ होने का विचार प्राचीन समाजों में भी प्रचलित थी। प्राचीन भारतीय इतिहास बोध एवं यूनानी इतिहास दर्शन में इतिहास को एक विशेष प्रकार का उपयोगी ज्ञान माना जाता था।आधुनिक समय में इतिहासकार चार्ल्स फर्थ का मानना है कि ''इतिहास ज्ञान की एक शाखा ही नहीं अपितु एक विशेष प्रकार का ज्ञान है जो मनुष्य के दैनिक जीवन में उपयोगी है।'' महान विद्वान बेकनका भी मानना है कि ''इतिहास मनुष्य को विवेकपूर्ण बनाता है।'' इसी संदर्भ में आर. सी.के. ऐन्सर के अनुसार, ''इतिहास विश्व के वर्तमान स्वरूप की पृष्ठभूमि का ज्ञान प्रदान करता है।'' इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इतिहास अतीत का ज्ञान है। इस अतीत का प्रत्यक्षीकरण वर्तमान में नहीं हो सकता। ऐसे में अतीत को जानने हेतु जिन भी अनुमानपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है, उसको लेकर विद्वानों में अनेक मत प्राप्त होते हैं।आधुनिक इतिहासकारों ने ऐतिहासिक ज्ञान को स्पष्ट एवं साक्ष्य से युक्त बनाने के लिए अनेक तत्वों को ऐतिहासिक लेखन की प्रक्रिया में शामिल करने का प्रयत्न किया है। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं –

2.3.1. इतिहास की विषयवस्तु

ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता में उसकी स्पष्ट विषयवस्तु का होना एक बहुत महत्वपूर्ण आधार प्रदान करना है। सिमेंल के अनुसार, इतिहासकार के मस्तिष्क में अतीत के चित्र की विषयनिष्ठ मानसिक रचना होती है, लेकिन वह दावा करता है कि उसकी विषयनिष्ठ रचना में भी वस्तुनिष्ठ यथार्थता है। वह इस प्रकार का दावा इसलिए करता है कि क्योंकि विद्वान एवं सामान्यजन इतिहासकार से अतीत का सत्य ज्ञान जानना चाहता है। लेकिन इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि अतीत के अनेक कालखंडों के लेखन के लिए पर्याप्त तथ्य ही नहीं उपलब्ध है। ऐसे में किसी ऐतिहासिक घटना के जानकारी हेतु पर्याप्त तथ्यों का होना उसके विषयवस्तु के स्पष्ट होने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

ऐतिहासिक विषयवस्तु के निर्धारण को अनेक इतिहासकारों ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कलिंगवुड के अनुसार, ''ऐतिहासिक ज्ञान अतीत में मनुष्य के मस्तिष्क का ज्ञान है। अतः इसकी विषयवस्तु विचार प्रक्रिया है जिसे वह अपने मस्तिष्क में अनुभव द्वारा सजीव करता है।'' जिस विषय की पुनरानुभूति इतिहासकार के मस्तिष्क में न हो सके, वह इतिहास की विषयवस्तु नहीं हो सकती, क्योंकि इतिहासकार अपने विषयवस्तु को देख नहीं सकता। इतिहासकार प्रत्येक युग की सामाजिक आवश्यकतानुसार विषयवस्तु का निश्चय करता है। टायनबी कहते हैं, ''मनुष्य जीवन से सम्बद्ध सम्पूर्ण कार्य–व्यापार इतिहास की विषयवस्तु है।'' इतिहास का विषयक्षेत्र परिवर्तनशील होता है तथा युगीन आवश्यकताओं के अनुसार इसके विषयवस्तु में नवीन तत्वों का समावेश होता है।

इतिहास के परिवर्तनशीलता को समझने हेतु इसे हमेशा वर्तमान से सम्बद्ध किया जाता है। इतिहासकार गार्डिनर कहते हैं कि, ''इतिहासकार जिन घटनाओं घटनाओं का अध्ययन करता है वह अतीत नहीं, अपितु वर्तमान होता है। यदि ऐतिहासिक अतीत बोधगम्य है तो इसका सम्बन्ध वर्तमान अनुभव से है। ऐतिहासिक अतीत का निर्माण साक्ष्यों पर आधारित होता है। साक्ष्य का सम्बन्ध वर्तमान से हैं, क्योंकि इतिहासकार वर्तमान में साक्ष्यों का उपयोग करता है। इतिहास में मनुष्य के कार्यों, विचार, तथा उसके व्यवहार का वर्णन होता है। यही इतिहास की विषयवस्तु होता है।

2.3.2 वस्तुनिष्ठता

ऐतिहासिक ज्ञान को वैधता प्रदान करने में वस्तुनिष्ठता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक अनुशासन का प्रमुख आधार माना जाता है। वैज्ञानिक अनुशासन एवं वैज्ञानिक चेतना से सम्पन्न इतिहासकार इतिहास को वस्तुनिष्ठात्मक विशेषताओं से अलंकृत कर उसे विज्ञान के समक्ष लाना चाहते हैं। जे0बी0 ब्यूरी ने उद्घोषणा की थी कि ''इतिहास विज्ञान है न कम न अधिक।'' ऐतिहासिक ज्ञान को वैज्ञानिक बनाते हुए उसे वस्तुनिष्ठ बनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इतिहास की प्राचीनता एवं विविधता को देखते हुए उसे वस्तुनिष्ठ रूप देने के लिए विशिष्ट तरीके से कार्य करना होता है। इस संबंध में बटरफील्ड के विचार महत्वपूर्ण है। उनके अनुसार इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश के पहले सामान्य इतिहास एवं खोजपूर्ण इतिहास के अन्तर को समझना चाहिए। सामान्य इतिहास संक्षिप्त होता

है, जिसमें इतिहासकार अपनी व्यक्तिगत धारणाओं से इसे अलंकृत नहीं कर सकता। अतः सामान्य इतिहास वस्तुनिष्ठ हो सकता है। परन्तु शोधपूर्ण इतिहास में इतिहासकार मनोनुकूल तथ्यों का चयन कर व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूचि के अनुसार उसकी व्याख्या करता है।'' ऐतिहासिक प्रस्तुतीकरण में जिस मात्रा में प्रासंगिक साक्ष्यों का समावेश होगा, उसी मात्रा में उसकी वैधता स्वीकृत होगी।

2.3.3 इतिहासकार की गुणवत्ता

इतिहास लेखन एक अत्यन्त ही गंभीर कार्य है। इस कार्य को उन्हीं लोगों को करना चाहिए, जो लोग कठोर परिश्रम एवं धैर्य के साथ काम करना चाहते हों। तथ्यों के संकलन के आधार पर कोई भी साधारण व्यक्ति एक कहानीनुमा विवरण प्रस्तुत कर सकता है, परन्तु कुशल शोधकर्ता के कुछ आवश्यक गुण होते हैं। वह तथ्यों के संकलन, उनका वर्गीकरण, उसकी आलोचनात्मक व्याख्या तथा विश्लेषण द्वारा एक बोधगम्य तथा विश्वसनीय निष्कर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। एक योग्य इतिहासकार के लिए ऐतिहासिक समझ का होना अत्यन्त आवश्यक है। इतिहास का सरोकार समाज से होता है कि वह समाज पुराने समय में कैसे कार्यरत था। इसके साथ ही इतिहास का संबंध घटनाओं के उस क्रम से भी होता है जिसने उस समय रहने वाले लोगों के जीवन को परिवर्तित किया। इतिहासकार में इस परिवर्तन को समझने की क्षमता होनी चाहिए। इतिहास मात्र तथ्यों का संकलन नहीं है अपितु इतिहासकार द्वारा अतीत का व्याख्यात्मक पुननिर्माण होता है। कार्ल बेकर के अनुसार ऐतिहासिक तथ्यों का इतिहासकार के लिए कोई अस्तित्व नहीं रहता, जब तक की उनकी पुनर्रचना न करें। इस पुनर्रचना में वस्तुनिष्ठता की मात्रा के आधार पर उसकी योग्यता तय होती है।

आस्कर वाइल्ड ने लिखा है कि, ''प्रतिभावान व्यक्ति ही इतिहास की रचना कर सकता है।'' यहाँ प्रतिभावान का तात्पर्य यह है कि इतिहासकार अपने गुण के आधार पर अनावश्यक तथ्यों का परित्याग करें, आवश्यक तथ्यों का चयन करें तथा पर्याप्त तथ्यों के आधार पर अपनी ऐतिहासिक परिकल्पना को प्रस्तुत करें। एक उच्चकोटि का इतिहासकार इतिहास को आख्यानों से निकालकर उसे यथार्थता की आधारशिला पर प्रतिष्ठित करता है।

2.3.4 ऐतिहासिक साक्ष्य

ऐतिहासिक घटनाक्रम को क्रमबद्ध व यथार्थ रूप देने वाला तत्व साक्ष्य कहलाता है। रेनियर के अनुसार किसी घटना संबंधी जाँचकर्ता के प्रश्नोत्तर में जो भी तथ्य सिद्ध हो सके, उसे साक्ष्य कहते हैं। साक्ष्यों के आधार पर जब एक वैज्ञानिक अपने निष्कर्ष पर पहुँचता है तो यह माना जाता है कि समान परिस्थिति में उसके द्वारा प्राप्त किए गए निष्कर्ष को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इतिहासकार के साक्ष्यों के निष्कर्ष से किसी विशेष घटना का अनुमान होता है। इतिहासकार के निष्कर्ष संभावना परक होते हैं। वस्तुतः इतिहास एक विशेष प्रकार का ज्ञान होता है, जिसका अभिप्राय उन घटनाओं का वर्णन करना है, जिनका प्रत्यक्ष दर्शन असम्भव है। इतिहासकार का निष्कर्ष अनुमानित होता है। उसके साक्ष्य भी अनुमानित होते हैं। फिर भी वह साक्ष्यों को यथार्थता की कसौटी पर रखकर ऐतिहासिक स्रोतों की विश्वसनीयता तथा इतिहासकार के कथन की सत्यता आलोचनात्मक विधियों से सिद्ध करता है। बटरफील्ड के अनुसार तथ्यों के संकलन के पश्चात् उनके कारणों की गवेषणा इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य हो जाता है। जे0एच0 हैक्सटर का मानना है कि साक्ष्यरूपी तथ्यों की व्याख्या के अभाव में इतिहास को वैज्ञानिक विधियों से अलंकृत नहीं किया जा सकता है। आर0जी. कलिंगवुड का मानना है कि इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत अतीत का चित्रण कभी पूर्ण नहीं होता है, क्योंकि प्रत्येक युग का इतिहासकार नवीन साक्ष्यों की गवेषणा द्वारा इतिहास लिखता है। नवीन साक्ष्यों के आलोक में प्रत्येक पीढ़ी को इतिहास लिखना चाहिए।

वस्तुतः साक्ष्य एवं इतिहासकार एक–दूसरे के पूरक होते हैं। इतिहासकार के अभाव में साक्ष्य मृत एवं अर्थहीन होते हैं तथा साक्ष्य के अभाव में इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत विवरण कहानी के समान होता है। अतः इतिहास, साक्ष्य एवं इतिहासकार के मध्य अन्तः क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के माध्यम से साक्ष्यों का विश्लेषण किया जाता है तथा घटनाक्रम को क्रमबद्धता प्रदान कर विवेचनात्मक चित्र उपस्थित किया जाता है। कल्हण ने राजतरंगिणी में जो विवरण उपस्थित किया है, उसे पुरातात्विक साक्ष्यों एवं पूववर्ती साहित्यिक साक्ष्यों में उपस्थित ऐतिहासिक सामग्री से तुलना करके बारहवीं सदी के कश्मीर के इतिहास का निर्माण किया गया है। अशोक के इतिहास लेखन में उसके अभिलेखों, बौद्ध साहित्य एवं पुराणों में वर्णित साक्ष्यों को क्रमबद्धता प्रदान कर विश्लेषण किया गया है।

आधुनिक इतिहासकारों ने ऐतिहासिक साक्ष्यों को दो मुख्यों भागों में वर्णित किया है– कठोर तथ्य तथा इतिहासकार की व्याख्या। कठोर तथ्यों का स्वरूप निश्चयात्मक होता है। सन् 1526 ई0 में पानीपत का प्रथम युद्धबाबर

और इब्राहिम लोदी के बीच हुआ था। इसमें 1526, बाबर और इब्राहिम लोदी कठोर साक्ष्य हैं। इन साक्ष्यों में मनोनुकूल परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इसका दूसरा भाग है इतिहासकार की व्याख्या। इब्राहिम लोदी की पराजय तथा बाबर की सफलता संबंधी कारणों की व्याख्या में इतिहासकार को व्यक्तिगत विचार प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक साक्ष्य निश्चयात्मक एवं संभावनात्मक दोनों होते हैं। इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक विवरण यथार्थपरक होते हैं तथा साक्ष्य ही यथार्थता की आधारशिला है।

2.3.5 कूटकार्य का अन्वेषण

ऐतिहासिक लेखन में वैधता का निर्धारण सही ऐतिहासिक साक्ष्यों के उपयोग पर निर्भर करता है। कतिपय स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा ऐतिहासिक साक्ष्यों में कूटकरण अथवा जालसाजी के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि ऐसे अवैध स्रोतों से दूर रहे तथा अत्यन्त परिश्रम से सही ऐतिहासिक साक्ष्यों का उपयोग इतिहास लेखन में करें। सही ऐतिहासिक साक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु स्रोतों का परीक्षण करना होता है। यह बाह्य एवं आंतरिक दो प्रकार का होता है– बाह्य परीक्षण के अन्तर्गत ऐतिहासिक स्रोत की समकालीनता निर्धारित करनी होती है। इसके लिए युगीन लिपियों का ज्ञान महत्वपूर्ण है। पूर्वमध्यकाल से राजकीय दस्तावेजों में शासकीय मुहर अथवा हस्ताक्षर के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। ऐतिहासिक दस्तावेज के यथार्थता की परीक्षा इस आधार पर की जासकती है। लेखन एवं उसके काल निर्धारण के लिए काल गणना विज्ञान, मुद्रा शास्त्र एवं पुरातत्व का सहारा भी लिया जाता है। आंतरिक परीक्षण भी ऐतिहासिक स्रोतों की वैधता जाँचने का महत्वपूर्ण आधार है। इनमें किसी दस्तावेज का परीक्षण उसके आंतरिक सतता एवं उद्देश्यों के आधार पर की जाती है। प्राचीन साहित्य में एक ही ग्रन्थ में अनेक लेखकों अथवा विचारों की संभावना होती है। इसी प्रकार एक ही ग्रन्थ को एक से अधिक कालों में संपादित होने की बात होती है। ऋग्वेद के अनेक मंडलों में प्राचीनता तथा अर्वाचानित का निर्धारण विद्वानों द्वारा किया गया है। बौद्ध आगमों में भी यह प्रवृत्ति है। गोविन्दचन्द्र पाण्डेय एवं ए0के0 वार्डर ने क्रमशः ऋग्वेद एवं बौद्ध आगमों में स्तरीकरण की समस्या पर प्रकाश डाला है। ताम्रपत्रों में भी कूटकरण के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। समुद्रगुप्त के गया एवं नालन्दा ताम्रपत्र को जाली माना जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ऐतिहासिक साक्ष्यों के यथार्थता के निर्धारण पर ऐतिहासिक विश्लेषण की वैधता टिकी होती है।

2.3.6 ऐतिहासिक व्याख्या

ऐतिहासिक व्याख्या भी इतिहास के वर्णन को वैधता प्रदान करने की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। प्रत्येक इतिहासकार वर्तमान के संदर्भ में अतीत का स्पष्टीकरण करता है क्योंकिवर्तमान का आविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ है। पी.गार्डिनर के अनुसार वर्तमान के संदर्भ में अतीत की गवेषणा का अभिप्राय कारणों की व्याख्या तथा उनकी क्रमबद्धता को निश्चित करना है। इसमें इतिहासकार मानवीय व्यवहार, इच्छा, विचार, योजना तथा नीतियों का विश्लेषण करता है। माइकल स्क्रीवेन के अनुसार इच्छा तथा विचार का स्वरूप व्यक्तिगत तथा सामूहिक होता है। अशोक की व्यक्तिगत इच्छा ने उसके कार्यों का नेतृत्व किया, परन्तु मंगोलों के आक्रमण के पीछे तथा इन्हें लुटेरा और लड़ाकू बनाने में व्यक्ति विशेष की इच्छा निर्णायक नहीं थी, परन्तु यहाँ सामूहिक इच्छा की निर्णायक भूमिका थी।

इतिहासकार स्पष्टीकरण के माध्यम से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। गार्डिनर का मानना है कि सामान्यीकरण का तात्पर्य सामान्य ज्ञान तथा बौद्धिक ज्ञान का प्रस्तुतीकरण होता है, जो जटिल विषयों को सरल, सुबोध तथा सुगम बना देता है। उदाहरणार्थ शक्ति भ्रष्ट करती है तथा सर्वशक्तिमान सभी को भ्रष्ट बना देता है। इस प्रकार एक भ्रष्ट व्यवस्था की अभिव्यक्ति इतिहासकार एक वाक्य द्वारा करता है। एक व्यक्ति के प्रतिशोध की अभिव्यक्ति के लिए चाणक्य का उद्धरण किया जाता है कि उसने कुशा का अंत करने के लिए उसकी जड़ में मट्ठा डाल दिया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों की क्रमबद्धता एवं सामान्यीकरण के पश्चात् इतिहासकार इन सभी तत्वों को कारण एवं कार्य के क्रम में नियोजित करने का प्रयास करता है। इसे ऐतिहासिक तत्वों की व्याख्या या निष्कर्ष कहा जाता है। इतिहासकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह समसामयिक समाज तथा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से अतीत का निरुपण करता है। इसमें भविष्य के लिए मार्गदर्शन भी होता है। इस संदर्भ में जे0बी0 ब्यूरी का मत उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक व्याख्या में अतीत एवं भविष्य की कल्पना का समन्वय होता है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक व्याख्या का अभिप्राय इतिहासकार द्वारा घटना संबंधी कारणों एवं तथ्यों की व्याख्या है। वह अपनी व्याख्या में चयन प्रक्रिया के द्वारा उन्हें क्रमबद्धता प्रदान करता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से वह अनावश्यक तथ्यों का परित्याग तथा आवश्यक तथ्योंका चयन करता है। ऐतिहासिक घटनाक्रम से सुसंगत तथ्यों के आधारपर घटना के विश्लेषण को ही वैध ऐतिहासिक व्याख्या के रूप में स्वीकार किया जाता है।

2.3.7 ऐतिहासिक पूर्वाग्रह से दूरी

इतिहास लेखन की वैधता की सबसे बड़ी बाधा पूर्वाग्रह युक्त इतिहान लेखन है। इस पूर्वाग्रह का एक बड़ा कारण यह है कि प्रत्येक इतिहासकार अपने समाज की उपज होता है। सामाजिक वातावरण का प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। उसके मस्तिष्क पर उसके धर्म, प्रजाति एवं राष्ट्रीयता की स्पष्ट झलक होती है। हिन्दू–मुस्लिम इतिहासकार एवं अरब–यहूदी इतिहासकारों में मतैक्य होना अत्यन्त कठिन है। पूर्वाग्रही इतिहासकार तथ्यों के चयन में ही अपना प्रभाव दिखा देता है। पूर्वाग्रही विचारों के कारण एक ही घटना को इतिहासकार भिन्न–भिन्न तरीके से प्रस्तुत करता है। वैचारिक वादों के प्रभाव में भी इतिहासकारों में मतभिन्नता होती है। इतिहासकार राजनैतिक विचारधाराओं से प्रभावित होकर मार्क्सवादी, उदारवादी, पूँजीवादी, प्रजातंत्रवादी, सबाल्टर्न, उत्तर आधुनिक विचारों के आलोक ऐतिहासिक घटनाक्रमों को प्रस्तुत करता है। गिबन ने रोमन साम्राज्य के पतन के कारणों की व्याख्या में नैतिक पतन को प्रधान माना है। कार्ल मार्क्स ने रोमन साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण आर्थिक माना है। विभिन्न दृष्टिकोण के कारण ऐतिहासिक ज्ञान की प्रमाणिक व्याख्या में बाधा आती है। आधुनिक इतिहास लेखन एक प्रमुख स्तम्भ रांके ने इतिहास को व्यक्तिगत दृष्टिकोण से अलग रखने का प्रबल समर्थन किया है। उनका मानना है कि इतिहास में तथ्यों अथवा साक्ष्यों का ही प्रधानता देनी चाहिए।

2.4 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आधुनिक युग में इतिहास को एक विशिष्ट श्रेणी के सामाजिक विज्ञान का दर्जा प्राप्त हो चुका है। इस संदर्भ में इतिहास लेखन में संलग्न लोगों का विचार है कि इतिहास के साक्ष्यों का सही ढंग से अनुशीलन करने से इतिहास की इमारत को मजबूत एवं विश्वसनीय बनाया जा सकता है। साक्ष्यों के एकत्रण एवं वर्गीकरण में पुरातत्व एवं विज्ञान ने अभूतपूर्व मदद की है। लोगों को यह बात भी भलीभांति स्पष्ट हो चुका है कि राजनीतिक विचारधारा एवं पूर्वाग्रह वैध इतिहास लेखन की सर्वप्रमुख बाधा है। आधुनिक समय के अनेक इतिहासकारों की मान्यता रही है कि इतिहास वर्तमान को समझने की प्रमुख कुंजी है। इस संदर्भ में मार्क ब्लाख की उक्ति महत्वपूर्ण है कि इतिहास समय सापेक्ष मनुष्य का विज्ञान है। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि साक्ष्यों का सम्यक अनुशीलन करके ऐतिहासिक व्याख्या प्रस्तुत की जाती है तो उसमें अतीत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों के ही समझने में सूत्र प्रतिबिंबित होते हैं।

2.5 संदर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

2.6 अभ्यास प्रश्न

1. ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता के प्रमुख तत्वों का विश्लेषण कीजिए।
2. ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता में साक्ष्यों की भूमिका को निर्धारित कीजिए।
3. ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता के बाधक तत्वों का निरूपण कीजिए।
4. पूर्वाग्रह, ऐतिहासिक ज्ञान की वैधता का प्रमुख बाधक तत्व है। इसका विश्लेषण कीजिए।

इकाई 3 : मूल्य एवं इतिहास की विषयवस्तु

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मूल्य एवं मूल्य बोध

3.3.1 ऐतिहासिक ज्ञान एवं मूल्यबोध

3.3.2 भारतीय इतिहास एवं मूल्यबोध

3.4 इतिहास की विषयवस्तु

3.4.1 इतिहास के विषयवस्तु की दार्शनिक अवधारणा

3.5 सारांश

3.6 संदर्भ पुस्तकें

3.7 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सामाजिक जीवन को सुचारु रूप से घटित होने देने की प्रत्याशा में मानव अनेक तरह के सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं का ताना–बाना बुनता रहता है। मानवीय कार्यों के मूल्यांकन के शाश्वत प्रतीत होने वाले समसामयिक मानदण्ड मनुष्य के जीवन को सही आदर्श एवं मार्गदर्शन देने का कार्य करते है। समाज, राज्य, विद्यालय, न्यायिक संस्थाए, धार्मिक संस्थाए आदि नियमों एवं मूल्यें को प्रमाणिक मानकर उन्हें लागू करने का प्रयत्न करते हैं। मानव इतिहास का सर्वेक्षण इस बात को स्पष्ट करता है कि अतीत के अनेक मूल्य युगों के प्रवाह में महत्त्वहीन हो जाते है। जैसे कि 'सतीप्रथा' एवं 'जौहर प्रथा' किसी युग में मान्य सामाजिक विधान थे लेकिन वर्तमान युग में उसे किसी भी रूप स्वीकार्य नहीं माना जाता। दास प्रथा भी किसी समय में कुछ समाजों में प्रचलित था जो कि वर्तमान समय के नैतिक मान्यताओं बिल्कुल ही खिलाफ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक युग अपने मानव समूह को संगठित करने हेतु विभिन्न तरीके के नैतिक एवं सामाजिक मान्यताओं की सर्जना करता है। इनमें नैतिक मान्यताएँ ही मूल्य समूह के रूप में मानव समाज के दिशा निर्देशन का कार्य करती है।

मानव समाज की अतीत से वर्तमान तक की यात्रा अत्यन्त ही रोचक एवं घटनापूर्ण रही है। इसमें परिवर्तन के अनन्त रूपों के दर्शन हुए है। इस कारण इतिहास का विषयवस्तु भी उतना ही घटनापूर्ण रहा है। प्राचीन इतिहास लेखन में शासक की उपलब्धियों एवं अभिरुचियों को ही युगीन प्रवृत्ति का वाहक मान लिया जाता था। यह प्रवृत्ति मध्य युग तक केंद्रिय महत्त्व की रही। लेकिन पुनर्जागरण के बाद इतिहास का स्वरूप बदलने लगा। अब इतिहास का विषय व्यक्ति के साथ युगीन संस्कृतियों का प्रस्तुतीकरण भी हो गया। प्रत्यक्षवादियों द्वारा आनुभविक अध्ययनों एवं ऐतिहासिक नियमों की खोज ने इतिहास के स्वरूप में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। वैज्ञानिक प्रक्रिया के पक्षधर इतिहासकारों ने तो इतिहास को विज्ञान बनाने की मुहिम ही छेड़ दी। मार्क्सवादियों द्वारा इतिहास की आर्थिक व्याख्या पर जोर देकर इतिहास को समाजिक परिवर्तन के मुख्य औजार के रूप में देखा गया। इस सबने इतिहास के प्रकृति एवं विषयवस्तु दोनों को ही प्रभावित किया।

3.2 उद्देश्य

प्रत्येक सभ्यता की संरचना के पीछे कुछ मूलभूत विचारों का योगदान होता है। ये विचार मनुष्य के सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं एवं उसके अपने अस्तित्वगत अन्वेषणों पर निर्भर होते हैं। ऐतिहासिक युग में सक्रिय मानव युगानुकूल आदर्शों एवं आवश्यकताओं के संदर्भ में अपने लक्ष्य निर्धारित करता है। इतिहासकार का दायित्व होता है कि इन युगानुकूल आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में विकसित अतीत का यथार्थ चित्र उपस्थित करे। समय के विकास के साथ ही मानव जीवन में नित नए तत्वों का प्रवेश हो रहा है तथा उसकी गतिविधियाँ भी निरन्तर विस्तारित होती

जा रही है। इस कारण इतिहास के विषयवस्तु का भी निरन्तर विस्तार हो रहा है। इस ईकाई में युगानुकूल मूल्यों के इतिहास पर पड़ने वाले प्रभाव एवं इतिहास के विषयवस्तु के बारे में अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम निम्नलिखित जानकारियों से अवगत होंगे।

1. मूल्य की अवधारणा
2. मूल्य एवं इतिहास के अन्तर्संबध
3. भारतीय इतिहास के मूल्यबोध
4. इतिहास की विषयवस्तु
5. इतिहास के विषयवस्तु में आधुनिक युग में परिवर्तन

3.3 मूल्य एवं मूल्य बोध

मनुष्य प्रकृति का विशिष्ट प्राणी है। वह अन्य प्राणियों के समान अपने को शारीरिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं रखता है। उसमें विवेकशीलता एवं आत्मबोध होता है। वह केवल प्रकति प्रदत्त विषयों में अपने को संतुष्ट नहीं पाता है बल्कि विवेक अनुमोदित विषयों में अपने को संलग्न कर अपने को वह ज्यादा संतुष्टि पाता है। प्रकृति प्रदत्त विषयों के मध्य से आदर्श विषय की खोज ही मानवजीवन का मूल लक्ष्य होता है और यही उसे मूल्यों के प्रति सजग बनाती है। मनुष्य की यह खोज अनुभूति सापेक्ष होत है। यह खोज मनुष्य को अनन्त काल से बेहतर कार्यों को करने के लिए प्रेरित करता रहा है। बौद्ध धर्म के बोधिसत्त्व की अवधारणा, गीता के स्थितप्रज्ञ की अवधारणा, अशोक के धम्म विजय की संकल्पना आदि मनुष्यों के मूल्यों के प्रति सचेतनता को व्यक्त करती है। इस प्रकार जिस अनुसंधान से मानव विवेक को संतुष्टि मिलती है, वही मूल्य है। मूल्य के प्रत्यय में तीन घटकों का समावेश माना गया है। एषणा (इच्छा), विवेक एवं स्वतंत्रता। इच्छा एवं ज्ञान के सामरस्य के अनुरूप साधक यथास्थित विषय को एक आदर्श स्वरूप में ढालता है। मूल्यों का ज्ञानात्मक रूप में अनुभूति अथवा वस्तुजगत में मानवीय कार्यों में मूल्यों का अवबोध मूल्यबोध कहलाता है। ऐतिहासिक विकास में मूल्यबोध का सृजनात्मक पक्ष पहले अभिव्यक्त होता है और समाज तथा संस्कृति के रूप में व्यक्त अथवा सृष्ट मूल्यों के व्यापक संरचना के रूप व्यक्त अथवा उपस्थित होता है।

प्रकृति से प्राप्त चेतना से अनुप्राणित होने के कारण अतीत चेतना मनुष्य को मानवीयता तथा सार्वजनीक मूल्यों के प्रति सहिष्णु एवं ग्रहणशील बनाती है। मनुष्य की इतिहास चेतना उसकी मूल्य चेतना के साथ घनिष्ठ रूप से संबध है। इन दोनों के घनिष्ठ संबंध के चलते इतिहास को समझने हेतु 'मूल्यता' की अवधारणा की समझ अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य अपने नैसर्गिक प्रवृत्ति में जिन कार्यों अथवा भावों में आनन्द अथवा स्वतंत्रता की अनुभूति करता है वह उसे एक विशिष्ट प्रक्रिया से जोड़ता जाता है। जैसे–जैसे मानव स्वभाव का विवेकपूर्ण विकास होता है वैसे–वैसे नए और उच्चतर मूल्यों का सृजन होता जाता है। इस प्रकार मूल्य मानव स्वभाव का संतुष्टि बोध है और उन्हीं के माध्यम से मानव स्वभाव के क्रमिक विकास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मानव–स्वभाव के साथ–साथ विकसित होने वाला मूल्यबोध स्वार्थों की संर्कीणता से प्रारम्भ होता है और क्रमशः सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी के रूप में उसे रूपान्तरित करता है।

यहाँ मनुष्य का एक सामाजिक स्वरूप विकसित होने लगता है औरउसके अनुरूप सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। ये सामाजिक मूल्य ही मनुष्य को प्रगति का विवेकपूर्ण मार्गदर्शक होते है। समयानुसार इन सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन भी होते है तथा युगानुकूल नवीन सामाजिक मूल्यों का विकास होता है। जब एक बार अतीत का मूल्यांकन वर्तमान के मूल्य बोध के संदर्भ में होने लगता है तो किसी सभ्यता का इतिहास स्वयं ही अपने पुनर्लेखन की संभावनाओं की तरफ संकेत करता है। वस्तुतः एक नया मूल्य बोध केवल अतीत के बोध को नहीं बदलता बल्कि जिस समाज में वह मूल्यबोध विकसित हुआ है उसकी यथार्थ परिस्थितियों में भी अपने को चरितार्थ करने की माँग करने लगता है। इस प्रकार किसी सभ्यता का इतिहास इस तरह विकसित मूल्य के चरितार्थ हो सकने कम या अधिक सफल होने के प्रयासों का इतिहास हो जाता है।

इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मूल्य एक संभावना होती है। इसका घटित होना मानव जीवन की जैविक दशा तथा ऐतिहासिक कालखण्ड में उपलब्ध तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करता है। ये दोनों ही परिवर्तनीय होते है। लेकिन मूल्य मार्गदर्शक की भूमिका तो अदा करते है ही, इस प्रकार मूल्य ही वे मार्गदर्शक विचार है जिनके

आधार पर युगीन संदर्भो में अतीत का निर्माण किया जाता है।

3.3.1 ऐतिहासिक ज्ञान एवं मूल्यबोध

इतिहास का एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकास, इसके अनेक रूपों एवं परिवर्तनों का अपने में समेटे हुए है। अतीत के ज्ञान के सामान्य तौर पर दो पक्ष होते हैं तथ्यात्मक और सत्यात्मक। तथ्य का तात्पर्य यहाँ पर उस आधार सामग्री से है जिन के आधार पर इतिहास का ताना–बाना बुना जाता है। सत्य का तात्पर्य मूल्य संहिता तथा मानवीय विवेक से है। ऐतिहासिक ज्ञान के प्रारम्भिक स्वरूप का निर्माण तथ्यों के आधार पर होता है। इसके बाद अनुभव के आधार तथ्यों की व्याख्या होती है। तथ्यों के एकत्रण एवं वर्गीकरण के बारे में इतिहासकारों में सामान्य सहमति होने की काफी संभावना रहती है लेकिन उसकी व्याख्या को लेकर मतभिन्नता रहती है। यहाँ उल्लेखनीय है कि तथ्यों एवं घटनाओं को उसके संदर्भों से अलग नहीं रखा जा सकता। डिल्थाई कहता है कि ''घटनाओं को संदर्भ में रखना ही उसकी व्याख्या है।'' एक्टन भी इसी क्रम में विचार करते हुए कहता है कि ''मानवी कर्मों के सद्सत् का भी निर्णय करना चाहिए।'' हीगल एवं कॉलिंगवुड के इतिहास विषय विचार इस मत पर आधारित है कि मानवीय कर्मों के मूल में विचार ही होते है। इस प्रकार ऐतिहासिक ज्ञान में तथ्य और उसकी व्याख्या एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष है।

जब हम आनुभाविक जगत की व्याख्या करते हैं तो घटनाओं के कारण और संदर्भ ढूंढने के प्रसंग में हम व्यक्ति के स्वभाव, सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक मान्यताओं के अवबोध तक पहुँचतें है। सामाजिक मूल्य एवं चेतना का विश्लेषण उन आदर्शों, निष्ठाओं एवं निहित स्वार्थों के स्पष्टीकरण के बिना नहीं हो सकता जिनमें तथ्य एवं मूल्य के बीच की विभाजन रेखा इतिहासकार की दृष्टि के अनुसार बदलती रहती है। प्रत्येक मानवीय कर्म में और संरक्षित अतीत में किसी न किसी प्रकार का मूल्यबोध अथवा विवेक निहित रहता है। इस कर्म अथवा अनुभूति को समझने हेतु इस मूल्यबोध का ज्ञान आवश्यक है। अतीत के इस मूल्यबोध का साक्षात्कार करने हेतु इतिहासकार को अपने मानसिक जगत में उस मूल्य से एकाकार होना पड़ता है। इस कार्य हेतु उसे धैयपूर्वक तथ्यों के अन्वेषण के साथ ही एक विशिष्ट कल्पनाशक्ति का निर्माण करना होता है। उसको यह कल्पनाशीलता अपने संस्कार एवं ज्ञान से प्राप्त होता है। अतीत के पुनर्निर्माण के तथ्य, प्रमाण एवं संदर्भ प्रायः साथ–साथ प्राप्त होते है। इतिहासकार घटनाओं के मूल्यनिर्धारण में घटनाओं को उनके अपने चरित्र और प्रभाव के संदर्भ में आकलित करने का प्रयत्न करता है। घटनाओं के प्रति मानवीय चिंतन का संदर्भ समकालीनता से प्रभावित होता है। इसी कारण इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत अतीत की व्याख्या एक विशिष्ट स्वरूप में प्रस्तुत होती है। इतिहासकार की दृष्टि उसके अपने युग और उसकी अपनी स्थिति से प्रभावित होती है। और इसी कारण भिन्न–भिन्न कालखण्डों में ऐतिहासिक पुनर्लेखन की आवश्यकता बनी रहती है।

3.3.2 भारतीय इतिहास एवं मूल्यबोध

प्रत्येक मौलिक सभ्यता के मूल में कुछ मूल प्रवृत्तियाँ होती है। भारतीय सभ्यता की मूल प्रवृत्ति आत्मबोध–मूलक है। इस प्रश्न का समाधान ही मनुष्य का परमलक्ष्य माना गया है। आत्मबोध या मोक्ष प्राप्त करना जीवन का परम पुरुषार्थ है। अर्थ एवं काम सहायक पुरुषार्थ है। इस सहायक पुरुषार्थों को धर्म के अनुशासन में सेवन करना होता है। इतिहास वस्तुतः परमसाध्य को लक्ष्य बनाकर धर्म के अनुशासन में रहते हुए अर्थ एवं काम को साधने की कला है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अवबोध हेतु विशिष्ट भारतीय संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। साहित्य, कला, धर्म, विज्ञान, दर्शन, दण्डनीति, अर्थनीति आदि सब संस्कृति के बाह्य अंग है। इन कारणों को नियंत्रित करने वाली आत्मा है। आत्मपुष्ट होकर इन्द्रियाँ आनुभाविक जगत में सक्रिय रहती है। एक परम्परानिष्ठ अतीत लेखक के लिए समस्त अतीत एक सा प्रतीत होता है। उसे मानव जीवन के विकास में एक तारतम्यता प्रतीत होता है। अतः उसके वर्णन में कालक्रम, भौगोलिक स्वरूप, सांस्कृतिक विकास आदि को विशिष्ट काल में स्थित न होकर एक अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में आता है। भारतीय संस्कृति के अध्येयता की अभिरुचि उन्हीं क्रियाकलापों में ही होती है जिनके निर्वहन से धर्म को नित्य मानते हुए उसके भारतीय परम्परा में विचार, मनुष्य व संस्थाएँ समग्रता में अभिव्यक्त होते है। इतिहास यहाँ अनन्त की लोकयात्रा है।

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में मूल्यपरक घटनाओं की परिकल्पना एवं उसका घटित होना वैदिक साहित्य के समय से ही परिलक्षित होता है। वैदिक साहित्य में संग्रहित दान स्तुतियाँ एवं आख्यान मानव को उच्च सांस्कृतिक मूल्यों से प्रेरित लक्ष्यों की और अग्रसर होने का निर्देश करते है। बौद्ध एवं जैन साहित्य में ऐसे असंख्य उदाहरण संगृहित है जिसमें राजा से लेकर अति साधारण मनुष्य तक धर्म एवं नैतिकता के आलोक में अपना जीवन संचालित किया। अशोक का उदाहरण विश्वविख्यात है जिसने अपने शक्ति के उच्चतम स्तर पर पहुँचकर धर्म एवं

लोककल्याण को सर्वोच्च लक्ष्य मान लिया एवं जीवन पर्यन्त इस कार्य में लगा रहा। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखकों ने भी अपने लेखन में आत्मा की शुद्धता, चरित्र एवं नैतिक संदर्भों को पर्याप्त स्थान दिया। प्राचीन भारत के महाकाव्य रामायण एवं महाभारत में मूल्यपरक सामाजिक आदर्शों का अद्‌भुत संयोजन है। भारतीय इतिहास लेखन में निसन्देह सामाजिक, आर्थिक एवं सास्कृतिक विषयों का संयोजन है परन्तु उन सबको विशिष्ट भारतीय नैतिकता के आलोक में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। अच्छाई एवं बुराई के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। भारतीयों का यह प्रयास रहा है कि संतुष्ट जीवन व्यतीत करे। साथ ही वे परलौकिक जीवन के मार्ग को भी प्रशस्त करते रहे। कल्हण ने भी अपने राजतरंगिणी का प्रधान उद्देश्य यह माना है कि भविष्य के राजाओं एवं प्रजाजनों को अतीत का सत्य ज्ञान कराया जाय ताकि वे पुनः अतीत की गलतियां न दुहराएं।

3.4 इतिहास की विषयवस्तु

इतिहास का विषय अतीत है पर उसका परिप्रेक्ष्य वर्तमान का है। इसी कारण इतिहास का स्वरूप युगानुसार परिवर्तित होता है। प्राचीन एवं मध्यकालीन युग का इतिहास ऐतिहासिक घटनाक्रमों के विवरण पर मुख्य रूप से आधारित था। यूनानी इतिहासकार हेराडोट्स तथा थ्यूसिडाडिस ने अपने पूर्वजों से संबंधित घटनाओं का उल्लेख ही अपने इतिहास लेखन का मुख्य आधार बनाया है। प्राचीन भारत का चरित इतिहास लेखन भी राजनैतिक घटनाओं के विवरण पर ही आधारित है। इस प्रकार के इतिहास लेखन में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ ही मिथकों, जनश्रुतियों एवं लोकपरम्पराओं का अन्तर्गुंथन होता है। पुनर्जागरण ने विविध विषयों के साथ ही इतिहास को नया स्वरूप प्रदान किया। इसने इतिहास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्वों के समावेश के अंश का विस्तार किया। इसके पश्चात् इतिहास की विषयवस्तु का स्वरूप विस्तृत होता गया। अठारहवी सदी में स्कॉटलैंड के दो महान विद्वान दार्शनिक डेविड ह्यूम और अर्थशस्त्री एडम स्मिथ के लेखन से इतिहास की दिशा भी प्रभावित हुई। डेविड ह्यूम का मानना था कि इतिहास से परिचित व्यक्ति के लिए कहा जा सकता है कि वह दुनिया की शुरुआत से ही जी रहा है। ऐडम स्मिथ ने राजनीतिक अर्थशास्त्र की नींव डाली तथा इतिहास को प्रभावित करने में अर्थ की भूमिका का भी विवेचन किया। उन्नीसवीं सदी में वैज्ञानिक इतिहास लेखन की भूमिका तैयार होने लगी। नीबूर और रांके के इतिहास लेखन ने अनुभव पर आधारित इतिहास लेखन की परम्परा को अपनाने पर बल दिया। बीसवीं सदी में इतिहास की विषयवस्तु को अत्यन्त विविधता पूर्ण कलेवर प्राप्त हो चुका था। इतिहास के विषयवस्तु को सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं का अनुगामी बनाने का प्रयत्न किया गया।

3.4.1 इतिहास के विषयवस्तु की दार्शनिक अवधारणा

1. इतिहास का विषयवस्तु अत्यन्त विशिष्ट होता है। यह एक प्रकार का अनुभव होता है। कॉलिंगवुड के अनुसार ऐतिहासिक ज्ञान अतीत में मनुष्य के मस्तिष्क का ज्ञान है। इतिहासकार अतीत में मनुष्य के मस्तिष्क का ज्ञान है। इतिहासकार अतीत के कार्यों को वर्तमान में निरन्तरता प्रदान करता है। इसकी विषयवस्तु विचार–प्रक्रिया है। इतिहासकार जिन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। उन्हें वह मात्र देखता नहीं है, बल्कि अपने मस्तिष्क में अनुभव द्वारा सजीव करता है। इतिहास में अनुभव तथा अवबोध का संबंध अन्योन्याश्रित है। डिल्थे के अनुसार ''मानवजाति मानव अध्ययन का विषय उस समाज बन जाता है जब सजीव वाणी में उसकी अभिव्यक्ति होती है जो बोधगम्य है। जीवन को मस्तिष्क तथा शरीर घटक के सजीव अनुभव तथा समझ के द्वैत सम्बन्धों द्वारा ही समझा जा सकता है।''
2. इतिहास में विचार की प्रधानता होती है, परन्तु विशेष विचार का इतिहास नहीं होता; क्योंकि इसकी पुनरानुभूति इतिहासकार के मस्तिष्क में सम्भव नहीं है। इतिहास की विषयवस्तु वह विचार होता है जिसका पुनरानुभूति इतिहासकार को हो सके। व्यक्तिगत चिंतन एवं अनुभूति पर आधारित आत्मकथा में ऐतिहासिक तत्त्व तो होते है लेकिन वह इतिहास ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। वह साहित्यिक कोटि की ही रचना मानी जाती है।
3. यथार्थ इतिहास लेखक के लिए आवश्यक है कि इतिहासकार तथा इतिहास की विषयवस्तु की दूरी समाप्त हो। विषयवस्तु से एकाकार होकर ही इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाक्रम की पुनरानुभूति कर सकता है। इस स्तर के पश्चात उस द्वारा वर्णित ऐतिहासिक विषय सभ्यता की अनुभूति कराते हैं क्योंकि वह अतीत कालिक व्यक्तियों के विचारों की स्वयं अनुभूति करता है। लेकिन ऐतिहासिक चिंतन अनुभव चेतना नहीं है, बल्कि प्रतिबिम्बित विचार होता है। इस प्रकार प्रतिबिंबित विचार ही इतिहास की विषयवस्तु होता है।

4. महान इतिहासकार कॉलिंगवुड का मानना है कि प्रत्येक परावर्तित प्रक्रिया उद्देश्यपूर्ण होती है। इसी को इतिहास की विषयवस्तु कहते हैं। चूंकि इतिहास के अन्तर्गत अनेक प्रकार के क्षेत्र आते है। अतः उसका अनुभव क्षेत्र भी अत्यन्त विशाल होता है। राजनैतिक क्षेत्र में कार्यरत व्यक्ति भी विशेष उद्देश्य से परिचालित होता है। वह अपने विचारयुक्त योजना के अनुसार अपने क्षेत्र में प्रगति करता जाता है। आर्थिक क्षेत्र में होने वाले कार्य भी उद्देश्यपूर्ण होते है। यही बात अन्य क्षेत्रों में भी लागू होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव के उद्देश्यपूर्ण कार्यों का अध्ययन ही इतिहास की विषयवस्तु है।

5. अतीत वर्तमान के संदर्भ में ही प्रासंगिक होता है। गार्डिनर का मानना है कि इतिहासकार जिन घटनाओं का अध्ययन करता है वह अतीत नहीं, अपितु वर्तमान होता है। ऐतिहासिक अतीत का पुनर्निमाण साक्ष्यों पर आधारित है। चूंकि साध्यों का सम्बन्ध वर्तमान से घनिष्ठ रूप से संबंद्ध होता है। इस प्रकार इतिहास के अन्तर्गत मनुष्य के विचार, कार्यों तथा उसके व्यवहार का वर्णन होता है। समय एवं स्थान के परिप्रेक्ष्य में इस वर्णन का पुनर्लेखन होता रहता है। अतः इतिहास का विषयवस्तु समसामयिक संदर्भों को समेटता रहता है।

6. इतिहास के कुछ प्रसिद्ध चिंतकों ने इतिहास के विषयवस्तु पर अपने विचार व्यक्त किए है। हीगेल के अनुसार इतिहास की विषयवस्तु समाज तथा राज्य होता है। मनुष्य अपने व्यावहारिक जीवन तथा वस्तुनिष्ठ मस्तिष्क की अभिव्यक्ति क्रिया तथा संस्थाओं में करता है। कार्ल मार्क्स ने समाज एवं आर्थिक संबंधों को इतिहास का प्रमुख विषयवस्तु माना है। टॉयनवी ने संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन को इतिहास की प्रमुख विषयवस्तु माना है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि राज्य, समाज, आर्थिक जीवन, कला, विज्ञान, धर्म एवं दर्शन इतिहास की विषयवस्तु हो सकते हैं क्योंकि इसमें मानवीय कार्यों की अनुभूति तथा उसके व्यापक प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि भौतिक एवं अभौतिक तत्वों के समाहार के आधार पर ही इतिहास के विषयवस्तु का आकलन किया जाता है। भौतिक तत्व इतिहास के बाह्य स्वरूप का निर्धारण करते है तथा अभौतिक तत्व अथवा विचार इतिहास के आन्तरिक स्वरूप को निर्धारित करते है। इतिहासकार कार्यों एवं घटनाओं के परिवेश में ही विचारों का अनुशीलन करता है।

7. उन्नीसवीं सदी के अनेक इतिहासकार इतिहास की विषयवस्तु को मनोविनोद का साधन मानते थे। इन लोगों ने समसामयिक सामाजिक आवश्यकता को प्राथमिकता देने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप धर्म एवं नैतिकता को इतिहास में पर्याप्त महत्त्व मिला। मैकाले, सर वाल्टर स्कॉट तथा कार्लायल के इतिहास लेखन में उनका विषयवस्तु सामाजिक मनोरंजन से प्रभावित है। बीसवीं सदी में इतिहास के विषयवस्तु के स्वरूप में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है। इतिहास को तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक बनाने के प्रयत्न आरम्भ हुए। रांके, ब्यूरी, स्पेंगलर आदि विद्वानों ने आलोचनात्मक एवं वैज्ञानिक विधिओं के अनुसार प्रस्तुतीकरण पर जोर दिया। आधुनिक शोध प्रविधियों एवं प्रौद्योगिकी के विकास ने इतिहास के तथ्यों को नया स्वरूप प्रदान किया। विषय की आवश्यकतानुसार राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक सांस्कृतिक, कला एवं स्थापत्य, सामरिक, धार्मिक आदि तत्त्व इतिहास के विषय वस्तु बनने लगे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समय की आवश्यकतानुसार इतिहास के विषयवस्तु का स्वरूप बदलता है एवं इसका विस्तार भी होता रहता है। वर्तमान समय में सामान्य इतिहास के साथ–साथ विशिष्ट शाखाओं में दक्षता प्राप्त करने पर बल दिया जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि इतिहास की विषयवस्तु युग तथा सामाजिक आवश्यकता की देन है। और भविष्य में युग के आवश्यकताओं के आधार पर यह नवीन कलेवर को धारण करेगा।

3.5 सारांश

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि इतिहासकार द्वारा अन्वेषित विषय युगीन मान्यताओं के प्रतिनिधि होते हैं। इतिहास के ऐतिहासिक तथ्यों के पीछे व्याख्या होती है और ऐतिहासिक व्याख्या में मूल्य उपस्थित होते है। इतिहासकार अपनी व्याख्या में समसामयिक समाज में उपस्थित प्रश्नों का उत्तर देता है। इतिहासकार के निर्णयों को प्रभावित करने में समसामयिक सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। यद्यपि ये मूल्य स्थायी प्रवृत्ति के होते हैं लेकिन इनमें भी युगानुकूल आवश्यकताओं के संदर्भ में परिवर्तन या कुछ पुराने मूल्यों को महत्त्वहीन होने के संदर्भ पाए जाते है। सुदीर्घ मानवीय इतिहास में इतिहास के कलेवर का अत्यधिक विस्तार हुआ है तथा मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष इसके विषयवस्तु का अंग बन गया है। इतिहास विषय का इतना विस्तार होना इतिहासकार के लिए चुनौती भी है, साथ ही उसे अनेक नवीन संभावनाएं प्रदान करती है। चुनौती यह है कि इतने विशाल विषय अथवा अनुशासन

को कैसे एक सूत्र में बांधा जाय। लेकिन इसका लाभ यह है कि यह इसे अन्य विषयों के साथ सहयोग एवं अन्वेषण हेतु मार्ग उपलब्ध कराती है ताकि मानव जीवन एवं समाज का समग्र आकलन प्रस्तुत किया जा सके।

3.6 संदर्भ पुस्तकें

1. इतिहास दर्शन –झारखण्डे चौबे, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013
2. मूल्य मीमांसा – गोविन्द चन्द्र पाण्डे, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1973
3. भारतीय परम्परा के मूलस्वर – गोविन्द चन्द्र पाण्डे, नेशलन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1993
4. इतिहास – मूल्य और अर्थ, अतुल कुमार सिन्हा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0 लि0), द्वितीय संस्करण–2010

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहास एवं मूल्य के मध्य संबंध को स्पष्ट कीजिए।
2. इतिहास के विषयवस्तु पर प्रकाश डालिए।
3. इतिहास के विषयवस्तु की दार्शनिक अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
4. आधुनिक इतिहास लेखन का विषयवस्तु किन तत्वों से विशेष रूप से प्रभावित है, स्पष्ट कीजिए।
5. भारतीय इतिहास लेखन के मूल्य प्रणाली पर प्रकाश डालिए।

इकाई 4 : इतिहास –विज्ञान अथवा कला

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 इतिहास विज्ञान है

4.3.1 इतिहास सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान है

4.3.2 सामान्यीकरण

4.3.3 इतिहास शिक्षाप्रद है

4.3.4 इतिहास में भविष्य कथन

4.3.5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता

4.4 इतिहास कला है

4.4.1 इतिहास अतीत का कलात्मक पुनर्निमाण है

4.4.2 इतिहास विज्ञान से भिन्न प्रकृति का है

4.4.3 इतिहास में परित्याग तथा चयन की अवधारणा

4.4.4 परिकल्पना

4.5 सारांश

4.6 संदर्भ पुस्तकें

4.7 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इतिहास को विज्ञान अथवा कला मानने को लेकर इतिहासकारों के मध्य लम्बा विमर्श चला हैं। उन्नीसवीं व बीसवीं सदी के आरम्भ में इतिहासकारों का एक वर्ग इतिहास को विज्ञान सिद्ध करने के लिए कृत संकल्प था। इस हेतु उन्होंने तथ्यों, प्रणालियों व नियमों की व्यापक योजना भी प्रस्तुत की। इसके सकारात्मक परिणाम भी निकले। इतिहास को साहित्य एवं अलौकिक शक्तियों के हस्तक्षेप से मुक्त कर समाज विज्ञान की श्रेणी में रखा जाने लगा। लेकिन इतिहास विषय की अपनी विशिष्टता है। इसके अध्ययन के अधिकांश उपादान अतीत से संबंधित है जिनमें से बहुतों का पुनः प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है। केवल उनके अवशेष, भग्नावशेष या स्मृतियाँ ही इतिहासकार को प्राप्त होती है। अतः उसे अनुमान एवं कल्पनाशीलता का सहारा लेना ही होता है। अतः इतिहास को विशुद्ध विज्ञान की जगह एक सामाजिक विज्ञान के रूप में देखने पर विज्ञान एवं कला दोनों को ही अपनी उपयुक्त भूमिका प्राप्त हो जाती है।

4.2 उद्देश्य

आधुनिक युग में अनेक परम्परागत विषयों को नया कलेवर प्राप्त हुआ है। इतिहास भी इन विषयों में से एक है। इतिहास के सुव्यवस्थित अध्ययन को लेकर उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में अनेक प्रयत्न हुए। इतिहास को सुनिश्चित आधार प्रदान करने के लिए भी इतिहासकारों ने सराहनीय प्रयास किया। इतिहास विषय को प्रासंगिक बनाए रखने के क्रम में इसके प्रकृति एवं वैज्ञानिकता को भी जाँचा–परखा गया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित तथ्यों से अवगत होंगे।

1. इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप;
2. इतिहास में कलात्मक अनुशासन के गुण;

3. इतिहास में सामान्यीकरण की सम्भावना;
4. इतिहास में भविष्य कथन की सम्भावना;
5. इतिहास लेखन में परिकल्पना की भूमिका।

4.3 इतिहास विज्ञान है

इतिहास को विज्ञान मानने वाला का एक बड़ा समुदाय है। इन लोगों को माना है कि इतिहास के अध्ययन में यदि वैज्ञानिक प्रविधियों एवं चरणों का उपयोग किया जाय तो बहुत हद तक इतिहास को विज्ञान का स्तर प्रदान किया जा सकता है। वाल्श ने विज्ञान को परिभाषित करते हुए कहा हे कि ''किसी भी वस्तु के क्रमबद्ध ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।'' उसके माध्यम से तथ्य संबंधी तत्त्वों के एकत्रित करने के स्पष्ट नियम निर्धारित किए जा सकते हैं। मोटे तौर पर विज्ञान का तात्पर्य किसी विषय को स्पष्ट एवं अनुभवगम्य बनाने से लिया जा सकता है। ब्रेवर के अनुसार ''वैज्ञानिक अनुसंधान एक प्रकार का पुनरानुसंधान है।'' अनेक आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि मानव समाज के जीवन के अध्ययन को सरल बनाने में विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इतिहासकार कॉलिंगवुड का मानना है कि इतिहास एक प्रकार का शोध है, इसका संबंध विज्ञान से है। इसमें हमारे प्रश्नों का उत्तर मिलता है। जिस प्रकार विज्ञान में प्रकृति संबंधी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है, उसी प्रकार मानव समाज के जीवन–संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर इतिहास से प्राप्त होता है। जे0बी0 ब्यूरी द्वारा ''इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक, का आधार भी इतिहास द्वारा समाज के प्रमाणिक अध्ययन से है।

आधुनिक समय के अधिकांश इतिहासकारों अपने–अपने तरीके ऐतिहासिक प्रविधियों में प्रमाणिकता लाने का प्रयास किया है। इतिहास को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में ऐतिहासिक तथ्यों का सावधानी से एकत्रण एक महत्त्वपूर्ण चरण है। ब्यूरी का मानना था कि इतिहास को साहित्य से मुक्त किया जाना चाहिए। इसके साथ ही इतिहास को इतिहासकार के व्यक्तित्व तथा उसकी परिष्कृत शैली से मुक्त कर यथार्थ वर्णन को प्रधानता देनी चाहिए। विज्ञान की विशेषता यथार्थता का अन्वेषण है। इस उच्च आदर्श को इतिहास में भी स्थपित करके इसे वैज्ञानिक स्तर प्रदान किया जा सकता है। अनेक आधुनिक इतिहाकारों ने इतिहास को विज्ञान के समकक्ष बनाने हेतु कुछ उपाय या सुझाव प्रस्तावित किया है। एडवर्ड मेयर के अनुसार इतिहासकार ''तथ्यों पर आधारित अतीत का चित्र प्रस्तुत करता है। इतिहासकार की यह वस्तुनिष्ठ मानसिक रचना है। इतिहास की वस्तुनिष्ठ यथार्थता की अनिवार्यता इसकी विशेषता है।'' एडम स्मिथ ने भी लिखा है कि ''इतिहासकार अतीत में मानव जाति के जीवन तथा कार्यों से सम्बन्धित वस्तुनिष्ठ यथार्थ तथ्यों को क्रमबद्धता का निर्धारण सुनिश्चित नियमों के अनुसार करे तो इतिहास की तुलना भौतिक विज्ञान से की जा सकती है।'' इसी क्रम में वाल्श की यह मान्यता भी उल्लेखनीय है कि ''इतिहास एक बौद्धिक प्रक्रिया है तथा चयनशीलता इसकी विशेषता है।'' यदि विज्ञान की विशेषता भी चयनशीलता है तो इस विशेषता के परिप्रेक्ष्य में इतिहास भी निश्चित रूप से विज्ञान है। ब्यूरी ने वैज्ञानिक तरीके से तथ्यान्वेषण तथा सूक्ष्म निरीक्षण पद्धति को इतिहास अध्ययन का अनिवार्य अंग स्वीकार किया है। इन वैज्ञानिक इतिहासकारों के अथक प्रयास से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से इतिहास के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा तथा इतिहास लेखक वस्तुनिष्ठता की ओर उत्तरोत्तर प्रगति करने लगा। इतिहास को विज्ञान मानने के क्रम में कुछ मान्यताओं पर विमर्श करना समीचीन होगा।

4.3.1 इतिहास सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध ज्ञान है

विज्ञान के परिभाषित करने के क्रम में सर्वाधिक जोर उसकी क्रमबद्धता एवं सुव्यवस्थित होने पर दिया जाता है। वाल्श के अनुसार ''इतिहास भी एक वैज्ञानिक अध्ययन हैं एवं इसकी अपनी विधि तथा तकनीक है। इतिहासकार प्रस्तावित विषयों का निष्कर्ष सामान्य नियम एवं साक्ष्य पर आधारित विधियों से निकालता है।'' इसी क्रम में ए.एल. राउज का मानना है कि ''विज्ञान की तरह इतिहास में वस्तुनिष्ठ यथार्थता का अन्वेषण क्रमबद्ध विधियों एवं नियमों के माध्यम से किया जाता है और इतिहास भी एक क्रमबद्ध विज्ञान है। आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि इतिहास की दो स्पष्ट विधियाँ है– पहली बौद्धिक एवं वैज्ञानिक, दूसरी अन्तर संज्ञानात्मक तथा सौन्दर्यशास्त्रीय, इनका परस्पर संबंध विरोधी नहीं, बल्कि सहयोगपूर्ण है। ऐतिहासिक अध्ययन में इतिहासकार दूरदर्शी या सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग नहीं करता, परन्तु उसके दोनों नेत्र उपर्युक्त यंत्रों की तरह तथ्यों के सूक्ष्म विश्लेषण में सदैव क्रियाशील रहते हैं। अतः उसकी एक दृष्टि विश्लेषणात्मक तथा वैज्ञानिक है और दूसरी चयनात्मक तथा सौन्दर्यशास्त्रीय।यदि इतिहास मानवीय उपलब्धियों की कहानी है तो इसके अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग आवश्यक है। डिल्थे का मानना था कि

''विज्ञान प्रकृति का तथा इतिहास मनुष्य का अध्ययन करता है।'' आगे जॉन मायर्स का एक कथन है कि ''प्रकृति तथा मनुष्य का संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।'' उपर्युक्त इतिहासकारों के विचारों के विश्लेषण के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित अध्ययन करता है उसी प्रकार इतिहास मानवीय उपलब्धियों का सुव्यवस्थित अध्ययन करता है।

4.3.2 सामान्यीकरण

सामान्यीकरण को हम विज्ञान का विशेष गुण मानते है। इसके द्वारा कुछ प्रयोगों के आधार पर हम सामान्य निष्कर्ष तक पहुँचते है। सामान्यतः सामान्यीकरण तब होता है जब हम तथ्यों को समझने या आँकड़ों, वस्तुओं, घटनाओं और अतीत के दस्तावेजों के बीच किन्हीं अवधारणाओं की मदद से संबंध स्थापित करते हैं और उन्हें दूसरों तक संप्रेषित करते है। इतिहास के क्षेत्र में सामान्यीकरण असंबध और अस्पष्ट तर्कों का काल और दिक् में आपस में जुड़ना है। यह उनका समूह है, उनका तार्किक वर्गीकरण है। सामान्यतः सामान्यीकरण तथ्यों के बीच का संपर्क है, यह एक प्रकार का निष्कर्ष है या मार्क ब्लाख के शब्दों में ''यह प्रक्रियाओं के बीच उदाहरण प्रस्तुत करने वाला संबंध है।'' ई. एच. कार का मानना है कि ''इतिहास सामान्यीकरण पर आधारित और विकसित होता है।'' एल्टन ने भी सामान्यीकरण को इतिहास का अभिन्न अंग माना है। उनके अनुसार इतिहास तथा ऐतिहासिक तथ्यों के संकलनकर्त्ता में अन्तर का आधार सामान्यीकरण का सिद्धान्त है।

अरस्तु ने सामान्यीकरण के तत्व के आधार कविता को इतिहास से गम्भीर माना था। उनका मानना था कि कविता का प्रत्यक्ष संबंध सामान्य से है और इतिहास का संबंध विशेष से होता है। ब्यूरी का भी मानना है कि इतिहास में सामान्यीकरण की प्रवृत्तियाँ होती है। इतिहास की कुछ घटनाओं के आधार पर सामान्यीकरण की पुष्टि की जा सकती है। काबूर के नेतृत्व में इटली के एकीकरण (1861 ई.) तथा बिस्मार्क के नेतृत्व में जर्मनी के एकीकरण के पश्चात् इतिहासकारों ने सामान्यीकरण के सिद्धान्त के आधार पर यह कहना प्रारम्भ किया कि राष्ट्रीयता के सिद्धान्त की उपेक्षा करना इतिहास की गति से टकराना होगा। सामान्यीकरण के सिद्धान्त के आधार पर इतिहासकार कहता है कि नेपोलियन तथा हिटलर की विफलता इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि कोई सम्पूर्ण यूरोप पर शासन नहीं कर सकता। सम्पूर्ण यूरोप को नियंत्रित करना एक व्यक्ति के सामर्थ्य के बाहर है। ऐक्टन के अनुसार ''सता सर्वशक्ति सम्पन्न को भ्रष्ट करती है और सर्वशक्ति सम्पन्न सता को पूर्णतया भ्रष्ट करता है।'' यद्यपि ऐक्टन का यह कथन किसी विशेष शासक से है, परन्तु सामान्यीकरण के सिद्धान्त के आधार पर इंग्लिश, फ्रेंच, रूसी एवं चीनी राज्यक्रान्तियों पर विचार करते हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के कारणों के विश्लेष्ण में इतिहासकार सामान्यीकरण के आधार पर तथ्यों की पुष्टि करता है। राजा रिचर्ड द्वारा टावर में राजकुमारों की हत्या के उपयुक्त प्रमाणों के अभाव में इतिहासकार सामान्यीकरण के आधार पर कह देता है कि उस युग में शासकों की नीति के अनुसार सम्भावित प्रतिद्वन्दी राजकुमारों की हत्या कर दी जाती थी। इस प्रकार सामान्यीकरण का सिद्धान्त इतिहासकार के निष्कर्ष को प्रायः प्रभावित करता है।

4.3.3 इतिहास शिक्षाप्रद है

विज्ञान को उपयोगी इसलिए माना जाता है क्योंकि वह शिक्षाप्रद है। अनेक इतिहासकारों ने इतिहास में इस गुण के होने का प्रमाणित किया है। इनका मानना है कि यदि सुव्यवस्थित तरीके से अतीत का अध्ययन किया जाय तो यह वर्तमान का समझने में मदद करता है साथ ही भविष्य के लिए सुगम रास्ता तैयार करता है। यह अतीत, वर्तमान एवं भविष्य के बीच संबंध को स्थापित करता है। बेकन के अनुसार ''इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान बनाता है।'' चार्ल्स फर्थ ने भी माना है कि ''इतिहास विज्ञान की भाँति उपयोगी और शिक्षा प्रद है। आगे वे कहते है कि इतिहास एक प्रकार ज्ञान है जो मनुष्य के दैनिक जीवन में उपयोगी है।'' इसी संदर्भ में वाल्टर रैले का मत भी उल्लेखनीय है कि ''इतिहास का उद्देश्य अतीत के उदाहरणों से ऐसी शिक्षा प्रदान करना है जो हमारी इच्छाओं तथा कार्यों का मार्गदर्शन कर सके।'' इतिहास की अवधारणाओं एवं ज्ञान को महत्त्वपूर्ण मानते हुए ही पुनर्जागरण काल में यूरोप की अधिकांश जनता के प्राचीन यूनान और रोम के इतिहास का अध्ययन किया और प्रेरणा प्राप्त की। राम मनोहर लोहिया का मानना है कि ''इतिहास हमारे लिए पर्याप्त लाभदायक विषय है। मनुष्य को अपने नियति की बुराईयों के उत्पत्ति स्थल को खोजकर साफ करने में इतिहास के ज्ञान से मदद मिलती हैं, तभी वह समझ पाता है कि जीवित प्राणियों में व्याप्त बुराइयों को अनायास समाप्त नहीं किया जा सकता, अधिक से अधिक उनकी उत्पत्ति रोकी जा सकती है।'' 1919 ई. में पेरिस शान्ति–सम्मेलन के समय यूरोपीय महाशक्तियों के राजनायिकों ने जर्मनी के साथ वार्साय की सन्धि

की, परन्तु उन लोगों ने 1815 ई. में वियना कांग्रेस की सफलता और विफलता से किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं की। राष्ट्रीयता की उपेक्षा, विजेता को पुरस्कार, और पराजित को दण्ड देने की नीति के परिणामस्वरूप वियना कांग्रेस (1815 ई.) और वार्साय की संधि (1919 ई.) यूरोप में स्थायी शान्ति की स्थापना में पूरी विफल रही। यदि उन्होंने इतिहास की घटनाओं से शिक्षा प्राप्त की होती तो निश्चित रूप से शान्ति स्थापना के उद्देश्य में उन्हें सफलता मिलती। इस संबंध में डेवी का मत प्रासंगिक है कि ''अतीत के अध्ययन की निष्ठा हम अतीत के लिए नहीं, बल्मि सुरक्षित और बहुमूल्य वर्तमान के लिए करते हैं, हम आशा करते हैं कि अतीत का अध्ययन सुखद तथा सुन्दर भविष्य के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि इतिहास विज्ञान की तरह शिक्षाप्रद है और वर्तमान के संदर्भ में जब इतिहासकार अतीत का अध्ययन करता है तो उसका दृष्टिकोण उद्देश्यपरक एवं भविष्योन्मुखी होता है।

4.3.4 इतिहास में भविष्य कथन

विद्वानों का मानना है कि विज्ञान में भविष्यकथन करने की क्षमता होती है जबकि इतिहास में इसका अभाव होता है। ऐतिहासिक तथ्यों की सूक्ष्म विवेचना के पश्चात् इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप में आस्था रखने वाले इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विज्ञान की भाँति इतिहास में भविष्यकथन करने की पर्याप्त संभावना होती है। एक वैज्ञानिक कुछ विशेष परिस्थितियों में ही भविष्यवाणी करता है। परिस्थिति विशेष की पुनरावृत्ति का ही परिणाम सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण होता है। मानव इतिहास में सामान्य परिस्थितियों की पुनारावृत्ति सम्भव है। फ्रांस में 1789 ई. की राज्य क्रांति के बाद 1830 ई. तथा 1848 ई. की क्रान्तियाँ परिस्थितियों की पुनरावृत्ति का परिणाम थी। इतिहासकार सामान्य रूप से भविष्यवाणी कर सकता है कि यदि क्रान्ति की परिस्थितियों की पुनरावृत्ति हुई तो उसके परिणामस्वरूप क्रांति का होना संभावित होता है। वस्तुतः इतिहास के भविष्यकथन संभावनापरक होते हैं। कार्ल पापर ने इस विषय सार्थक मत व्यक्त करते हुए कहा है कि वैज्ञानिकभविष्यवाणी करता है तथा इतिहासकर परिस्थितियों के संदर्भ में भविष्य के लिए मार्गदर्शन करता है। संक्रामक रोग, स्पर्श और संपर्क में आने से होता है। किसी विद्यालय में दो–तीन बच्चों को चेचक निकलने या किसी अन्य संक्रामक बीमारी का होना महामारी का संकेत करता है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अतीत में राजू और गोलू नामक विद्यार्थी संक्रामक रोग से प्रभावित थे और भविष्य में अमर और अजय रोगग्रस्त होंगे। वस्तुतः इतिहासकार केवल भविष्य हेतु मार्गदर्शन करता है और इसका आधार सामान्यीकरण का सिद्धान्त होता है।

4.3.5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता

वस्तुनिष्ठता विज्ञान का प्रमुख आधारस्तम्भ होता है। इसी के आधारपर वैज्ञानिक निष्कर्षों को सार्वभौम मान्यता प्राप्त हो जाती है। समुचित प्रमाणों और साक्ष्यों के आधार पर विश्व के सभी वैज्ञानिक अनुसंधान के निष्कर्ष को स्वीकार करते हैं। ऐतिहासिक लेखन में वस्तुनिष्ठता के साथ ही विषयनिष्ठता भी पाई जाती है। इतिहास, लेखक की भावनाओं और व्यक्तित्व से भी प्रभावित होता है। इसके साथ ही ऐतिहासिक निष्कर्षों पर सार्वभौमिक सहमति नहीं होती है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इतिहास पूर्णतया विषयनिष्ठ होता है। अगस्त कोम्ते के अनुसार जब इतिहासकार व्यक्तिगत भाव का परित्यागकर सिद्धान्त का आश्रय लेता है तो इतिहास का विषयनिष्ठ स्वरूप वस्तुनिष्ठता में परिवर्तित हेा जाता है। इतिहास के अध्ययन को वस्तुनिष्ठ बनाने हेतु आधुनिक इतिहासकार ने अनेक प्रयास किए है। आधुनिक वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग का ऐतिहासिक तथ्यों के एकत्रण एवं अन्तरवैषयिक अध्ययनों को बढाकर ऐतिहासिक निष्कर्षों को वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसर किया जा रहा है। इस प्रकार ऐतिहासिक अनुसंधान वैज्ञानिक अनुसंधान की तरह वस्तुनिष्ठ एवं सार्वभौमिक हो सकता है।

4.4 इतिहास कला है

इतिहास एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत विद्वानों का एक वर्ग इतिहास में कला के अनेक गुणों को प्रतिबिम्बत मानता है। उनका मानना है कि केवल ऐतिहासिक तथ्यों को एकत्र कर देने मात्र से इतिहासकार का दायित्व पूर्ण नहीं हेाता है। इतिहासकार इतिहास के अर्न्तगत अपने तथ्यों के साथ अतीत के समाजों एवं उस काल के मानवों के मस्तिष्क में चलने वाले वैचारिक अन्तर्प्रवाहों की यात्रा करता है। उसके इस कार्य में कल्पनाशीलता तथा कलात्मक अभिज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके साथ ही इतिहास विषय के प्राचीन स्वरूप पर जाय तो स्पष्ट है कि प्राचीन एवं मध्यकालीन समाजों का इतिहास कला के ज्यादा निकट है। अनेक आधुनिक विद्वानों का मानना है कि कलात्मक अभिरूचि से संपन्न व्यक्ति में अतीत की पुनर्रचना को बेहतर तरीके से करने की क्षमता होती है। इस संदर्भ में आई.ए. रिचर्ड्स की मान्यता महत्त्वपूर्ण है कि 'कला सम्प्रेषण प्रक्रिया का सर्वोत्कृष्ट रूप है।'

प्रसिद्ध इतिहासकार रेनियर ने एक स्थान पर लिखा है कि इतिहास कला है तथा एक कलाकार की ही भाँति इतिहासकार समाज की सेवा कर सकता है। इसी संदर्भ में हेनरी पिरेन का मत भी उल्लेख करने के योग्य है कि इतिहास प्राचीन काव्य है और काव्य के रूप में हमारे स्वभाव की आवश्यकताओं के अनुरूप है। वस्तुतः मानव स्वभाव की आवश्यकताओं की पूर्ति काव्य तथा इतिहास दोनो द्वारा होती है। गालब्रेथ ने एक स्थान पर लिखा है कि इतिहास का अध्ययन व्यक्तिगत विषय है जिसमें प्रक्रिया, परिणाम की अपेक्षा अधिक मूल्यवान होता है। प्रक्रिया का अभिप्राय कलात्मक इतिहास लेखन से है। हालांकि परिणाम की उपेक्षा करना उचित नहीं है। क्योंकि इतिहासकार स्थान, काल, तथ्य तथा साक्ष्य की सीमाओं में बंधा रहता है। ऐसी परिस्थिति में परिणाम की उपेक्षा सम्भव नहीं है।

4.4.1 इतिहास अतीत का कलात्मक पुनर्निमाण है

महान इतिहासकार क्रोचे का मानना था कि इतिहासकार का पुनीत कर्त्तव्य अतीतकालिक तथ्यों का कलात्मक एवं साहित्यिक प्रस्तुतीकरण होना चाहिए। अनातोले फ्रांस का मत भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि इतिहास विज्ञान नहीं अपितु कला है तथा कल्पना के माध्यम से ऐतिहासिक पुनर्निमाण सम्भव है। डिल्थे में भी इस संबंध में महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए है। उनके अनुसार इतिहासकार द्वारा अपने मस्तिष्क में अतीत को पुनर्जीवित करने का तात्पर्य अपने व्यक्तित्व को विकसित करना है। उपर्युक्त सभी इतिहासकार कला को भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं, बल्कि संज्ञात्मक प्रक्रिया के संदर्भ में लेते है। निश्चित रूप से इतिहास का ज्ञान विशिष्ट तथा व्यक्गित होता है। एक वैज्ञानिक तथ्य का अवलोकन मात्र करता है लेकिन इतिहासकार एक कलाकार की भांति उसे अनुभूत करने का प्रयत्न करता है। इतिहासकार और कलाकार में यही सामंजस्य है। इतिहास एक अत्यन्त ही लोकप्रिय कला है। ऐतिहासिक कला में केवल भावनाओं अथवा संभावनाओं का प्रकटीकरण न होकर यथार्थथता का प्रस्तुतीकरण होता है। इतिहासकार ऐतिहासिक श्रोतों के आधार पर घटनाओं की अनुभूति अपने मस्तिष्क में करता है। उसका प्रस्तुतीकरण मानसिक प्रक्रिया का परिणाम होती है।

4.4.2 इतिहास विज्ञान से भिन्नप्रकृति का है

इतिहास और विज्ञान में कुछ मौलिक भिन्नताएं हैं। इतिहास में विज्ञान की विशिष्ट प्रयोगात्मक सत्यापन विधि का कोई स्थान नहीं है। इतिहासकार का उद्देश्य इतिहास लिखना होता है न कि इतिहास बनाना। इसके साथ ही इतिहास में गणित सिद्ध तर्क प्रक्रिया की भी सीमित भूमिका होती है। वस्तुतः इतिहास एक वर्णनात्मक विद्या है। इसमें आगमनात्मक एवं निगमनात्मक प्रविधियाँ बहुत उपयोगी नहीं है। विज्ञान में वस्तुपरकता का पूर्ण समावेश होता है तथा मूल्यपरकता के लिए सीमित स्थान होता है। जबकि इतिहास में पर्याप्त मूल्यपरकता पाई जाती है। कुछ इतिहासकार इतिहास में वैज्ञानिक तटस्थता की तलाश करते हैं। जहाँ तक तटस्थता का संदर्भ सत्यता के पक्षपात शून्यता से है तो वहाँ तक तो ठीक है। लेकिन जहाँ मूल्यों की बात आएगी वहाँ इतिहासकार हमेशा विवेक का इस्तेमाल करेगा। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय के शब्दों में ''मानव मन सत्य पक्षपाती होता है किन्तु सत्य तटस्थ वस्तुमात्र नहीं हेाता। सत्य में ऋत अथवा मूल्य भी संगृहीत होते है। मानव–इतिहास की मूल्यनिरपेक्षता, केवल कार्यकारणात्मक वर्णन और केवल समय के साथ छोड़ी गई बातों का ढेर मात्र होगा। मूल्यों का इतिहास मनुष्य की आत्मचेतना का, उसकी आत्मसाधना का इतिहास होगा।'' वस्तुतः इतिहासकार की दृष्टि न सिर्फ तथ्यनिष्ठता पर होती है बल्कि वह सत्यनिष्ठता के लिए भी प्रयास करता है। वह वस्तु के साथ–साथ मूल्य का अनुभव करता है। वह तर्क के साथ विवेक का उपयोग करता है और विवेक का यह उपयोग उसकी पद्धति की बौद्धिकता को उत्कृष्टतम बना देता है।

4.4.3 इतिहास में परित्याग तथा चयन की अवधारणा

इतिहासकार में एक परिष्कृत कलाकार की भाँति चयन एवं परित्याग का गुण आवश्यक माना जाता है। चयन एवं परित्याग की प्रक्रिया में इतिहासकार के विवेक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उन्नीसवीं सदी के इतिहासकारों की मान्यता थी कि इतिहास में अधिकाधिक तथ्यों का समावेश होना चाहिए, लेकिन इस प्रकार का मत उचित नहीं है। इतिहास में केवल सुसंगत तथ्यों का समावेश होना चाहिए। इस संबंध में लिटन स्ट्रैची का मानना है कि इतिहासकार को आवश्यक तथ्यों का चयन तथा अनावश्यक तथ्यों का परित्याग में पारंगत होना चाहिए। वस्तुतः इतिहासकार का कार्य एक माली के समान होता है। जिस प्रकार माली उद्यान को सुन्दर बनाने हेतु अनावश्यक पौधों को काटकर फेंक देता है तथा आवश्यक पौधों को निरन्तर रोपण करता है। उसी प्रकार इतिहासकार अपनी रचना को रोचक बनाने हेतु आवश्यक तत्वों का समावेश तथा अनावश्यक तथ्यों की छटनी करता रहता है। इतिहासकार चयन एवं त्याग की प्रक्रिया में अपने को साहित्य जगत में पाता है। वह कलाकार की भाँति अतीत के तथ्यों के आधार पर साहित्यिक

शैली का प्रस्तुतीकरण करता है। अपनी रचना को आकर्षक एवं रोचक बनाने हेतु वह रोचक एवं प्रसंगानुकूल उदाहरणों एवं घटनाओं का समावेश अपनी रचना में करता है। उसका यह प्रयास इतिहास को एक कलात्मक अनुशासन की ओर ले जाता है।

4.4.4 परिकल्पना

अनेक विद्वानों एवं इतिहासकारों का मानना है कि इतिहास में तथ्य एवं कल्पना का सुन्दर मिश्रण होता है। ट्रेवेलियन ने कहा है कि ''अतंस्थल में इतिहास की अभ्यर्थना परिकल्पनात्मक है। यथार्थता ऐतिहासिक अध्ययन की कसौटी है, इसकी उत्प्रेरक पुनरावेदन काव्यात्मक है। इतिहासकार अपनी मानसिक रचना के माध्यम से अतीत का काल्पनिक चित्रण करके समसामयिक समाज को उसका अवलोकन कराता है। यह उल्लेखनीय है इतिहास में परिकल्पना का उपयोग होते हुए इतिहासकार एवं कवि अथवा साहित्यकार से भिन्नता हेाती है। कवि तथा साहित्यकार की परिकल्पना असीमित है किन्तु इतिहासकार यथार्थता के दायरे में बंधा होता है। इतिहासकार साक्ष्यों तथा ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर अतीतकालिक घटनाओं, महापुरुषों के कार्यों तथा उपलब्धियों का आनुमानिक चित्र प्रस्तुत करता हैं यही नहीं वह समसामयिक समाज का सजीव दिग्दर्शन भी कराता है। वस्तुतः ऐतिहासिक तथ्य निर्जीव होते है। हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, कौशाम्बी, सारनाथ आदि के भग्नावशेष, शिलालेख, सिक्के, मूर्तियाँ आदि निर्जीव ही होते हैं। परन्तु इतिहासकार अपनी कल्पनाशक्ति से निर्जीव ऐतिहासिक तथ्यों को सजीव एवं रोचक बनाकर लोगों में इतिहास के प्रति लगाव पैदा करता है।

ऐतिहासिक परिकल्पना के विषय में कॉलिंगवुड का मानना है कि इतिहास अतीतकालिक मानवीय कार्यों तथा उसके विचारों को अध्ययन है। इतिहास के अनेक नायक जैसे सिकन्दर, नैपोलियन बोनापार्ट, बिस्मार्क, अकबर आदि अब जीवित नहीं है लेकिन उस समय के अतीत का एक काल्पनिक प्रस्तुत कर इतिहासकार आज भी उस समय को जीवित किए हुए है। ऑस्कर वाइल्ड ने कहा है कि प्रतिभावान व्यक्ति ही इतिहास की रचना कर सकता है। यहाँ प्रतिभावान का तात्पर्य इतिहासकार के कलात्मक परिपक्वता से है। कलात्मक परिपक्वता के आधार पर ही इतिहासकार अनावश्यक तथ्यों का परित्याग, आवश्यक तथ्यों का चयन तथा निर्जिव तथ्यों को परिकल्पना के आधार पर सुस्पष्ट कलेवर प्रदान करता है। इस संदर्भ में टॉयनवी का मत प्रासंगिक है कि एक सफल इतिहासकार में कलात्मक, काव्यात्मक तथा परिकल्पनात्मक शैली का होना आवश्यक है।

4.5 सारांश

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि इतिहास को तथ्यपरक बनाने पर वर्तमान समय के अधिकांश इतिहासकार सहमत है। इसके साथ ही इतिहास लेखन में आधुनिक वैज्ञानिक विधियों का भी प्रयोग आज के इतिहासकार की प्रमुख आवश्यकता है। इसके बावजूद इतिहास में कल्पनाशीलता, चयन एवं परित्याग का प्रयोग तथा मूल्यपरकता के समावेश की आवश्यकता बनी रह जाती है। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय का यह मत समीचीन है कि ''इतिहास में यथार्थता के साथ–साथ विवरण संबंधी कुशलता, रोचकता, दृष्टांतों का चयन तथा चरित्र–चित्रण की विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह इतिहास में कला की विशेषताओं को व्यक्त करता है।'' ऐतिहासिक तथ्य प्रायः निर्जीव होते है। परन्तु इतिहासकार अपनी कलात्मक एवं रोचक–लेखन शैली द्वारा निर्जीव ऐतिहासिक तथ्यों को सजीव एवं रोचक इतिहास में परिणत कर देता है। लेकिन इतिहास कला का समावेश यथार्थता के दायरे में ही होना चाहिए। अत्यधिक कल्पनाशीलता इतिहास एवं साहित्य के मध्य सीमा का समाप्त कर देगी। निष्कर्षतः हम कह सकते है कि इतिहास के स्वरूप में कला एवं विज्ञान का समन्वय होना चाहिए। यथार्थ तथ्यों एवं नवीन अनुसंधान विधियों का प्रयोग करते हुए यथार्थ का वास्तविक चित्र इतिहासकार को प्रस्तुत करना चाहिए। इस संबंध में जी.एम. ट्रेवेलियन का मत प्रासंगिक है कि ''ऐतिहासिक तथ्यों की खोज प्रणाली वैज्ञानिक होनी चाहिए किन्तु पाठकों के सामने उसे पेश करने की विधि कलात्मक होनी चाहिए।''

4.6 संदर्भ पुस्तकें

- इतिहास – मूल्य और अर्थ, अतुल कुमार सिन्हा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0 लि0), द्वितीय संस्करण–2010
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999

- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

4.7 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहास विज्ञान है अथवा कला अथवा दोनों विवेचना कीजिए।
2. ''इतिहास विज्ञान है।'' आप इस कथन से कहाँ तक सहमत है?
3. ''इतिहास कला है।'' आप इस कथन से कहाँ तक सहमत है?
4. इतिहास विज्ञान एवं कला का सुन्दर सम्मिश्रण है'' इस विवेचना कीजिए।
5. इतिहास को विज्ञान मानने के सन्दर्भ में प्रमुख इतिहासकारों के मतों का विश्लेषण कीजिए।

इकाई 5 : प्राचीन भारत में इतिहास की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के आरम्भ की पृष्ठभूमि

5.3.1 प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था

5.3.2 प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक चेतना की अवधारणा थी

5.4 प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक साहित्य व इतिहास चेतना

5.4.1 वैदिक इतिहास लेखन

5.4.2 इतिहास–पुराण परम्परा

5.4.3 बौद्ध एवं जैन इतिहास लेखन परंपरा

5.4.4 चरित इतिहास लेखन

5.4.5 कल्हण एवं उनकी राजतरंगिणी

5.5 प्राचीन भारतीय इतिहास की कुछ मान्यताएँ

5.5.1 युगचक्र की अवधारणा

5.5.2 अतवारवाद की अवधारणा

5.5.3 कर्मवाद की अवधारणा

5.5.4 भारतीय आध्यात्मिकता की व्याख्या

5.6 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की समस्याएँ

5.7 सारांश

5.8 संदर्भ पुस्तकें

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

वर्तमान समय में भारत में प्राचीनकाल से रचित ऐतिहासिक साहित्य क्रमबद्ध रूप से नहीं प्राप्त होता है। यद्यपि भारत का प्राचीन साहित्य बहुत ही विशाल एवं समृद्ध है, लेकिन इसमें व्यवस्थित ऐतिहासिक सामग्री से युक्त ग्रन्थ अधिक संख्या में उपलब्ध नहीं है। इसी कारण विदेशी विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास की अवधारणा बहुत स्पष्ट नहीं थी। परन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य का समुचित ढंग से अनुशीलन किया जाय तो यह स्पष्ट है कि भारतीय लोग अतीत की अवधारणा से समुचित ढंग से परिचित थे। उन्होंने अतीत को सहेजने की पर्याप्त कोशिश भी की है। इतिहास को वे इतना महत्व देते थे कि इसे पाँचवा वेद मानते थे। राजा लोग अपनी दैनिक दिनचर्या में इतिहास के श्रवण को भी पर्याप्त महत्व देते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ कारणों से प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक साहित्य सही ढंग से संरक्षित नहीं हो पाया। कल्हण की राजतरंगिणी के दृष्टान्त से भी इस संभावना को बल मिलता है। कल्हण अपने ग्रन्थ में उल्लेख करता है कि पूर्व के लगभग ग्यारह ग्रन्थों में कश्मीर का इतिहास लिखा गया था। उनमें से अधिकांशतः वर्तमान में अनुपलब्ध है। अन्य भारतीय क्षेत्रों में इसकी संभावना है। वैदिक इतिहास लेखन, इतिहास–पुराण परम्परा, चरित परम्परा आदि के रूप में प्राचीन भारत में विशिष्ट ऐतिहासिक परम्पराएँ थी। इन सबमें प्राचीन भारतीयों की इतिहास दृष्टि प्रतिबिंबित होती है।

5.2 उद्देश्य

प्राचीन भारत विश्व की प्राचीन संस्कृतियों के प्रमुख केंद्रों में से एक है। यहाँ पर विविध अनुशासनों का विकास अत्यन्त प्राचीन काल से हुआ है। भारत में भी अपने अतीत के स्मृतियों को सहेजने की विशिष्ट परम्परा रही है। हालांकि प्राचीन भारत में इतिहास की अवधारणा को लेकर आधुनिक इतिहासकारों में अनेक तरह की मान्यताएँ रही है। लेकिन आधुनिक शोधों से स्पष्ट हो चुका है कि प्राचीन भारतीयों ने विशिष्ट शैली में इतिहास लेखन किया। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हम निम्नलिखित तथ्य से अवगत होंगे –

1. प्राचीन भारत में इतिहास की अवधारणा;
2. प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रति विशेषज्ञों की दृष्टि;
3. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख मान्यताएँ;
4. प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमुख समस्याएँ;
5. प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमुख धाराएँ।

5.3 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के आरम्भ की पृष्ठभूमि

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के संबंध में दो प्रकार अवधारणाएँ प्रचलित है। एक वर्ग के विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के प्रति सचेत नहीं थे। दूसरी ओर विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास एवं इतिहास लेखन की स्पष्ट अवधारणा थी। यद्यपि उनमें अपने अतीत को समझने एवं संरक्षित करने की प्रणाली अन्य प्राचीन परम्पराओं से भिन्न थी। इन दोनों समूह के लोगों ने जिन तर्कों के आधार पर अपने विचारों को आगे बढ़ाया है, वे निम्नवत् है –

5.3.1 प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था

जिन लोगों का यह विश्वास है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक चेतना का अभाव था, उनमें लोएस डिकिन्सन का नाम अग्रणी है। उनका मानना था कि ''भारत में मनुष्य प्रकृति के समक्ष स्वयं को तुच्छ और असमर्थ पाता है, परिणामस्वरूप उसमें अपनी नगण्यता और जीवन की व्यर्थता की भावना जन्म लेती है, उसे जीवन की अनुभूति एक भयानक दुःस्वप्न के रूप में होती है और दुःस्वप्न का इतिहास नहीं हो सकता।'' एक अन्य विचारक टीलहार्ड द शार्डिन का मत है कि ''अपनी अतिशय निष्क्रियता एवं निरपेक्षता की भावना के कारण उनमें विश्व–निर्माण की क्षमता का अभाव दिखाई पड़ता है।'' इस संबंध में डॉ0 हीरानन्द शास्त्री का मानना है कि ''वे वर्तमान भौतिक जीवन की अपेक्षा आगामी जीवन में अधिक रूचि रखते थे। उनके लिए दृश्यमान जीवन माया या भ्रमस्वरूप था तथा श्मशान भूमि से परे स्थित जीवन वास्तविक था। चन्द्रकांत गजानन राजे का मानना है कि ''काल–विवेचन इतिहास–रचना का आधार है और भारतीयों ने समय को सदैव गौण स्थान दिया है। अतएव तिथिक्रम के यथार्थ प्रस्तुतीकरण की ओर से वे उदासीन रहे हैं।'' इसी प्रकार के और भी मत अन्यविद्वानों ने भी व्यक्त किए है । लेकिन इतिहासकारों का एक समूह इन मान्यताओं का प्रबल खण्डन करता है। उनके विचार में प्राचीन भारतीयों में इतिहास चेतना की स्पष्ट अवधारणा थी।

5.3.2 प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक चेतना की अवधारणा थी

अधिकांश भारतीयों तथा कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने भी इस मत का खंडन किया है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था। डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय का मानना है कि ''उनका (हीराचन्द शास्त्री का) विचार हास्यापद प्रतीत होता है क्योंकि भारतीयों ने जीवन को कभी भी नगण्य नहीं माना। यदि इतिहास कर्म प्रधान रहा है तो भारतवर्ष सदैव महापुरुषों की कर्मभूमि रहा है।'' गिरिजा शंकर मिश्र ने डिकिन्सन के तर्क को हास्यापद बताया है। उनका मानना है कि ''भारतीयों की तथाकथित ऐतिहासिकता के स्रोत को उनके दार्शनिक सिद्धान्तों में देखने का प्रश्न है, यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि भारतीय विचार में वर्तमान जीवन को कभी भी सर्वथा नगण्य नहीं माना गया है।''

भारतीयों ने अपने आरम्भिक इतिहास में ऐतिहासिक वंशानुक्रम को काफी महत्व देते नजर आते है। प्राचीन

भारत में राष्ट्रीय ऐतिहासिक चेतना का भाव इस क्रम में भी नजर आता है कि पुरू, मालव, यौधेव आदि राज्यों ने सिकन्दर एवं अन्य विदेशी आक्रमणों का प्रबल विरोध किया था। पुराणों एवं चरित काव्यों में ऐतिहासिकता के पर्याप्त तत्व प्राप्त होते हैं। कल्हण अपने राजतरंगिणी में कश्मीर की पूर्ववर्ती ऐतिहासिक लेखन की परम्परा का उल्लेख करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक चेतना की स्पष्ट अवधारणा थी।

5.4 प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक साहित्य व इतिहास चेतना

प्राचीन भारत में इतिहास एवं इतिहास चेतना प्रबल भाव, प्राचीन भारतीय साहित्य से प्राप्त होता है। भारत, चीन तथा निकटपूर्ण की सभ्यताएँ सामान्यतः एक–दूसरे से स्वतंत्र रूप से विकसित हुई है। भारत में सुव्यस्थित सभ्यता का प्राकट्य सिन्धु घाटी में हुआ और इसका प्रसरण सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न कालखण्डों में हुआ। प्राचीन भारत में ज्ञान की जिज्ञासा तथा सहिष्णुता की भावना की प्रवृत्ति व्यापक रूप से विद्यमान थी। प्राचीन भारतीय साहित्य वेद, ब्राह्मण, महाकाव्य, पुराण, चरित ग्रन्थ आदि ऐतिहासिक ज्ञान के विविध पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की विविध धाराएं है उन्हें निम्नवत् समझा जा सकता है –

5.4.1 वैदिक इतिहास लेखन

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा के प्राचीनतम् अवशेष वैदिक साहित्य में पाए जाते हैं। वैदिक संहिताओं में 'इतिहास' और 'पुराण' शब्दों के प्रयोग क्रमशः देवों और वीरों की गाथाओं तथा उत्पत्ति की कथाओं के अर्थों में किये गये हैं। संहिताओं में वंश, गोत्र, प्रवर, गाथा एवं नाराशंसी विशिष्ट ऐतिहासिक चेतना से युक्त शब्द है। 'वंश' का तात्पर्य उन क्रमागत ऋषियों और गुरुओं से था, जिन्होंने क्रमागत रूप में संहिताओं को कंठस्थ कर और उनका गानकर पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ाया।

वंशो के समान ही गोत्र और प्रवर थे, जिनका अर्थ किसी 'ऋषि कुल' अर्थात् वंश के मूल पुरूष अथवा उस कुल विशेष के मूल में रहे पुरूषों की गाथाओं के 'गीत' तथा 'वीरपुरूषों के वीरगीत' के अर्थ में प्रयुक्त विशेष पद है। इन गीतों में देवगीत प्रमुख हैं– विशेषतः इन्द्रदेव से सम्बद्ध गीत। गाथा एवं नाराशंसी से संबंध गायक वर्ग कालान्तर में सूत और मागध नामक पौराणिक गायक एवं प्रशास्तिकारों का पूर्वरूप कहा जा सकता है। संहिताओं में वर्णित दान स्तुतियों में भी कुछ ऐतिहासिक प्रवृत्तियाँ पाई जाती है। इसी क्रम में वेदों एवं ब्राह्मणों के कुछ आख्यान ऐतिहासिक स्मृति के कुछ अंशों के धरोहर है। शुनः शेप आख्यान, देवासुर संग्राम, दाशराज्ञ युद्ध आदि से संबंधित कथाएं वैदिक ऐतिहासिक स्मृति के महत्वपूर्ण अंश है। यद्यपि वैदिक ऐतिहासिक स्मृति का अधिकांश हिस्सा मिथकों के आवरण से आबद्ध है लेकिन उनमें ऐतिहासिक चेतना के तत्व स्पष्ट रूप से चिन्हित किए जा सकते हैं।

5.4.2 इतिहास–पुराण परम्परा

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में पौराणिक परम्परा का महत्वपूर्ण योगदान है। इसमें मनुष्यों के समय से लेकर गुप्त युग तक के इतिहास को मिथकव इतिहास के मिश्रण के साथ प्रस्तुतकिया गया है। पुराणों की संख्या अठारह है और इतने ही उपपुराण है। उपपुराणों का स्वरूप पुराणों जैसा ही है लेकिन इनके विषयवस्तु भिन्न है। पुराण संस्कृत काव्य की एक स्वीकृत विद्या है। पुराणों का जो भाग वंशानुचरित के रूप में जाना जाता है, उसकी सामग्री तो प्राचीन है किन्तु उसकी प्रस्तुतीकरण नवीनता से युक्त है। पुराण साहित्य का संबंध वीरगाथा परंपरा से प्रतीत होता है। सूत एवं मागधों को इनका आदि रचनाकार बताया गया है। वैदिक साहित्य में सूत राजा का निकटवर्ती तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति होता था। कालान्तर में यह सूत एक विशिष्ट जाति में परिवर्तित हो गए। विभिन्न पुराणों में सामग्री कुछ अंशों में समान तथा कुछ अंशों में भिन्नता लिए हुए हैं। प्रत्येक पुराण किसी विशेष देवता या संप्रदाय से संबध माने जाते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से विष्णु पुराण की सामग्री को प्रतिनिधि के तौर पर लिया जा सकता है। इसके वंशानुचरित खंड में इतिहास परंपरा का ऐतिहासिक अधिकेंद्र है। इसमें सभी प्रसिद्ध वंशों तथा राजवंशों की ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के मध्य तक की वंशावलियां दी है। पुराणों में वर्णित वंशावलियों की उत्पत्ति प्रायः मान्य क्षत्रिय वंशो से बताई गई है, किन्तु इनमें से कुछ वंश क्षत्रियेत्तर या शूद्र वंशों से भी सम्बन्धित है, जैसे– नन्द व मौर्य शूद्र माने जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है ऐतिहासिक वंशावलियों को पौराणिक मान्य क्षत्रिय वंशों से जोड़ना हैसियत को विधि सम्मत बनाने का उपकरण थी। महाभारत का युद्ध इतिहास–पुराण परंपरा की युगांतकारी घटना थी जिसमें चन्द्रवंश की सभी शाखाओं ने भाग लिया। कुछ दूसरे वंशों के राजा भी लड़ने आए। यह चंद्रवंश के विनाश का भी सूचक था। पुराण में

महाभारत युद्ध के बाद के वंशों अथवा राजाओं को भविष्यकाल में दिखाया गया है। इस युग के प्रमुख वंशों में नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आंध्र आदि उल्लेखनीय है, जिनकी ऐतिहासिकता अन्य प्रमाणों से सिद्ध है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पुराणों के रचनाकारों में ऐतिहासिक चेतना का स्पष्ट भाव था एवं उन्होंने गुप्त युग तक के अनेक वंशों का इतिहास का कुछ मिथकीय आवरण के साथ प्रस्तुत किया है।

5.4.3 बौद्ध एवं जैन इतिहास लेखन परंपरा

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन परंपरा को समृद्ध करने में जैन एवं बौद्ध संप्रदायों का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दोनों ही संप्रदायों का मुख्य उद्देश्य अपने–अपने धार्मिक समुदाय के इतिहास एवं विचारों का संरक्षण है लेकिन उनमें स्थान–स्थान पर प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित महत्त्वपूर्ण जानकारी संरक्षित हो गई है। बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में त्रिपिटक, दीपवंश, महावंश, मिलिन्दपन्हों, आर्यमंजुश्रीमूलकल्प आदि में प्राचीन भारत के विभिन्न राजवंशों से संबंधित महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ सुरक्षित है। जैन संप्रदाय के अंग, उपांग, नन्दीसूत्र, आवश्यकसूत्र, पउमचरियम्, परिशिष्टपर्वन आदि ग्रन्थों में भी प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण सूत्र संग्रहित है। जैनों ने ब्राह्मण–इतिहास परंपरा की अशुद्धियाँ को दिखाते हुए उनमें ज्ञात घटनाओं तथा चरितों को जैन–रीतियों के रंग में रंगने का प्रयास किया है। नवीं शताब्दी तक के जैन ग्रन्थों में भारत के सामान्य इतिहास जैसे मगध, सातवाहन, शक, गुप्त राजवंश आदि में रुचि दिखाई गई है। बाद के ग्रन्थ मालवा, गुजरात एवं राजस्थान तक के इतिहास में अपने को सीमित रखते है।

5.4.4 चरित इतिहास लेखन

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन एक विशिष्ट परंपरा चरित इतिहास लेखन परंपरा है। ये ग्रंथ पूर्वमध्यकाल मे लिखे गए। इस परंपरा का प्रारम्भिक ग्रंथ बाणभट्ट कृत हर्षचरित को माना जाता है। सातवीं सदी एवं उसके बाद ऐसे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गए, जिन्हें संस्कृत साहित्य के इतिहास में चरित काव्यों की संज्ञाएँ दी गई है। वे दरबार में रहने वाले कृपापात्र, राज्याश्रयी एवं उपकृत कवियों द्वारा समकालीन शासकों के सीमित ऐतिहासिक वृत्तों पर लिखे गए हैं। इन वर्णनों से अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों की जानकारी होती है। हालांकि इन वर्णनों में अलंकारिक वर्णनों एवं अप्रासंगिक तत्वों को भी पर्याप्त स्थान मिला होता है। लेकिन इनमें वर्णित प्रासंगिक घटनाओं एवं तत्वों से उस युग या व्यक्ति के इतिहास निर्माण से सहायता मिलती है। राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के स्रोत के रूप में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इन वर्णनों में कुछ की पुष्टि अभिलेखों एवं विदेशी साक्ष्यों से भी होती है। हर्षचरित के अतिरिक्त अन्य चरित काव्यों में वाक्पति रचित गौड़वहो, पद्मगुप्त परिमल रचित नवसाहसांक चरित, विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित, संध्याकरनंदी कृत रामपालचरित और जयानकभट्ट कृत पृथ्वीराजविजय प्रमुख है।

5.4.5 कल्हण एवं उनकी राजतरंगिणी

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक काव्य परम्परा में कल्हण रचित राजतरंगिणी सबसे विशिष्ट स्थान रखता है। चरित काव्यों में जहाँ केवल एक–एक शासकों के ऐतिहासिक विवरण है, वहीं राजतरंगिणी में आरंभिक समय से बारहवीं सदी तक के कश्मीर के राजाओं के क्रमवार विवरण उपलब्ध है। कल्हणकृत राजतरंगिणी से ज्ञात इतिहास के दो भाग है – एक तो इतिहास का वह परंपरागत भाग है, जो ग्रंथ के प्रथम तीन तरंगों में प्राप्त होता है, जिसें प्राचीन कहा गया है। दूसरा भाग चतुर्थ से आरम्भ होकर आठवें तरंग तक का है, जिसे कश्मीर के 'आधुनिक' रूप में इंगित किया गया है। प्रथम तीन तरंगों में कश्मीर के प्राचीन एवं परंपरागत इतिहास के विवरण है। उनमें प्राचीन परंपराओं, पुराकथाओं और पूर्वतिहास की अनुश्रुतिमूलक कथाओं के संग्रह है। ये कथाएँ जनमानस में रची–बसी थी और कल्हण ने भी उसी रूप में प्रस्तुत कर दिया है। चौथे से आठवें तरंग में कार्कोट, उत्पल, लोहर वंश के इतिहास दिये गये है, जिनकी संरचना में कल्हण ने उन सभी स्रोतों का सहारा लिया है, जो शोध परक इतिहास लेखन हेतु आवश्यक है। कल्हण ने इस ग्रन्थ की रचना 1148 ई. में आरम्भ की तथा लगभग दो वर्षों में इसे पूर्ण किया। कल्हण कश्मीर के प्राचीन इतिहास के स्रोत के रूप में ग्यारह इतिहास ग्रन्थों का उल्लेख करता है। इसमें नीलमत पुराण का विशेष रूप से उल्लेख करता है। अन्य ग्रन्थों में क्षेमेन्द्र की नृपावली तथा हेलाराज की पार्थिवावली को उल्लेखनीय मानता है। राजतरंगिणी में उपलब्ध विवरणों से यह भी प्रतीत होता है कि उन्होंने रामायण, महाभारत, रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों का भी अध्ययन किया था। इसके साथ ही बाणभट्ट के हर्षचरित से भी वे परिचित थे। अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों और पुराणों के अतिरिक्त उन्होंने प्राचीन राजाओं के प्रशस्तिलेख, शिलालेख, सिक्कों आदि का भी प्रयोग अपने लेखन

में किया है। इतिहास के विषय में उसकी मान्यता थी कि इतिहास से अधिकाधिक व्यवहारिक शिक्षा प्राप्त हो सकती है। इतिहास लेखन के दर्शन के संबंध में कल्हण कहता है कि 'मोह तथा विमोह' दोनों का त्याग करते हुए अतीत का वर्णन करने में कवि की वाणी अविचलित रहनी चाहिए। कल्हण के राजरंगिणी के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि युगीन संदर्भो की दृष्टि से कल्हण की इतिहास लेखन शैली में एक नवीन प्रवृत्ति प्राप्त होती है जो अनेक दृष्टियों से इतिहास के आधुनिक मानकों एवं तत्त्वों को अपने में समेटे हुए है। कल्हण के पास समय और कालक्रम का अपना एक स्पष्ट विचार था। वह राजाओं के अच्छे–बुरे, दोनों ही प्रकार के कर्मों को तटस्थता के साथ प्रस्तुत करता था। उसके ग्रन्थ में केवल कुलीन ही नहीं सामान्य जन भी स्थान पाते है। इस प्रकार कल्हण एक उच्च कोटि का इतिहासकार थे।

5.5 प्राचीन भारतीय इतिहास की कुछ मान्यताएँ

भारतीय संस्कृति एक अत्यन्त प्राचीन एवं अनेक प्रकार की विविधता को समेटे हुए है। इस साथ ही प्राचीन भारतीय समाज अनेक प्रकार की मान्यताओं को भी स्वीकार करके संचालित होता रहा है। इन मान्यताओं का भारतीय इतिहास एवं संस्कृति पर गहन प्रभाव पड़ा है। इन मान्यताओं में सें प्रमुख का विवरण निम्नवत है

5.5.1 युगचक्र की अवधारणा

युगचक्र की अवधारणा भारतीय संस्कृति में प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से विद्यमान है। यह धारणा इस मान्यता पर आधारित है कि इतिहास एक निरन्तर चलायमान युगचक्र है। मानव जीवन और उसका सुख–दुःख इसी चक्र द्वारा नियंत्रित होता है। प्रत्येक चक्र चार युग में विभक्त होता है– कृत अथवा सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग। भारतीय मान्यता के अनुसार कृत मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ युग है। यह सुख एवं ऐश्वर्य के सभी साधनों से युक्त है। त्रेता युग में कृत की अपेक्षा मानवीय गुणों तथा सुखमय जीवन के साधनों तथा उपकरणों में अभाव का आभास होने लगता है। द्वापर युग में मानवीय दुःख का प्रारम्भ होता है। इसे संघर्ष का युग की मानते है। समाज की बिगड़ती स्थिति को नियंत्रित करने हेतु सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सामाजिक नियमों का प्रतिपादन किया गया है। युग चक्र का अंतिम भाग कलियुग कहलाता है। इसमें मानवीय जीवन दुःख तथा निराशा की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। समाज में पारस्परिक संघर्ष और स्वार्थ का वातावरण छा जाता है। अतं में मानव जगत का सर्वनाश तथा युगचक्र विनष्ट होकर परमब्रह्म में विलीन हो जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास में यह मान्यता विभिन्न साहित्यिक एवं अभिलेखीय स्रोतों में प्राप्त होती है।

5.5.2 अवतारवाद की अवधारणा

अवतार के रूप में देवताओं को देखने की परम्परा भारतीय संस्कृति के मूल में रहा है। इसकी प्रतिछाया हम इतिहास में महान व्यक्तियों की भूमिका में भी देखते है। प्राचीन भारतीय अभिलेखों एवं साहित्य में अनेक शासकों को मुक्तिदाता अथवा ईश्वरीय अवतार के रूप में चित्रित किया गया है जहाँ वे समाज में अवांछनीय तथा असामाजिक तत्वों का अंत करते हुए दिखाए जाते है। भगवद्गीता, विभिन्न पुराण, दशावतारचरित्र आदि ग्रन्थों में अवतार का विशद चित्रण प्राप्त होता है। अवतार को जननायकों से संबद्ध करके भारतीय इतिहास लेखन में इतिहास प्रक्रिया को विशिष्ट आयाम दिया गया है। हालांकि अवतारी नायक समसामयिक सामाजिक व्यवस्था से स्वतंत्र नहीं होते। यह परम सत्ता काल के द्वारा नियंत्रित होती है। किसी विशेष युग में अवतार का निर्धारण सामाजिक आवश्यकता तथा अनिवार्यता की पूर्ति से होता है।

5.5.3 कर्मवाद की अवधारणा

प्राचीन भारतीय इतिहास में कर्मवाद की अवधारणा भी अनेक स्तरों पर कार्यरत दिखती है। कर्म सिद्धान्त इस मान्यता पर कार्य करता है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसके अनुसार उसे वर्तमान या भविष्य में फल प्राप्त करता है। कर्म फल का सिद्धान्त को कारण–कार्य से भी संबंधित किया जा सकता है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतीयों को कारण–कार्य संबंध का ज्ञान था। कर्म सिद्धान्त को ध्यान में रखकर महर्षियों ने मानव–जीवन को चार आश्रयों में विभाजित किया है – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास। भारत में सामाजिक वर्गीकरण के आधार के रूप में कर्म के अवधारणा की भूमिका स्वीकार की जाती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेक ऐसे उदाहरण है जिनमें कर्मवाद की स्पष्ट घोषणा की गई है। हिन्दू, जैन एवं बौद्ध आगम साहित्य में अनेक स्थलों पर कर्मवाद में विश्वास के उदाहरण प्राप्त होते है।

5.5.4 भारतीय आध्यात्मिकता की व्याख्या

पाश्चात्य विद्वानों एवं इतिहासकारों का एक समूह प्राचीन भारतीय अतीत वर्णन पर यह आरोप रहता है कि भारतीय चिन्तना अध्यात्म पर ही विशेष बल देती है और मोक्ष को परम मूल्य स्वीकार करती है। लौकिक जीवन को वह पर्याप्त महत्त्व नहीं देती है। लेकिन इस प्रकार का आरोप अनुचित तथा भारतीय चिंतन पद्धति का सम्यक् ज्ञान न होने का परिचायक है। वस्तुत भारतीय एक दृष्टि विशेष से संसार को मिथ्या तथा ब्रह्म को परमसत्त्य मानने की बात करते है। भारतीयों ने ऐतिहासिक काल विशेष का महत्त्व हमेशा स्वीकार किया है जिसमें रहते हुए ही एक विशेष प्रकार का आचरण करते हुए मनुष्य को मोक्ष–प्राप्ति की ओर अग्रसर होना है। आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्राप्ति अचानक नहीं हो जाती, मनुष्य अपने व्यक्तित्व का निरन्तर उत्कर्ष करते हुए इसे प्राप्त करता है और इसके लिए काल का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति की अपनी क्षमता पर होता है। अतः जब तक लक्ष्य अप्राप्त है तब तक संसार और इसके सभी कार्यव्यापार में मनुष्य संलग्न रहता है। यद्यपि उससे अपेक्षा की जाती है कि उसके कर्म 'धर्म' अथवा नैतिक नियम के अनुसार किए गए हो। परम सुख तथा शान्ति की दृढ़ इच्छा ने भारतीयों को इहलोक के महत्त्व से विमुख नहीं किया, केवल उन्होंने इहलोक को परम मूल्य नहीं स्वीकार किया है। इसी विश्वास के कारण भारतीय एक गौरवपूर्ण अतीत की रचना कर सके और मानव जीवन से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की।

5.6 प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की समस्याएँ

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन से सबंधित उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में इतिहास को लेकर उनकी स्पष्ट अवधारणा थी। वे इसके महत्त्व से भी भली भाँति परिचित थे। लेकिन इस लेखन की कुछ कमजोरियाँ भी थी। सर्वप्रथम प्राचीन भारत में इतिहास लेखन से संबंधित जो उदाहरण उपलब्ध है उनमें मिथकीय तत्वों एवं अतिरंजिता का प्रभूत सम्मिश्रण है। विषयवस्तु के प्रस्तुतिकरण में राजनीतिक तत्त्व, विशेषकर राजा के जीवन के किसी पक्ष तक ही सीमित होती थी। प्राचीन चक्रवर्ती शासक का पारंपरिक दिग्विजय और स्वयंवर आदि से संबंधित घटनाओं को विशेष महत्व मिला है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में कालक्रम निर्धारण में अस्पष्ट मान्यताओं का प्रभाव ज्यादा है। सम्पूर्ण भारत में विक्रम, शक, गुप्त आदि जैसे संवंतों के प्रचलित रहने के कारण सटीक समय निर्धारण में कठिनाई आती है। कई बार किसी राजा के शासन काल के दौरान या बुद्ध जैसे किसी उपदेशक के जन्म अथवा मृत्यु के बाद की किसी घटना से समय को आकलित करने का प्रयास किया गया है। मापदंड के एक सिरे पर समय की गणना यम, नादिक, विनादिक, मुहुर्त इत्यादि जैसे सूक्ष्म घटकों के रूप से की जाती है तो दूसरी ओर इसकी गणना के लिए कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन युगों को आधार बनाया जाता है। इतिहास के प्रयोजनों से एक आवश्यकता से अधिक छोटा और दूसरा आवश्यकता से अधिक बड़ा है। अलौकिक एवं दैवीय शक्तियों पर विश्वास भी प्राचीन भारतीय इतिहासलेखन की एक बड़ी समस्या है। हालांकि विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास लेखन में भी यह समस्या पाई जाती है। अलौकिक शक्ति और अंधविश्वासों, टोने–टोटकों, अशुभ या अनिष्टकारी संकेतों आदि पर इतिहास लेखकों का उसी प्रकार विश्वास रहा है जैसा विश्वास उन्हें तत्कालीन भारतीय जन जीवन में मिलता है। जो बातें असंभव होती है उन्हें भी दैविय संयोजना में मिश्रित करके प्रस्तुत किया जाता है। प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की एक अन्य बड़ी समस्या, उनकी अधिकांशतः पद्यात्मक या काव्यात्मक रूप में प्रस्तुति है। उल्लेखनीय है कि इतिहास जैसे किसी आख्यानपरक विषय का सही रूप गद्य है न कि पद्य। क्योंकि पद्यात्मक वर्णन में ऐतिहासिक घटना को नाटकीय और काव्यात्मक अलंकारों के रंग में रंग की पर्याप्त संभावनाएं रहती है।

5.7 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत विश्व के प्रमुख सांस्कृतिक केंद्रों में से एक है। इस देश की इतिहास एवं अतीत को लेकर स्पष्ट मान्यता रही है। प्राचीन भारत में इतिहास के विशिष्ट अवयवों को लेकर पृथक संकल्पनाएं रही है। यद्यपि आधुनिक प्रतिमानों की दृष्टि से देखा जाए तो उनमें अनेक कमियाँ दृष्टिगोचर होती है लेकिन वे सब समकालीन समाज में व्याप्त मान्यताएँ थी। अन्य प्राचीन समाजों में भी अर्ध ऐतिहासिक मान्यताओं की उपस्थिति द्रष्टव्य है। कल्हण द्वारा 'राजतरंगिणी जैसे ग्रन्थों का लिखा जाना इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन भारतीय विद्वानों में इतिहास को समझने की पर्याप्त जिज्ञासा एवं परंपरा रही होगी। सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास से संबंधित अद्भुत सामग्री प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध होती है। यह भी प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की एक महत्त्वपूर्ण देन है।

5.8 संदर्भ पुस्तकें

1. इतिहास दर्शन –झारखण्डे चौबे, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013
2. मूल्य मीमांसा – गोविन्द चन्द्र पाण्डे, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1973
3. भारतीय परम्परा के मूलस्वर – गोविन्द चन्द्र पाण्डे, नेशलन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1993
4. इतिहास–मूल्य और अर्थ, अतुल कुमार सिन्हा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0 लि0), द्वितीय संस्करण–2010

5.9 अभ्यास प्रश्न

1. प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव नहीं था, विवेचना कीजिए।
2. प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमुख मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।
3. प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमुख धाराओं का वर्णन कीजिए।
4. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं को प्रकाशित कीजिए।
5. प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमुख समस्याएं की विवेचना कीजिए।

इकाई 6 : इतिहास और कारण

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 कारणता की अवधारणा

6.4 इतिहास में कार्य कारण संबंध

6.5 ऐतिहासिक कारणों का वर्गीकरण

- 6.5.1 प्रारम्भिक कारण
- 6.5.2 मूल कारण
- 6.5.3 गौण कारण
- 6.5.4 आकस्मिक कारण
- 6.5.5 अंतिम तथा तात्कालिक कारण

6.6 कारणता के सिद्धान्त

- 6.6.1 दैवीय सिद्धान्त
- 6.6.2 बुद्धिवादी सिद्धान्त
- 6.6.3 राष्ट्रवादी सिद्धान्त
- 6.6.4 मार्क्सवादी सिद्धान्त

6.7 इतिहास एवं आर्थिक कारण

6.8 कार्यकारण सिद्धान्त के विविध रूप

- 6.8.1 कारण तथा इतिहासकार
- 6.8.2 कारण तथा परिस्थिति
- 6.8.3 इतिहास में संयोग की भूमिका

6.9 सारांश

6.10 संदर्भ पुस्तकें

6.11 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इतिहास में घटित प्रत्येक घटना अनेक कारणों का सम्मिलिति परिणाम होती है। कारणों के ऐतिहासिक घटनाओं के घटने में योगदान को लेकर प्रारम्भ से ही इतिहासकार सतर्क रहे है और इस पर चिंतन करते रहे है लेकिन आधुनिक इतिहासकारों ने अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धति से कारणों के विश्लेषण किया है तथा ऐतिहासिक घटना के घटित होने में कारणों के योगदान एवं सापेक्षित महत्व को निर्धारित करने का प्रयत्न किया है। ऐतिहासिक साहित्य के निर्माण के प्रारम्भिक चरणों में इतिहासकारों ने दैवीय हस्तक्षेपों को घटनाओं के घटित होने का हेतु मानते थे लेकिन कालान्तर में उनका विश्लेषण यथार्थ कारणों पर केंद्रित होने लगा। उल्लेखनीय है कि इतिहास के जनक हेरोडोटस ने अपनी रचना के आरम्भ में अपने उद्देश्यों को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''ग्रीक और बर्बर जातियों के कारनामोंको सुरक्षित रखने के लिए और इन सभी वस्तुओं के अतिरिक्त विशेष तौर से उनके पारस्परिक युद्धों का कारण बताने के

लिए वे अपने ग्रन्थ की रचना कर रहे थे।'' अरस्तु ने भी दार्शनिक तरीके से कारणों को महत्त्व को विश्लेषित किया। फ्रांसीसी क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले महान विद्वान मॉन्टस्क्यू ने कारणता को आधुनिक तरीके से विश्लेषित किया। इतिहास में वैज्ञानिक प्रविधियों को स्थापित करने हेतु कारणों के विश्लेषण एवं क्रमबद्धता पर विशेष बल दिया है।

6.2 उद्देश्य

कारण–कार्य का संबंध इतिहास लेखन में केंद्रीय महत्त्व रखता है। हालांकि यह मानव स्वभाव में मौलिक रूप से संयोजित होता है कि वह घटने वाली घटना का कारण जानना चाहता है। कारण को जानने के बाद वह अपने अनुभवों के आधार पर घटना को समझने का प्रयत्न करता है। इतिहास लेखन में संलग्न व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक सामग्री को कारणों के सही विश्लेषण के क्रम में प्रस्तुत करेगा। इस इकाई में कारणता की अवधारणा, इतिहास में कार्य–कारण संबंध, कारणों के वर्गीकरण एवं उनके सिद्धान्तों पर चर्चा की जाएगी। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित जानकारियों से अवगत होंगे।

1. कारणता की अवधारणा;
2. इतिहास में कार्य–कारण संबंध;
3. ऐतिहासिक कार्यों का वर्गीकरण;
4. कारणता संबंधी प्रमुख सिद्धान्त;
5. कारणता के संबंध में प्रमुख इतिहासकारों के मत।

6.3 कारणता की अवधारणा

'कारण' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Cause' (कौजा) शब्द से हुई है। अंग्रेजी भाषा में इसे Cause (कॉज) कहा गया है। इसका तात्पर्य वजह, कारण, प्रयोजन, उद्देश्य आदि से लिया जाता है। जब कोई प्रक्रिया, प्रावस्था अथवा तत्व किसी दूसरी प्रक्रिया अथवा तत्व (घटना) को उत्पन्न करती है तो इसे कारणता कहते है। जो प्रावस्था अथवा घटना उत्पन्न होती है, उसे 'प्रभाव' कहते हैं। कारणता को कार्य कारण भी कहते हैं। कार्य–कारण संबंध कुछ इस प्रकार से नियोजित होते है कि कारण के होने से कार्य होता है, कारण के न होने पर कार्य नहीं होता है। प्रकृति में प्रायः कार्य–कारण स्पष्ट नहीं रहता। एक कार्य के अनेक कारण दिखाई देते हैं। विशिष्ट दिशा में कार्यरत विद्वानों को अनेक दिखने वाले कारणों में अपने प्रसंगानुकूल कारण का अन्वेषण करना होता है। प्राचीन काल से ही विचारकों का मानना है कि प्रकृति में बिना कारण कुछ भी नहीं है न हो सकता है। अतः कारणता के नियम के अनुसार जो भी है, उसका कोई कारण है। ऐतिहासिक रूप से कारणता का अध्ययन करने वाले अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिकों एवं मतों का विवरण प्राप्त होता है। भारत परम्परा में कारणता को दार्शनिक आधार प्रधान करने में सांख्य दर्शन एवं बौद्ध दर्शन को केंद्रीय स्थान प्राप्त है। पाश्चात्य परम्परा में दार्शनिक एवं वैज्ञानिक स्तर पर पार्मेनाइडीज, हेराक्लिटस, अरस्तु आदि विद्वानों ने विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अरस्तु के अनुसार चार प्रकार के कारणों, उपादान कारण, स्वरूप कारण, निमित्त कारण एवं लक्ष्य कारण के आधार पर प्राकृतिक एवं मानवीय घटनाओं की व्याख्या की जा सकती है। उपादान कारण भौतिक जगत के निर्माण तत्वों को बताता है। स्वरूप कारण वस्तु या घटना के स्वरूप का विश्लेषण करता है। निमित्त कारण घटना के पीछे के तत्वों एवं शक्तियों का विश्लेषण करता है तथा लक्ष्य कारण उस वस्तु या घटना के उद्देश्यों पर प्रकाश डालता है। आगे चलकर अनेक दार्शनिकों, विद्वानों एवं इतिहाकारों ने कारण तत्व के विविध अंगों का विश्लेषण प्रस्तुत किया। यद्यपि इन विश्लेषणों में पर्याप्त विभेद एवं विविधता है लेकिन इन सभी विश्लेषणों के केंद्र एक मत स्पष्ट है कि प्रत्येक घटना के कुछ मूलभूत कारण होते हैं तथा घटना की स्पष्ट समझ के लिए उन कारणों को ज्ञान होना अति आवश्यक हैं।

6.4 इतिहास में कार्य कारण संबंध

ऐतिहासिक विश्लेषण में कार्य–कारण संबंध का केंद्रिय स्थान है। कारण के जानकारी के अभाव में किसी घटना का विश्लेषण एवं महत्त्व दोनों का ही विश्लेषण अत्यन्त सतही होता है। विभिन्न विद्वानों ने कारणों के महत्त्व को लेकर अपने विचार रखे हैं जो इसके विविध पक्षों को उद्घाटित करते है। वस्तुतः प्रत्येक ऐतिहासिक घटना के

अनेक कारण होते हैं और इतिहासकार अपनी जानकारी एवं ऐतिहासिक समझसे उन कारणों को क्रमबद्धता प्रदान करता है। कारणों का चयन एवं उनकी सापेक्षिक क्रमबद्धता ऐतिहासिक विश्लेषण को प्रासंगिक बनाती है। इतिहासकार मैंडलवाम के अनुसार, '' सार्वभौम नियम के अनुसार प्रत्येक घटना के कुछ कारण अवश्य होते हैं जो विशिष्ट परिस्थितियों के देन होते हैं। इतिहासकार इन विशिष्ट परिस्थितियों की पहचान एवं उनका विश्लेषण करता है।'' ऐडवर्ड मेयर का मानना है कि ''इतिहासकार को अपने लेखन में सावधानीपूर्वक घटनाओं को प्रभावित करने वाले कारणों की व्याख्या करनी चाहिए। व्याख्या को उद्देश्यपरक एवं मूल्यपरक भी होना भी आवश्यक है।'' वाल्टेयर ने लिखा है कि ''अगर तुम्हारे पास कहने के लिए इसके अलावा कुछ नहीं है कि आक्सस और जाक्सार्टिस के तटों पर एक बर्बर शासक को मारकर दूसरे ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया, तो उससे हमें कोई लाभ नहीं है।'' प्रसिद्ध दार्शनिक मॉन्टेस्क्यू ने कहा था, ''प्रत्येक राजवंश के उत्थान, राजत्वकाल एवं पतन के पीछे कुछ नैतिक या भौतिक अर्थात् सामान्य कारण होते हैं एवं जो कुछ भी घटित होता है इन्हीं कारणों के तहत होता है।'' वस्तुतः कोई भी घटना अनेक कारणों से घटित होती है। कुछ कारण मौलिक होते है जिसमें उस घटना के बीज या जड़े स्थित होती है। घटना घटित होने के एकदम पूर्व के कारण तात्कालिक कारण कहलाता है। ई.एच.कार ने कारणों एवं तत्संबंधी परिणाम के पारस्परिक संबंधों के क्रम से संयोजित करने को ही इतिहास बताया है। बीसवीं सदी के इतिहासकारें का एक बड़ा वर्ग यह मानता हैं कि किसी घटना के कारणों में क्रमबद्धता पाई जाती है। इसलिए इतिहासकार को चाहिए कि वह किसी घटना के उत्तरदायी सभी कारणों को यथासंभव खोजने का प्रयत्न करें एवं तत्पश्चात् उन्हें क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत करे।

6.5 ऐतिहासिक कारणों का वर्गीकरण

एक ऐतिहासिक घटना के अनेक कारणों़ हो सकते हैं और सभी कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से घटना के लिए उत्तरदायी होते हैं। कौन–सा कारण किस हद तक उस घटना के घटने के लिए जिम्मेदार होता है। इसका निर्णय इतिहासकार अपने विवेकशीलता से करता है। किसी घटना के पीछे कुछ मूल या प्रमुख कारण होते है तथा कुछ गौण कारण होते है। इतिहासकार अपने विवेक एवं अनुभव के आधार पर गौण कारणों के संदर्भ में मूल कारण के व्यापक प्रभाव की व्याख्या करता है। पी0 गार्डिनर के अनुसार ''इतिहासकार किसी घटना की व्याख्या में गौण कारण, मूलकारण, सहायक कारण, आकस्मिक कारण तथा अंतिम कारण को क्रमबद्धता में संयोजित करता है। ऐतिहासिक घटनाक्रम के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता ह

6.5.1 प्रारम्भिक कारण

किसी भी ऐतिहासिक घटना के पीछे उत्तरदायी कारणों के विश्लेषण में इतिहासकार उनकी कालक्रमता का भी ध्यान रखता है। कालक्रम निर्धारण करने के क्रम में कथित घटना के घटने के सबसे प्रथम कारण को ही प्रारम्भिक कारण होता है। प्रारम्भिक कारण में ही घटना का बीजारोपण हो जाता है। प्रथम विश्व युद्ध का प्रारम्भिक कारण कई विद्वान 1817 ई. की फ्रैंकफर्ट संधि को मानते हैं, क्योंकि फ्रैंकफर्ट संधि की कठोर शर्तों में प्रथम विश्वयुद्ध के बीच मौजूद थे।

6.5.2 मूल कारण

इतिहास में किसी घटना का मूल कारण वह होता है, जिसके कारण घटना घटित हुई होती है। प्रायः मूल कारण को केंद्र में रखकर घटना के अन्य कारणों का अन्वेषण किया जाता है। मौर्य साम्राज्य के पतन में कमजोर उत्तराधिकारियों की भूमिका को मूल कारण माना गया है। इनके अलावा अत्यधिक विस्तृत साम्राज्य, सेना का शिथिल होना, आर्थिक स्थिति पर दबाव, अशोक की भूमिका, विदेशी आक्रमण, आदि अन्य कारण गौण कारण थे।

6.5.3 गौण कारण

किसी भी घटना के घटित होने के पीछे जितने भी कारण उत्तरदायी होते हैं, उनमें कुछ सामान्य कारण होते हैं। इन सामान्य कारणों को गौण कारण माना जाता है, क्योंकि ये कारण घटना के लिए मूलतः जिम्मेदार न होकर घटना में सहयोगी मात्र होते हैं।

6.5.4 आकस्मिक कारण

कोई ऐतिहासिक घटना जब घटित होती है, तो उस घटना में कभी–कभी आकस्मिक कारण भी संलग्न हो

जाते है और उस घटना को नाटकीय या महत्त्वपूर्ण तरीके से परिवर्तित कर देते हैं। जैसे 1556 ई0 में पानीपत के द्वितीय युद्ध में अनेक युद्धों के विजेता हेमू की पराजय में आकस्मिक रूप से उसके घायल की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। क्योंकि सैन्य शक्ति की दृष्टि से वह अकबर से कमजोर नहीं था लेकिन उसके आकस्मिक रूप से घायल होने ने उसक पराजय को सुनिश्चित कर दिया।

6.5.5 अंतिम तथा तात्कालिक कारण

अंतिम व तात्कालिक कारण वे होते हैं जिनके होने से घटना घटित हो जाती है। प्रथम विश्व युद्ध के परिप्रेक्ष्य में अस्ट्रिया के राजकुमार फ्रांसिस फर्डीनेण्ड की हत्या ने युद्ध के तात्कालिक कारण की भूमिका निभाई। द्वितीय विश्वयुद्ध के संदर्भ में 1939 ई0 में हिटलर के पोलैण्ड पर आक्रमण युद्ध का तात्कालिक एवं अंतिम कारण सिद्ध हुआ।

6.6 कारणता के सिद्धान्त

कार्य–कारण के अनेक सिद्धान्त इतिहासकारों द्वारा प्रस्तावित किया गया है जो इसके विविध पक्षों को उद्घाटित करता है। इसमें से प्रमुख निम्नवत है–

6.6.1 दैवीय सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के समर्थकों का मानना है कि इतिहास में भाग्य की भूमिका केंद्रिय होती है। प्राचीन सभ्यताएँ जैसे मिश्री, भारतीय, ग्रीक, बेबीलोनियन आदि में इस सिद्धान्त की स्वीकृत को देखा जा सकता है। धार्मिक जगत में इस सिद्धान्त को विशेष रूप से मान्यता प्राप्त है। प्रायः सभी धर्मों के मानने वालों का विश्वास है कि सभी राजा, नायक, पादरी और समाज के बुद्धिवादियों का ऐतिहासिक घटनाक्रमों में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। लेकिन यह सब ईश्वर की इच्छा से घटित होता है। इस प्रकार प्रत्येक मानवीय कार्य में ईश्वर का हस्तक्षेप होता है। प्रारम्भिक समय में बहुत से इतिहासकार और विद्वान इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेते थे क्योंकि पुरोहित वर्ग का समाज में प्रभावशाली स्थान था। किन्तु आधुनिक युग में जब अनुभव आधारित ज्ञान परम्पराओं को प्रधानता मिलने लगी तब यह सिद्धान्त हाशिए पर चला गया। वर्तमान समय में यह विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है और उसके घटित होने में व्यक्ति की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती हैं।

6.6.2 बुद्धिवादी सिद्धान्त

दैवीय सिद्धान्त को कमजोर करने में इस सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 17वीं–18वीं शताब्दी ई0 में दैवीय प्रेरणा को अस्वीकार करके मानवीय अनुभवों पर आधारित ज्ञान प्रणाली पर जोर दिया गया तथा इसमें मानवीय बुद्धि को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया। मानव विकास के साथ बुद्धि का विकास होता गया और प्रत्येक मानवीय कार्य के कारणों की खोज प्रारम्भ हुई। अनेक नवीन विषयों में इस प्रणाली को अपनाया गया तथा ज्ञान के नए क्षेत्रों का विकास हुआ। इतिहास के क्षेत्र के अनेक विशेषज्ञों का मानना है कि आज के बौद्धिक विकास के युग में कार्य–कारण होने के पीछे बुद्धि अथवा ज्ञान ही प्रभावी तत्व है।

6.6.3 राष्ट्रवादी सिद्धान्त

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ऐतिहासिक निर्णयों में राष्ट्रवाद की भूमिका केन्द्रीय हो गई। इस भावना के कारण अनेक नये राष्ट्रों का निर्माण अथवा दूसरे राष्ट्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया गया। वस्तुतः अतीत काल में भी राष्ट्रों के मध्य राष्ट्रवाद की भावना विद्यमान थी जो निरन्तर अपनी सीमाओं के विस्तार हेतु प्रेरित करती थी। इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय चरित्र एवं संस्थाओं ने भी ऐतिहासिक घटनाओं के घटित होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वस्तुतः ऐतिहासिक रूप से स्थापित सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं के द्वारा ही राष्ट्रीय चरित्र का उत्थान एवं विनाश हुआ है। इस सिद्धान्त के प्रबल समर्थकों में हर्डर का नाम उल्लेखनीय है।

6.6.4 मार्क्सवादी सिद्धान्त

मार्क्स ने इतिहास में घटनाक्रमों के घटने के विशिष्ट कारकों का उल्लेख किया है। इसमें विशेष रूप से आर्थिक कारकों के विश्लेषण पर बल दिया गया है। ऐतिहासिक विकास के विविध चरणों में आर्थिक कारक समाज के सांस्कृतिक–राजनीतिक मूल्यों को निर्मित करते हैं। कार्ल मार्क्स की अवधारणा रही है कि ऐतिहासिक विकास के विविध चरणों में समाज में दो वर्गों, शोसक एवं शोषित में अन्तर्क्रिया चलती रहती है। इसमें शोषक वर्ग शोषित वर्ग

का शोषण करता है। इस शोषण की प्रक्रिया का मूल आधार आर्थिक तत्वों में निहित होता है।

6.7 इतिहास एवं आर्थिक कारण

मानव जीवन में अर्थ का केंद्रीय स्थान होता है। उसका सम्पूर्ण जीवन अर्थ एवं उससे संबंधित साधनों के इर्द–गिर्द घूमता है। इसी प्रकार समाज के विकास एवं संचालन में आर्थिक प्रक्रियाओं एवं कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लेकिन इतिहास लेखन में आर्थिक तत्त्वों को प्रधानता आधुनिक युग में प्राप्त हुई। प्राचीन एवं मध्यकालीन समाजों में इतिहास मूल रूप से राजनैतिक एवं प्रशासनिक क्रियाकलापों तक केंद्रित रहा। इसके अन्तर्गत राज्यों का उत्थान व पतन, राजाओं के महत्त्वपूर्ण युद्ध व कार्य, प्रशासनिक कार्य पद्धति, सांस्कृतिक कार्य आदि पर ज्यादा बल दिया गया। परन्तु 19वीं शताब्दी के मध्यतक आते–आते राजनैतिक–प्रशासनिक केंद्रित इतिहास लेखन की जगह सामाजिक–आर्थिक इतिहास–लेखन पर बल दिया जाने लगा। वैज्ञानिक खोजों व आधुनिक तकनीक ने उत्पादन प्रणाली को सरल बनाया, परिणामस्वरूप समाज में आर्थिक प्रगति हुई तथा पूँजी में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्रांति ने उद्योगपति और मजदूर, दो नये वर्गों का जन्म दिया। परवर्ती समय में बाजारीकरण ने मध्य वर्ग का भी विस्तार किया। इन सबने मनुष्य के जीवन तथा समाज के अन्य अवयवों के साथ उसके संबंध को नए तरीके से परिभाषित किया। 19वीं एवं 20वीं शताब्दी में यूरोप व सम्पूर्ण विश्व में समाजवादी रूझानों वाले विद्वानों एवं इतिहासकारों ने समाज के सामाजिक–आर्थिक पहलुओं का अध्ययन कर एक समतामूलक समाज की अवधारणा व उसके स्थापना पर बल दिया। इस दिशा में कार्ल मार्क्स का योगदान सबसे महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने उत्पादन एवं वितरण प्रणाली तथा उन पर आधारित सामाजिक संबंधों के वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा दिया। मार्क्स के प्रयासों का अत्यन्त सकारात्मक परिणाम हुआ। अब समाज विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वान पूँजी, श्रम, बाजार, लाभ, विनिमय, वितरण जैसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक अवधारणाओं पर नए तरीके से विचार करने लगे। इन प्रयासों से आर्थिक इतिहास लेखन का एक स्वतंत्र विधा का स्वरूप मिलने लगा। प्रत्येक देश में आर्थिक इतिहास लेखन को स्वतंत्र रूप से किया जाने लगा। सर विलियम ऐश्ले ने लिखा कि ''आर्थिक इतिहास का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपनी आजीविका के साधनों से अधिकतम संतोष प्राप्त करने के लिए वातावरण के परिवेश में किस प्रकार आर्थिक क्रियाओं को करता है। इस दिशा में प्रारम्भ से ही उसका कार्य एकाकी नहीं रहा है, बल्कि उसके कार्यों का स्वरूप सामूहिक रहा है।'' कार्ल मार्क्स ऐतिहासिक विकास में आर्थिक कारकों का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते है। कार्ल मार्क्स के अनुसार अठारहवीं सदी में बौद्धिक विचारों के विकास से ईसाई धर्म अपनी रक्षा करने में विफल रहा। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में आर्थिक कारणों का विशेष योगदान रहा।

इतिहास में बौद्धिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक एवं सामाजिक क्रांतियों का नेतृत्व आर्थिक कारणों ने किया है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति, फ्रांस की राज्य क्रांति तथा रूस की क्रांति की पृष्ठभूमि में आर्थिक कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। साम्राज्यों के पतन में भी आर्थिक कारक महत्त्वपूर्ण होते है। मौर्य साम्राज्य एवं गुप्त साम्राज्य के पतन में भी आर्थिक कारकों की प्रभावी भूमिका थी। उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी में फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के बिगड़ते संबंध का मूल कारण आर्थिक प्रतिस्पर्धा तथा प्रतिद्वंद्विता थी। इसी प्रकार प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध में भी आर्थिक कारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस प्रकार विश्व की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं में आर्थिक कारण निर्णायक रहे हैं। अतः मार्क्स का यह कथन सत्य के अत्यन्त निकट है कि ऐतिहासिक घटनाओं का नेतृत्व आर्थिक कारण करते हैं।

6.8 कार्यकारण सिद्धान्त के विविध रूप

इतिहास लेखन में कारण और कार्य की अंतःक्रिया और उसका प्रतिफलन अनेक कारकों पर निर्भर करता है। ये कारक निकट और सुदूर ऐतिहासिक पर्यावरण के अंग होते है। इसमें से कुछ तो संभावित होते है और कुछ अप्रत्याशित होते है। इतिहासकार की भूमिका भी कारणता की व्याख्या के केंद्र में रहता है। भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण का अवबोध सर्वाधिक महत्व रखता है। तभी जाकर इतिहासकार ऐतिहासिक घटनाक्रम का सही अन्वेषण करने में सक्षम होता है।

6.8.1 कारण तथा इतिहासकार

कारण का सही ढंग से अन्वेषण वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन का प्रमुख आधार है। इसमें इतिहासकार की योग्यता की केंद्रीय भूमिका होती है। इतिहासकार तथा कारण का उतना ही घनिष्ठ संबंध है जितना इतिहासकार तथा तथ्य का। जिस प्रकार तथ्य के बिना इतिहासकार व्यर्थ है उसी प्रकार इतिहासकार के बिना तथ्य मृत एवं निर्जीव होता है।

उसी प्रकार कारण तथा इतिहासकार का संबंध होता है। इतिहास के निर्माण का आधार इतिहासकार द्वारा तथ्यों की क्रमबद्धता है। इतिहासकार द्वारा स्वीकृत सामान्य तथ्य भी ऐतिहासिक हो जाता है। कारणों के विश्लेषण के प्रति इतिहासकार का सचेत दृष्टिकोण इतिहास निर्माण को वैज्ञानिक बनाता है। टेलकोट पार्सन के अनुसार इतिहास एक चयन प्रक्रिया है। इतिहासकार यथार्थ कारणों को बोधगम्य तथा अनुभवगम्य बनाता है। जिस प्रकार इतिहासकार तथ्यों के महासमुद्र से आवश्यक तथ्यों का चयन करता है, उसी प्रकार कारण और कार्य के कतिपय श्रृंखलाओं से केवल उन्हीं कारणों का चयन करता है जिनका ऐतिहासिक महत्त्व होता है। ऐतिहासिक घटनाक्रम की व्याख्या में प्रभाव या परिणाम की अपेक्षा कारण को अधिक महत्त्व देना चाहिए। डेवी ने लिखा भी है कि प्रभाव की अपेक्षा कारण का स्थान सर्वश्रेष्ठ होता है।

6.8.2 कारण तथा परिस्थिति

कार्य–कारण संबंध का तात्पर्य घटनाओं का संबंध सुनिश्चित करना होता है। घटना उसे कहते है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन होते हैं। कोई भी घटना अनेक कारणों का सामूहिक परिणाम होती है। किसी घटना के निर्णायक कारण का ज्ञान तभी संभव है जब तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में उसके प्रभाव को खोजा जाय। प्रथम विश्वयुद्ध का कारण केवल राजकुमार फर्डिनैंड की सेराजीवों में हत्या ही नहीं थी, बल्कि तत्कालीक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी थी। मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों को हम तब तक नहीं समझ सकेंगे जब तक की द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में पश्चिमोत्तर भारत की स्थिति, विशाल साम्राज्य के स्थायित्व के लिए संगठित केंद्रीय प्रशासनिक तंत्र, तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियाँ आदि का स्पष्ट ज्ञान नहीं होगा। कॉलिंगवुड का मानना है कि कारणों की क्रमबद्धता में इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य है कि वह कारण तथा परिस्थिति में अन्तर को स्पष्ट करे। परिस्थितियों के संदर्भ में ही कारण के निर्णायक प्रभाव का अध्ययन संभव है। जर्मन तानाशाही के विकास में जर्मन राष्ट्र का सैन्यवाद में विश्वास, अपने संस्कृति एवं प्रजाति को उच्च मानने का अहंकार एवं प्रशा के इतिहास की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस तानाशाही को प्रबल बनाने में फ्रांस की प्रतिशोधात्मक नीति तथा ग्रेट ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीति ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। ओकशाट ने भी माना है कि परिस्थितियों की व्याख्या में ही कारण का स्पष्ट प्रभाव अन्वेषित किया जा सकता है।

6.8.3 इतिहास में संयोग की भूमिका

इतिहास में संयोग की भूमिका को लेकर इतिहासकारों में पर्याप्त विमर्श चला है। एक स्थान पर ई. एच. कार ने लिखा है कि ''इतिहास कम अथवा अधिक संयोगों का एक अध्याय है।'' घटनाओं का ऐसा क्रम जिसका निर्णय संयोग करते है, उनका कारण अत्यन्त सामान्य होता है। इतिहास प्रसिद्ध एक्टियम के युद्ध का परिणाम पर्याप्त कारणों का परिणाम नहीं, बल्कि क्लियोपेट्रा के प्रति एंटोनी का आकर्षण था। 1527 ई0 में खानवा के निर्णायक युद्ध में बाबर द्वारा राणा संग्राम सिंह की पराजय का मुख्य कारण मात्र संयोग था। युद्ध की प्रारम्भिक अवस्था में तीर से घायल होने के पश्चात् उसे युद्ध छोड़ना पड़ा। 1545 ई. में कालिंजर के घेरे के समय हथगोले के विस्फोट से शेरशाह की मृत्यु ने भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय का असमय अंत कर दिया। 1556 ई0 में पानीपत के द्वितीय युद्ध में बाइस युद्धों के विजेता हेमू की पराजय का कारण संयोगवश उसका घायल होना था। सैनिक शक्ति की दृष्टि से उसकी विजय निश्चित थी, परन्तु आकस्मिक घटना ने विजय को पराजय में परिणत कर दिया। इस प्रकार संयोग के परिणमस्वरूप आकस्मिक घटनाओं ने इतिहास की गति को ही बदल दिया।

इतिहास में संयोग की भूमिका के बावजूद इसको ऐतिहासिक घटनाक्रम का प्रभावी कारण नहीं माना जाता है। क्योंकि यदि इनको निर्णायक कारण मान लिया जाय तो मानवीय कर्मों, बुद्धिवाद एवं तर्कशीलता, वैज्ञानिक विकास आदि अर्थहीन हो जाएंगे। गार्डिनर ने कहा है कि इतिहासकार को कारणों की क्रमबद्धता में नियमविहिन तत्त्वों के प्रभाव को स्वीकार नहीं करना चाहिए। ई0 एच0 कार के अनुसार ''इतिहास में संयोग के महत्त्व को मान्यता देने का तात्पर्य इतिहासकार के मस्तिष्क का दिवालियापन है। जो इतिहासकार इतिहास को दुर्घटनाओं का एक अध्याय कहता है, वह या तो आलसी है या अपने को अक्षम स्वीकार कर लेता है।'' इतिहास में दुर्घटना या संयोग की समस्या का समाधान कारणों की गवेषणा में होना चाहिए।

6.9 सारांश

इस प्रकार कारणों के अध्ययनों में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के महत्त्वपूर्ण सूत्र छिपे होते हैं। इतिहास घटनाओं

के कारणों के चुनाव की वह प्रक्रिया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं। इतिहासकार कारण और कार्य की कतिपय श्रृंखलाओं में से केवल उन्हें चुनता है जिनका ऐतिहासिक महत्त्व होता है। और उनके ऐतिहासिक महत्व निर्धारित करने का मापदंड होती है, उन कारणों और तथ्यों को अपनी ऐतिहासिक व्याख्या और तर्क पद्धति में समाहित करने और सही ढंग से उपयोग करने की उनकी क्षमता। उसे कारण और कार्य की अन्य श्रृंखलाओं की उपेक्षा करनी पड़ती है। इसका कारण यह होता है कि वे कार्य–कारण श्रृंखला ऐतिहासिक दृष्टि से संदर्भहीन होती है। इतिहासकार के पास उनका कोई उपयोग नहीं होता क्योंकि उसकी कोई तार्किक व्याख्या संभव नहीं होती तथा अतीत और वर्तमान के लिए उनका कोई अर्थ नहीं होता। इस प्रकार प्रासंगिक कारणों के आधार पर घटनाओं की व्याख्या तार्किक इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

6.10 संदर्भ पुस्तकें

- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)
- बी.शेक अली – हिस्ट्री : इट्स थ्योरी एण्ड मेथड, मैकमिलन इण्डिया लि., नई दिल्ली, 2001

6.11 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहास में कारणता की अवधारणा पर प्रकाश डालिए।
2. इतिहास में कारणों के वर्गीकरण का विश्लेषण कीजिए।
3. ऐतिहासिक कारणता के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
4. इतिहास में आर्थिक कारणों की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
5. ऐतिहासिक कारणों के तार्किक व्याख्या के विभिन्न पक्षों पर चर्चा कीजिए

इकाई 7 : इतिहास की संरचना एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 इतिहास की संरचना एवं इसका विकास

7.4 इतिहास का स्वरूप

7.5 इतिहास तथा इसके सहायक शास्त्र

- 7.5.1 इतिहास एवं पुरातत्व शास्त्र
- 7.5.2 इतिहास एवं पुरालेख शास्त्र
- 7.5.3 इतिहास एवं मुद्राशास्त्र
- 7.5.4 इतिहास और प्रतिमाशास्त्र

7.6 इतिहास और समाज विज्ञान

- 7.6.1 इतिहास और राजनीति विज्ञान
- 7.6.2 इतिहास और अर्थशास्त्र
- 7.6.3 इतिहास और समाजशास्त्र
- 7.6.4 इतिहास और मनोविज्ञान
- 7.6.5 इतिहास और भूगोल
- 7.6.6 इतिहास और मानव विज्ञान

7.7 सारांश

7.8 संदर्भ पुस्तकें

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

विभिन्न इतिहासकारों ने इतिहास में अनेक विषयों का समावेश माना है। इस विषय का प्रकृति का निर्माण एक दीर्घ ऐतिहासिक परम्परा का परिणाम है। प्रारम्भ में इसकी संरचना साहित्य के काफी निकट थी लेकिन वर्तमान में इसकी संरचना में विज्ञान और कला दोनों के ही तत्व का होना स्वीकार किया जाता है। जे0बी0 ब्यूरी का मानना था कि ''इतिहास राजनीति, धर्म, कला, शासन, विधि, परम्पराओं का अध्ययन है जिसमें व्यक्ति और समाज की बौद्धिक, मौलिक व भावनात्मक क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।'' इतिहास को अनेक अन्य अनुशासनों का सहयोग भी लेना पड़ता है ताकि अतीत का सर्वांगीण चित्र उपस्थित कर सके। पुरातात्विक एवं समाज विज्ञान के अध्ययन प्रविधियों ने इतिहास के अध्ययन को ठोस आधारभूमि प्रदान की है जिसके आधार पर एक यथार्थ ऐतिहासिक भवन का निर्माण संभव हो पा रहा है। इस प्रकार इतिहास अनेक आधुनिक विषयों के सहयोग से विज्ञान के समकक्ष एक नवीन विषय के कलवेर से युक्त विषय के रूप में स्थापित हो रहा है।

7.2 उद्देश्य

इतिहास की संरचना परिवर्तनशील रही है तथा समय के प्रवाह में अनेक विषयों के सहयोग से इतिहास का स्वरूप परिवर्तित होता रहा है। इतिहास को वस्तुनिष्ठ समाज विज्ञान के रूप में स्थापित करना आधुनिक इतिहासकारों

का प्रमुख उद्देश्य रहा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित तथ्य से अवगत होंगे –

1. इतिहास की संरचना का प्रारम्भिक स्वरूप
2. इतिहास की संरचना का आधुनिक स्वरूप
3. इतिहास पर अन्य विषयों का प्रभाव
4. इतिहास के प्रमुख सहायक विषय

7.3 इतिहास की संरचना एवं इसका विकास

अतीत एवं वर्तमान के मध्य सातत्य बनाये रखने के लिए इतिहास की जानकारी आवश्यक है। इसकी सहायता से मानव समाज के विविध पक्षों जैसे– समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, विज्ञान आदि का ज्ञान होता है। इतिहास की संरचना इसके विकास के एक लंबे कालखण्ड में निरन्तर परिवर्तित होती रही है। एक सुसंगठित विषय के रूप में इतिहास का विकास यूनानी–रोमन इतिहासकारों की प्रतिभा का परिणाम है। हालांकि अन्य प्राचीन संस्कृतियों जैसे– भारत, चीन, इंग्लैण्ड आदि में अतीत के समझने की विशिष्ट परम्पराएँ रही है। यूनानी–रोमन इतिहास लेखन के उपलब्ध ग्रन्थों में इतिहास का विकास साहित्य के अत्यन्त निकट प्रतीत होता है। इसके बावजूद उन ग्रन्थों में इतिवृत्तता, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विवरणएंव आर्थिक जीवन के तत्वको पर्याप्त जगह मिली है और यह सब एक सुनिश्चित काल एवं स्थान के परिप्रेक्ष्य में प्राप्त होता है। इस युग के अनेक इतिहासकारों जैसे– हेरोडोटस, थ्यूसिडाइडिस, पोलिबियस, लिवी आदि ने कारणता के सिद्धान्त का भी ख्याल अपनी रचनाओं में रखा है।

यूरोप तथा संसार के अन्य हिस्सों में मध्ययुग में धर्म का काफी प्रभाव इतिहास लेखन में देखा जा सकता है। मध्ययुगीन परम्परा में इतिहास को मुख्यतः धार्मिक विषयों में परिभाषित करने वाला माना गया था और उसे क्रमशः ईश्वरीय प्राप्ति के साधन के रूप में भी स्वीकार किया गया था। हालांकि मध्ययुग में इब्न खालदून जैसे इतिहासकार भी हुए जिन्होंने सभ्यता के विकास के सार्वभौमिक नियमों की तलाश का प्रयत्न किया। मनुष्य इब्न खालदून के विश्व का केंद्र था। मनुष्य के जीवन में समाज की उपयोगिता तथा मानवीय विकास के विविध कारकों का उल्लेख इब्न खालदून के विचारों के मुख्य बिन्दु है। पुनर्जागरण के बाद इतिहास की संरचना में बदलाव आना आरम्भ हुआ। लोगों की अतीत के प्रति जागरूकता बढ़ी तथा नवीन साधनों विशेषकर पुरातत्व में लोगों की रूचि बढ़ने लगी। ऐतिहासिक समालोचना का आगमन हुआ। इतिहास लेखन में मानवतावादी विचारों का प्रयोग किया जाने लगा। अतीत का भी मानववादी विचारों के जरिए अन्वेषण किया गया।

अट्ठारहवीं सदी में ज्ञानोदय के प्रभाव से इतिहास की संरचना पुनः प्रभावित हुई। यूरोप में धर्म के प्रति जबरदस्त प्रतिक्रिया देखी गई। वाल्टेयर अपने को ईसाईयत एवं अंधविश्वासों के विरूद्ध लड़ाई में नेता मानता था। विज्ञान की उन्नति से प्रभावित होकर, ज्ञानोदय काल के इतिहासकारों ने मानव समाज के विकास हेतु सर्वसाधारण के पक्ष में नियमों को बनाने की पहल की। इन लोगों ने समाज में सार्वजनिक कानूनों की पहल की। उन्नीसवीं सदी के मध्य से इतिहास का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने पर जोर दिया जाने लगा। नीबुर और रांके ने वस्तुनिष्ठ इतिहास के अध्ययन को बढ़ावा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उसके पश्चात् बीसवीं सदी के प्रायः सभी इतिहासकारों ने तथ्यपरक एवं वस्तुनिष्ठ इतिहास के लेखन पर बल दिया। उहोंने अतीत को समझने के लिए विशेष रूप से पूर्वाग्रह से रहित विचारों को प्रस्तावित किया।

इतिहास को विज्ञान के समकक्ष मानने वाले इतिहासकारों का मानना था कि इतिहास में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोगकर इतिहास में भी विज्ञान के विषयों की तरह निश्चितता लाई जा सकती है। इस हेतु उन्होंने ठोस तथ्यों एवं सुनिश्चित नियमों की व्यापक योजना प्रस्तुत की। इसके सकारात्मक परिणाम भी निकले। इतिहास को साहित्य एवं अलौकिक शक्तियों के हस्तक्षेप से मुक्त कर समाज विज्ञान की श्रेणी में रखा जाने लगा। अनेक आधुनिक इतिहासकारों ने स्वीकार किया कि मानव के जीवन के अतीत के अध्ययन को सरल बनाने में विज्ञान की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। इतिहासकार कॉलिंगवुड ने स्वीकार किया कि इतिहास एक प्रकार का शोध है और इसका संबंध विज्ञान से है। इसमें हमारे प्रश्नों का उत्तर मिलता है। जिस प्रकार विज्ञान में प्रकृति संबंधी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है, उसी प्रकार मानव समाज के जीवन–संबंधी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर इतिहास से प्राप्त होता है। जे0बी0 ब्यूरी द्वारा ''इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक, कहने का आधार भी यह था कि इतिहास द्वारा अतीत के समाज का

प्रमाणिक अध्ययन प्राप्त किया जा सकता है।

बीसवीं सदी के अधिकांश इतिहासकारों ने अपने–अपने तरीके ऐतिहासिक प्रविधियों में प्रमाणिकता लाने का प्रयास किया है। इतिहास को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने में ऐतिहासिक तथ्यों का सावधानी से एकत्रण एक महत्त्वपूर्ण चरण है। ब्यूरी का मानना था कि इतिहास को साहित्य से मुक्त किया जाना चाहिए। इसके साथ ही इतिहास को इतिहासकार के व्यक्तित्व तथा उसकी परिष्कृत शैली से मुक्त कर यथार्थ वर्णन को प्रधानता देनी चाहिए। विज्ञान की विशेषता यथार्थता का अन्वेषण है। इस उच्च आदर्श को इतिहास में भी स्थपित करके इसे वैज्ञानिक स्तर प्रदान किया जा सकता है। एडम स्मिथ ने भी लिखा है कि ''इतिहासकार अतीत में मानव जाति के जीवन तथा कार्यों से सम्बन्धित वस्तुनिष्ठ यथार्थ तथ्यों को क्रमबद्धता का निर्धारण सुनिश्चित नियमों के अनुसार करे तो इतिहास की तुलना भौतिक विज्ञान से की जा सकती है।'' इसी क्रम में वाल्श की यह मान्यता भी उल्लेखनीय है कि ''इतिहास एक बौद्धिक प्रक्रिया है तथा चयनशीलता इसकी विशेषता है।'' यदि विज्ञान की विशेषता भी चयनशीलता है तो इस विशेषता के परिप्रेक्ष्य में इतिहास भी निश्चित रूप से विज्ञान है। ब्यूरी ने वैज्ञानिक तरीके से तथ्यान्वेषण तथा सूक्ष्म निरीक्षण पद्धति को इतिहास अध्ययन का अनिवार्य अंग स्वीकार किया।

सामान्यीकरण विज्ञान का एक विशेष गुण है। इसके द्वारा कुछ प्रयोगों के आधार पर हम सामान्य निष्कर्ष तक पहुँचते है। एल्टन ने सामान्यीकरण को इतिहास का अभिन्न अंग माना है। इतिहास में भी कुछ घटनाओं के आधार पर सामान्यीकरण की पुष्टि की जा सकती है। सामान्यीकरण के सिद्धान्त के आधार पर इतिहासकार कहता है कि नेपोलियन तथा हिटलर की विफलता इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि कोई सम्पूर्ण यूरोप पर शासन नहीं कर सकता। सम्पूर्ण यूरोप को नियंत्रित करना एक व्यक्ति के क्षमता के बाहर है। इस प्रकार सामान्यीकरण का सिद्धान्त का उपयोग इतिहासकार भी करता है।

विज्ञान को उपयोगीता उसके शिक्षाप्रद होने पर निर्भर है। अनेक इतिहासकारों ने इतिहास में इस गुण के होने का प्रमाणित किया है। इनका मानना है कि यदि सुव्यवस्थित तरीके से अतीत का अध्ययन किया जाय तो यह वर्तमान का समझने में मदद करता है साथ ही भविष्य के लिए सुगम रास्ता तैयार करता है। ऐतिहासिक तथ्यों की सूक्ष्म विवेचना के पश्चात् इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप में आस्था रखने वाले इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि विज्ञान की भाँति इतिहास में भविष्यकथन करने की पर्याप्त संभावना होती है। वस्तुतः इतिहास के भविष्यकथन संभावनापरक होते हैं। कार्ल पापर ने इस विषय पर सार्थक मत व्यक्त करते हुए कहा है कि वैज्ञानिक भविष्यवाणी करता है तथा इतिहासकर परिस्थितियों के संदर्भ में भविष्य के लिए मार्गदर्शन करता है। वस्तुनिष्ठता विज्ञान का प्रमुख आधारस्तम्भ होता है। इसी के आधारपर वैज्ञानिक निष्कर्षों को सार्वभौम मान्यता प्राप्त हो जाती है। ऐतिहासिक लेखन में वस्तुनिष्ठता और विषयनिष्ठता साथ–साथ पाई जाती है। इतिहास, लेखक की भावनाओं और व्यक्तित्व से भी प्रभावित होता है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इतिहास पूर्णतया विषयनिष्ठ होता है। अगस्त कोम्ते के अनुसार जब इतिहासकार व्यक्तिगत भाव का परित्यागकर सिद्धान्त का आश्रय लेता है तो इतिहास का विषयनिष्ठ स्वरूप वस्तुनिष्ठता में परिवर्तित हो जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग का ऐतिहासिक तथ्यों के एकत्रण एवं अन्तरवैषयिक अध्ययनों को बढाकर ऐतिहासिक निष्कर्षों को वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसर किया जा रहा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्तमान समय में इतिहास को एक ऐसे विषय के रूप में मान्यता प्राप्त है जिसमें विज्ञान के समान आधार प्रणाली है और साथ ही ऐतिहासिक वर्णन में सुचिंतित कल्पनाशीलता का प्रयोग मिलता है।

7.4 इतिहास का स्वरूप

इतिहास एक अत्यंत लोकप्रिय एवं प्राचीन विषय है। इस कारण अनेक विषयों के साथ इसका लेन–देन होता रहा है। इसके अनेक सहायक विषय भी है । आगे इसके प्रमुख सहायक विषयों का उल्लेख किया जा रहा है। इसके साथ ही उन प्रमुख समाज विज्ञानों का भी उल्लेख किया जा रहा है जिनका इतिहास के विकास पर प्रभाव पड़ा है।

7.5 इतिहास तथा इसके सहायक शास्त्र

इतिहास एक विस्तृत विषय है तथा उसके विषय क्षेत्र में समस्त मानवीय कार्य एवं समाज की गतिविधियाँ आ जाती है। इतिहास के प्रमुख सहायक विषयों में पुरातत्व, अभिलेखशास्त्र, मुद्राशास्त्र एवं प्रतिमशास्त्र हैं जो इतिहास के विषय को वैधता प्रदान करने में महत्वपूर्ण निभाते हैं।

7.5.1 इतिहास एवं पुरातत्व शास्त्र

पुरातत्व एक विषय के रूप में पुरावशेषों के संकलन एवं अध्ययन से प्रारम्भ होता है। पुरातत्व एवं इतिहास दोनों का ही उद्देश्य मानव के विकास का अध्ययन करना है इसीलिए दोनों के अत्यन्त निकट का संबंध है। दोनों की पद्धति में भी अनेक समानताएं हैं। दोनों ही विषयों में काल एवं स्थान का महत्वपूर्ण स्थान है। पुरातत्व इतिहास के पूरक का काम करता है। ऐतिहासिक युग के पूर्व की जानकारी में पुरातत्व केंद्रीय भूमिका निभाता है। किसी पुरास्थल के उत्खनन में प्राप्त अवशेष जैसे– मिट्टी के बर्तन, खपरैलों के टुकड़े, मूर्तियों के भग्नावशेष, अनाज के जले दाने, आवासों के अवशेष आदि का अवलोकन करके पुराविद् एक प्रमाणिक जानकारी उपलब्ध कराता है जिसके आधार पर इतिहासवेत्ता उस पुरास्थल का सम्पूर्ण इतिहास प्रस्तुत करता है। भारत में अलेक्जेंडर कनिंघम ने 1861 भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना की। उसके बाद से इस विधा में निरन्तर विकास होता रहा है। भारत में पाषाणकालीन एवं सैंधव युग के इतिहास को जानने का मुख्य आधार पुरातत्व है। इस प्रकार ऐतिहासिक युग के पूर्व के मनुष्य को जानने का मुख्य साधन पुरातत्व उपलब्ध कराता है।

7.5.2 इतिहास एवं पुरालेख शास्त्र

भारतीय इतिहास लेख में अभिलेखों का महत्व सर्वोपरि है। इसको उत्कीर्ण कराने के उद्देश्य विविध थे। कुछ अभिलेख ऐसे है जिनमें वंशावली, ऐतिहासिक घटनाओं तथा महान शासकों की उपलब्धियों का वर्णन है। खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख और समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति ऐसे अभिलेख हैं जिसमें उक्त शासकों का प्रायः सम्पूर्ण जीवन चरित वर्णित है। भारत के सामाजिक जीवन का भी महत्वपूर्ण आधार अभिलेखों में वर्णित सामग्री है। प्राचीन भारत की वर्णव्यवस्था, सती प्रथा, वस्त्राभूषण आदि की जानकारी सियदोणी अभिलेख, एरण अभिलेख आदि से मिलती है। अभिलेख आर्थिक एवं धार्मिक इतिहास के भी महत्वपूर्ण स्रोत हैं। रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से सिंचाई व्यवस्था तथा रूम्मिनदेई अभिलेख से कर व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। अशोक के लेख धर्म की महत्ता को जानने के महत्वपूर्ण स्रोत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अभिलेख इतिहास के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण सहायक अंग की भूमिका निभाते हैं।

7.5.3 इतिहास एवं मुद्राशास्त्र

सिक्के भारतीय इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सिक्कों पर अंकित लेख लिपि का ज्ञान भी कराते हैं। प्राचीन भारत में प्रारम्भिक सिक्के आहत सिक्कों के नाम से जाने जाते हैं। इनके पश्चात् जनपदीय सिक्कों में राजा के नाम मिलने लगते हैं। इण्डो–ग्रीक सिक्के, कुषाण सिक्के, सातवाहन सिक्के के समय से राजा के नाम, उनके धार्मिक विश्वास एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध तत्वों की जानकारी सिक्कों से प्राप्त होने लगी। गुप्त शासन वैष्णव धर्म के अनुयायी थे जिसके अनेक प्रमाण उनके सिक्कों से प्राप्त होते हैं। सिक्कों पर राजचिन्ह गुरुणध्वज एवं देवियों में प्रमुख रूप से लक्ष्मी का अंकन उनके वैष्णव होने का प्रमाण हैं। सिक्के आर्थिक इतिहास की भी महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। जो राजवंश आर्थिक दृष्टि से संपन्न होता था, उनके यहां सोने, चांदी एवं तांबे के सिक्के बड़ी मात्रा में मिलते थे। कुषाण एवं गुप्त शासकों की बड़ी संख्या में सिक्कों का मिलना उस युग की संपन्नता का परिचायक है। इसी प्रकार पूर्व मध्यकाल में सिक्कों की कम मात्रा उस काल की आर्थिक अव्यवस्था का संकेत माना जाता है।

7.5.4 इतिहास और प्रतिमाशास्त्र

प्राचीन भारतीय कला एवं धर्म के इतिहास की समझ के लिए प्रतिमाशास्त्र का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रतिमाशास्त्र से संबंधी जानकारी के मुख्य स्रोत पुराण, आगम एवं तंत्र साहित्य है। पुराणों में मत्स्य पुराण में मूर्ति विज्ञान की जानकारी प्राप्त होती है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण भी मूर्ति विज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन पुराणों में विविध धार्मिक मूर्तियों के बनाने की विधि एवं सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। प्रसिद्ध कलाविद गोपीनाथ राव ने आगम साहित्य में वर्णित मूर्तियों से संबंधित जानकारी को विस्तार से अपनी रचना में स्थान दिया है। तंत्र साहित्य पूर्व मध्यकालीन मूर्ति निर्माण कला का प्रमुख स्रोत है। इन ग्रन्थों एवं मूर्तियों के भौतिक अवशेषों का मिलान करके तत्कालीन सौंदर्यशास्त्रीय मानकों का अध्ययन किया जाता है। मूर्तियों से संबंधित भौतिक अवशेषों के आधार पर तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तियों की भी जानकारी प्राप्त होती है।

7.6 इतिहास और समाज विज्ञान

आधुनिक युग में समाज विज्ञानों का विकास ज्ञान–विज्ञान के विकास क्षेत्र की महत्वपूर्ण घटनाक्रम है ।

इसने मानविकी के विषयों में वैज्ञानिक अध्ययनों को संभव बनाया। अनेक परंपरागत विषय आनुभविक विधियों का प्रयोग कर अपने विषय के पुराने का स्वरूप को नवीन रूप प्रदान किए। इनमें से कुछ प्रमुख विषय निम्नलिखित है जिनसे इतिहास विषय प्रभावित हुआ।

7.6.1 इतिहास और राजनीति विज्ञान

इतिहास एवं राजनीति विज्ञान में महत्वपूर्ण संबंध होता है। एक इतिहासकार का काम केवल घटनाओं के वर्णन द्वारा राजनीतिक प्रक्रिया के इतिहास का पता लगाना नहीं होता बल्कि उस युग के मौलिक राजनीतिक सिद्धांतों की प्रकृति और राजनीतिक संस्था के बुनियादी स्वरूपों का पता लगाना भी होता है। दो विषयों के बीच इस निकटता की दृष्टि से , राजनीतिक संस्थाओं का विकास, नियम, विनियम, अधिकार और कर्तव्य, कानून और न्याय का तरीका, कार्यकारी, विधायी और प्रशासनिक कार्य, आर्थिक और वित्तीय निहितार्थ, नौकरशाही की प्रकृति, राज्य नीति के मौलिक सिद्धांत अध्ययन के महत्वपूर्ण विषय होते है। हाल के समय में शक्ति संतुलन, शीत युद्ध, अंतर्राष्ट्रीय शांति, निरस्त्रीकरण जैसे मुद्दों ने बहुत महत्व प्राप्त कर लिया है। सैन्य इतिहास राजनीतिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है जहाँ युद्ध अभियान, रणनीति और विजय बहुत प्रमुखता से दिखाई देते हैं। इतिहास राजनीति के लिए बहुत मददगार है क्योंकि इतिहासकार द्वारा दर्ज की गई गतिविधियों की पूरी श्रृंखला में राजनीतिक पहलू शामिल होते हैं और इतिहास का ज्ञान राजनेताओं को राजनीति को बेहतर तरीके से जानने और अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभाने में सक्षम बनाता है। प्रो. एक्टन ने सही कहा है, ''राजनीति का विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो इतिहास की धारा द्वारा नदी की रेत में सोने के कणों की तरह जमा होता है।''

7.6.2 इतिहास और अर्थशास्त्र

इतिहास और अर्थशास्त्र दो महत्वपूर्ण सामाजिक विज्ञान हैं जो मानव समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हैं। इतिहास अतीत की घटनाओं, समाजों, संस्कृतियों, और व्यक्तियों का अध्ययन है। अर्थशास्त्र संसाधनों के उत्पादन, वितरण और उपभोग का अध्ययन करता है। इतिहास और अर्थशास्त्र आपस में जुड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए, आर्थिक नीतियाँ और व्यापार मार्ग कई ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित करते हैं, जैसे कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद या औद्योगिक क्रांति। कई ऐतिहासिक घटनाएँ आर्थिक कारणों से हुई हैं, जैसे– औद्योगिक क्रांति (18वीं–19वीं शताब्दी), उत्पादन तकनीकों में सुधार और पूंजीवाद के उदय ने समाज में बड़े बदलाव लाए। ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने भारत और अफ्रीका जैसे देशों पर यूरोपीय देशों ने व्यापार और संसाधनों की तलाश में कब्जा किया। महान मंदी के आर्थिक संकट ने नाजीवाद और द्वितीय विश्व युद्ध को बढ़ावा दिया। अलग–अलग समय पर अपनाई गई आर्थिक नीतियाँ इतिहास की दिशा बदल सकती हैं। मुगल काल में जमींदारी व्यवस्था और ब्रिटिश राज की स्थायी बंदोबस्ती नीति ने किसानों की स्थिति को प्रभावित किया। भारत में आर्थिक सुधारों ने देश की अर्थव्यवस्था को बदल दिया। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्धों के पीछे मुख्य रूप से आर्थिक कारण थे, जैसे उपनिवेशों की होड़ और संसाधनों की कमी। शीत युद्ध ने अमेरिका और सोवियत संघ के बीच आर्थिक और वैचारिक टकराव ने दुनिया को दो धड़ों में बाँट दिया। मार्क्स द्वारा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के दिनों से हमारे ऐतिहासिक दृष्टिकोण में एक नई दिशा आई है और वर्ग संघर्ष, धन कमाने में मनुष्य का कौशल, कला और शिल्प, व्यापार, व्यवसाय और वाणिज्य, भूमि राजस्व, कर और अतीत की अन्य सभी आर्थिक गतिविधियां की इतिहास में भूमिका निर्धारित की जाने लगी। निष्कर्ष रूप में कह सकते है किइतिहास और अर्थशास्त्र एक–दूसरे के पूरक हैं। इतिहास हमें यह बताता है कि समाज कैसे बदले, और अर्थशास्त्र यह बताता है कि इन बदलावों के पीछे कौन–से आर्थिक कारण थे। दोनों का अध्ययन हमें न केवल अतीत को समझने में मदद करता है, बल्कि भविष्य की नीतियों और रणनीतियों को बेहतर बनाने में भी सहायक होता है।

7.6.3 इतिहास और समाजशास्त्र

इतिहास और समाजशास्त्र का आपस में घनिष्ठ संबंध है और ऑगस्ट कॉम्टे जैसे कई समाजशास्त्री ने ऐतिहासिक अध्ययनों के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया हैं। सामाजिक संस्थाओं के विकास में कार्ल मार्क्स की स्थापनाएं एवं विचार भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। इतिहास और समाजशास्त्र दोनों ही समाज में मनुष्य के अध्ययन से संबंधित हैं । हाल के वर्षों में यह महसूस किया गया कि दोनों विषयों के बीच एक उपयोगी संवाद संभव है और एमिल दुर्खीम, मैक्स वेबर ने समाजशास्त्र के अध्ययन में इतिहास की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया है। इतिहास भी समाजशास्त्रियों द्वारा विश्लेषित विचार से लाभान्वित होता है।समाजशास्त्रियों ने मानव गतिविधि के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों को विशेष रूप से विकसित करके इतिहास के अध्ययन पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने आधुनिक शोध तकनीकों को

अपनाया और व्यक्तिपरक तत्व को कम करने के उद्देश्य से अपने उपकरण विकसित किए। समाजशास्त्र इतिहास को सामाजिक गतिशीलता एवं सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करने में मदद कर रहा है।

7.6.4 इतिहास और मनोविज्ञान

इतिहास और मनोविज्ञान भी आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। एक इतिहासकार को लोगों और समाजों के उद्देश्यों और कार्यों का विश्लेषण करते समय मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि का प्रयोग करना चाहिए। ऐतिहासिक जीवनियों के सही विश्लेषण के लिए भी मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है। आधुनिक समय में मनोविज्ञान की खोजों ने मनुष्य के व्यक्तिगत एवं समूह में कार्य करने के प्ररकों का गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। सतर्क इतिहासकारों ने इन आधुनिक शोधों का उपयोग करना आरंभ कर दिया है । इतिहासकार के निजी जीवन और पर्यावरण का उसके निर्णय पर सीधा असर पड़ता है और अक्सर उसके विवरण में पूर्वाग्रह आ जाता है और वांछित निष्पक्षता असंभव हो जाती है।

इतिहास पर मनोविज्ञान का प्रभाव इस तथ्य से स्पष्ट है कि अतीत में इतिहासकारों ने मुख्य रूप से युद्धों का केवल विवरण दिया और उसके कारण और परिणाम के विश्लेषण को नजरअंदाज कर दिया। वर्तमान समय में मनोविज्ञान के प्रभाव के परिणामस्वरूप इतिहासकार युद्ध के परिणामों और प्रभावों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। समूह मनोविज्ञान की समझ इतिहासकार को विभिन्न क्रांतियों में जनता की भूमिका निर्धारित करने में सक्षम बना सकती है । ब्लाख और फेबव्र के अधिकांश कार्यों की पृष्ठभूमि में समूह मनोविज्ञान की समझदारी निहित है। इस प्रकार इतिहास के अवबोध में मनोविज्ञान की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

7.6.5 इतिहास और भूगोल

इतिहास और भूगोल में बहुत गहरा संबंध होता है। वास्तव में भूगोल के बुनियादी ज्ञान के बिना इतिहास की कुछ शाखाओं का अध्ययन करना व्यावहारिक रूप से असंभव होगा, जैसे कि कूटनीतिक या सैन्य इतिहास, को आवश्यक भौगोलिक ज्ञान के बिना नहीं पढ़ा जा सकता। भूगोल इतिहास की एक आँख है, और दूसरी आँख कालक्रम है। समय और स्थान के कारक इतिहास को उसका सही परिप्रेक्ष्य देते हैं। इतिहासकर फेब्रव का मानना था कि अतीत के समाजों का परिवेश से संबंध का अध्ययन भौतिक भूगोल के गंभीर अध्ययन पर आधारित होना चाहिए। जर्मन दार्शनिक कांट ने भी कहा, '' भूगोल इतिहास का आधार है।'' हर्डर का मानना था कि ''इतिहास गतिमान भूगोल है।'' अमेरिकी भूगोलवेत्ता एल्स वर्थ हंटिंगटन और एलन सेम्पल ने जलवायु के महत्व पर जोर दिया है और उनका मानना है कि यह इतिहास के साथ–साथ वहा के लोगों के स्वभाव पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। प्रारंभिक मिस्र, मेसोपोटामिया, भारत और चीन जैसी संस्कृतियाँ के विकास में वहाँ की जलवायविक परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। प्रारंभिक यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस का मानना था कि "मिस्र नील नदी का उपहार है"। ब्रिटेन, जापान और ग्रीस जैसे देशों के विस्तृत तटरेखाओं वाले भौतिक गठन का उनके इतिहास पर बहुत शक्तिशाली प्रभाव पड़ा। इससे उनकी नौसैनिक ताकत और साम्राज्य निर्माण गतिविधियों में मदद मिली। इसी तरह, हिमालय और असम के जंगल भारत के उत्तर और पूर्व से होने वाले आक्रमणों के खिलाफ अवरोधक के रूप में काम करते रहे हैं। भूगोल राष्ट्रीय चरित्र निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और मानव व्यवहार को प्रभावित करता है। जैसा कि हम जानते हैं कि किसी देश की जलवायु उस देश की सभ्यता को बहुत प्रभावित करती है। इसीलिए इतिहासकारों के लिए भौगोलिक ज्ञान को बहुत आवश्यक माना गया है।

7.6.6 इतिहास और मानव विज्ञान

एक विषय के रूप में मानव विज्ञान का इतिहास के साथ घनिष्ठ संबंध है। इन दोनों का ही केंद्र मानव है। इतिहास में जहाँ हम मानव के क्रियाकलापों के अध्ययन पर जोर देते हैं, वही मानव विज्ञान के अन्तर्गत हम मानव के उद्भव एवं विकास का अध्ययन करते हैं, परन्तु मानव एवं उसकी संस्कृति का अध्ययन इतिहास तथा मानव विज्ञान दोनों का ही प्रमुख विषयवस्तु है। राल्फ बील्स के अनुसार ''मानव विज्ञान मनुष्य के शारीरिक और सांस्कृतिक विकास के नियमों तथा सिद्धान्तों का अनुसंधान करने वाला विज्ञान है। मानव विज्ञान के सामाजिक–सांस्कृतिक मानव विज्ञान एवं प्रागैतिहासिक मानव विज्ञान शाखा में इतिहास का विशेष रूप से योगदान रहता है। इन दोनों विषयों में कुछ प्रमुख विभेद भी है। इतिहास मात्र मनुष्य के कार्यों का अध्ययन नहीं होता, अपितु उसमें मनुष्य से संबंधित अन्य घटनाक्रमों यथा–साम्राज्यों का उत्थान–पतन, युद्ध, शांति–समझौते इत्यादि का अध्ययन किया जाता है जबकि मानव विज्ञान में प्रत्येक अध्ययन मनुष्य के इर्द–गिर्द ही घूमता है।

7.7 सारांश

मानव समाज के उद्‌भव एवं विकास को समझने हेतु इतिहास का अध्ययन अनिवार्य है। इतिहास का एक संगठित विषय के रूप में अध्ययन यूनानी विद्वानों की देन है। मध्ययुग में इतिहास के क्षेत्र में धार्मिक संगठनों एवं व्यक्तियों का ज्यादा प्रभाव रहा है। प्रबोधन के युग में इतिहास में बुद्धिवाद के प्रयोग को बढ़ावा दिया। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से इतिहास की संरचना में वैज्ञानिक प्रविधियों एवं चेतना का प्रयोग बढ़ता गया। इतिहास के स्वरूप भी समय के साथ निरन्तर परिवर्तित होता रहा है। कुछ अनुशासनों ने इतिहास के अध्ययन में वैधता के अंशों को संवर्धित किया। इनमें विशेष रूप से मुद्राशास्त्र, पुरातत्व, अभिलेखशास्त्र एवं प्रतिमाशास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है। इतिहास विषय की समझ एवं विस्तार के संवर्धित करने में समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, भूगोल एवं राजनीति शास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है। इन विषयों ने अपनी प्रविधि एवं अनुशासन के अंगों के सहयोग द्वारा इतिहास विषय के अवबोध को अत्यन्त विस्तृत किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि इतिहास एक अत्यन्त उदार एवं प्रगतिशील अनुशासन है जिसने समय के साथ निरन्तर नवीन प्रवृत्तियों एवं अनुशासनों को अपने अध्ययन में शामिल किया है।

7.8 संदर्भ ग्रन्थ

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहास की संरचना के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2. इतिहास के वैज्ञानिक विकास के प्रमुख पक्षों को उद्‌घाटित कीजिए।
3. इतिहास के सहायक विषयों के साथ संबंधों पर प्रकाश डालिए।
4. इतिहास का प्रमुख समाज विज्ञानों के साथ संबंधों पर प्रकाश डालिए।

इकाई 8 : इतिहास में वस्तुनिष्ठता की समस्या

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 वस्तुनिष्ठता का अर्थ एवं परिभाषाएँ

8.4 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ

- 8.4.1 निष्पक्षता का अभाव
- 8.4.2 परिवर्तनशील मान्यताएँ
- 8.4.3 चयनात्मक स्वरूप
- 8.4.4 धर्म, जाति एवं प्रजाति का प्रभाव
- 8.4.5 ऐतिहासिक न्याय की मूल्यपरकता
- 8.4.6 भावों की प्रधानता
- 8.4.7 विचारधारा का प्रभाव
- 8.4.8 व्यक्तिगत पूर्वाग्रह

8.5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

- 8.5.1 इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता
- 8.5.2 तथ्य प्रधान इतिहास लेखन
- 8.5.3 व्यक्तिगत भावनाओं की प्रधानता
- 8.5.4 धार्मिक–नैतिक प्रभाव से मुक्ति
- 8.5.5 ऐतिहासिक सिद्धान्तों एवं वादों से मुक्ति
- 8.5.6 इतिहासकार द्वारा ऐतिहासिक अनुशासन व अन्य नियमों का पालन

8.6 सारांश

8.7 संदर्भ पुस्तकें

8.8 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

वस्तुनिष्ठता आधुनिक युग में वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली की आधारशिला है। समाजविज्ञान एवं प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन में इसको केंद्रिय स्थान प्राप्त है। वस्तुनिष्ठता का सामान्य अर्थ यह है कि यदि कोई वैज्ञानिक समुचित विधि तथा नियमों के आधार पर प्रयोगशाला में सिद्ध निष्कर्ष प्रस्तुत करता है तो सभी वैज्ञानिक उसके द्वारा स्थापित निष्कर्ष भी मान्यता को स्वीकार करेंगे, जैसे पानी फिटकरी, गणित आदि के क्षेत्र मेंस्थापित किए गए अनेक निष्कर्षों को सार्वभौम माना जाता है। उपर्युक्त मान्यता प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में विशेष रूप से स्थापित है। इसी प्रकार की सुनिश्चितता को समाज विज्ञान के क्षेत्र स्थापित करने हेतु इन विषयों में वस्तुनिष्ठता के तत्त्वों को समावेशित करने का प्रयत्न होता रहा है। इतिहास को भी वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली के मान्यताओं का अनुगामी बनाने हेतु इसे वस्तुनिष्ठता के पैमाने के साथ परखने का प्रयत्न आधुनिक इतिहासकारों ने किया है। वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली में आस्थावान इतिहासकारों का मानना है कि वे इतिहास के निष्कर्ष को भी सार्वभौमिक बना सकते हैं। इस हेतु उन्होंने

व्यापक प्रयास किए है। तथ्यों का सही संकलन, अंधविश्वासों एवं वैचारिक वादों से दूरी, संयत व्याख्या आदि प्रयासों द्वारा उन्होंने इतिहास को वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक बनाने का भरपूर प्रयास किया है। उनके प्रयासों के सार्थक निष्कर्ष भी प्राप्त हुए है। लेकिन चूंकि इतिहास मानवीय उपलब्धियों का विवरण है, इस कारण इसके विभिन्न मान्यताओं पर एकमत होना सम्भव नहीं रहता। इसी कारण सार्थक ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने में अनेक समस्याएं आती है।

8.2 उद्देश्य

इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता का होना उसका समाज में स्वीकृति की बड़ी कसौटी है। यह उसको दीर्घजीवी होने में भी सहायता पहुँचाता है। इसे इतिहास लेखन की नींव भी कहा जाता है क्योंकि सदियों से श्रेष्ठ इतिहासकारों का यह सपना रहा है कि ऐसा इतिहास लिखा जाय, जो निष्पक्ष हो तथा विज्ञान जैसे ठोस धरातल पर खड़ा हो। प्रस्तुत इकाई अध्ययन आप जान सकेंगे कि –

1. वस्तुनिष्ठता का स्वरूप एंव और इसकी इतिहास में आवश्यकता,
2. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करने में प्रमुख बाधाएं,
3. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में व्यक्तिगत पूर्वाग्रह की भूमिका,
4. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के प्रमुख आधार,
5. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के प्रति प्रमुख इतिहासकारों का मत।

8.3 वस्तुनिष्ठता का अर्थ एवं परिभाषाएँ

वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य घटना का यथार्थ अथवा वास्तविक रूप में वर्णन से है, जिस रूप में वह घटित हुआ है। यदि कोई अनुसंधानकर्त्ता अथवा समाज वैज्ञानिक किसी घटना का वर्णन उसी रूप में करता है जिसमें कि वह विद्यमान है या घटित हुआ है, तो हम इसे वस्तुनिष्ठ अध्ययन कहेंगे। सामान्यतः वस्तुनिष्ठता को पूर्वाग्रह–रहित, तटस्थ या यथातथ्य के संदर्भ में ग्रहण किया जाता है। किसी वस्तु या घटना के बारे में वस्तुनिष्ठ होने के लिए हमें उसके बारे में अपनी भावनाओं या मनोवृत्तियों को त्यागना पड़ता है। जब एक भू–वैज्ञानिक चट्टानों का अध्ययन करता है अथवा एक गणितशात्री गणितीय मान्यताओं को प्रस्तुत करती है तो उनके व्यक्तिगत पूर्वाग्रह या मान्यताएँ उनके अध्ययन को प्रभावित नहीं करती है। इसके विपरीत समाज वैज्ञानिक उस संसार या पर्यावरण का अध्ययन करते हैं जिनमें वे स्वयं रहते हैं। इसलिए उनके द्वारा किया जाने वाला अध्ययन 'व्यक्तिनिष्ठता' से प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ, पारिवारिक संबंधों का अध्ययन करने वाला समाजशास्त्री भी स्वयं एक परिवार का सदस्य होता है तथा उसके अनुभवों का उसके अध्ययन पर प्रभाव पड़ सकता है। यह सम्भव है कि वह पारिवारिक संबंधों के बारे में अपने कुछ मूल्य अथवा पूर्वाग्रह रखता हो। कुछ विद्वानों ने वस्तुनिष्ठता को परिभाषित करने का भी प्रयत्न किया है। जैसे ग्रीन के अनुसार, ''वस्तुनिष्ठता प्रमाण का निष्पक्षता से परीक्षण करने की इच्छा एवं योग्यता है।'' एक अन्य विद्वान फेयरचाइल्ड का मानना है कि, ''वस्तुनिष्ठता का अर्थ तथ्यों को पक्षपात तथा उद्देश्य के आधार पर नहीं, बल्कि प्रमाण एवं तर्क के आधार पर बिना किसी सुझाव या पूर्व–धारणाओं के सही पृष्ठभूमि में देखने की योग्यता है।'' उपर्युक्त विश्लेषण व परिभाषाओं के आलोक में देखने पर प्रतीत होता है कि वस्तुनिष्ठता किसी घटना का निष्पक्ष एवं तटस्थ रूप से अध्ययन करने की क्षमता है जो शोधकर्त्ता को अध्ययन करते समय उसके अपने विश्वासों, आशाओं एवं भय से दूर रखती है। समाज विज्ञानों में वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करना इन्हें विज्ञान की श्रेणी में लाने की अनिवार्य शर्त हैं।

8.4 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करना आधुनिक युग के इतिहासकारों का प्रमुख उद्देश्य रहा है। लेकिन वस्तुनिष्ठ इतिहासलेखन एक अत्यन्त जटिल कार्य है। यह प्राप्त करने हेतु इतिहासकार अनेक प्रकार की परम्परागत धारणाओं से मुक्त होना होता है। आधुनिक इतिहासकारों ने ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की प्राप्ति में जिन बाधाओं का उल्लेख किया है वे निम्नवत है।

8.4.1 निष्पक्षता का अभाव

प्रत्येक इतिहासकार जिस समाज व देश में जन्म लेता है, वह वहाँ के भौगोलिक व सांस्कृतिक मान्यताओं से

प्रभावित होता है। उस देश व स्थान की सामाजिक, सांस्कृतिक मान्यताएँ उस इतिहासकार के विचार एवं लेखन को प्रायः प्रभावित करते है। कार्ल मार्क्स का भी मानना था कि संस्कार तथा सामाजिक वातावरण के कारण ही अरबी–यहूदी, हिन्दू–मुसलमान, रूसी–अमेरिकी इतिहासकारों में मतभेद है। इतिहासकार किसी विशेष दृष्टिकोण से प्रभावित होकर ही ऐतिहासिक व्याख्या करता है। उसका यह दृष्टिकोण उसके सांस्कृतिक पर्यावरण की उपज होता है। इस कारण उसकी ऐतिहासिक व्याख्या निष्पक्ष नहीं होती है।

8.4.2 परिवर्तनशील मान्यताएँ

भूतकालीन अनेक प्रामाणिक मान्यताओं का वर्तमान में प्रासंगिकता बहुत नहीं रह जाती है। इतिहास में मान्यताएँ व किंवदन्तियाँ समय के साथ महत्वहीन होती रहती है। कार्ल बेकर के अनुसार, ''इतिहास अतीत कालिक घटनाओं का सर्वांगिण विवरण है, परन्तु अतीत की घटनाओं का वर्णन प्रत्येक युग का इतिहासकार समान रूप से प्रस्तुत नहीं करता। प्रत्येक पीढ़ी का इतिहासकार अपने युग के आवश्यकतानुसार इतिहास की रचना करता है।'' दास–प्रथा किसी युग में अपनाई जाने वाली प्रथा थी लेकिन वर्तमान समय में उसे सामाजिक अभिशाप माना जाता है। इतिहास का स्वरूप प्रत्येक युग में परिवर्तनशील रहता है। अतः ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना एक स्वप्न है।

8.4.3 चयनात्मक स्वरूप

वाल्श के अनुसार इतिहास का स्वरूप चयनात्मक होता है। किसी भी इतिहासकार के लिए अतीत का सर्वांगीण चित्र उपस्थित करना दुष्कर कार्य है। इतिहासकार प्रायः अतीत के किसी एक पक्ष का ही वर्णन करता है। अतीत का विस्तृत क्षेत्र इतिहासकार को किसी एक पक्ष के मनोनुकूल चयन करने के लिए विवश करता ही है। लेकिन इस प्रकार का चयन उसे पूर्वाग्रही बना देता है। पूर्वाग्रही विचार के कारण ही एक ही घटना को इतिहासकार भिन्न–भिन्न ढंग से प्रस्तुत करते है। गुप्तयुग के आर्थिक स्थिति को लेकर राष्ट्रवादी एवं मार्क्सवादी इतिहासकारों की मान्यताओं में भिन्नता है। राष्ट्रवादी इतिहासकार गुप्त युग को प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग मानते है, जबकि मार्क्सवादी इतिहासकार गुप्तयुग को सामंती एवं प्रतिकूल आर्थिक विकास का चरण मानते हैं। दोनों ही वर्ग के इतिहासकारों के विचारों में मतभेद का कारण उनके पूर्वाग्रही विचार है। पूर्वाग्रही विचार के कारण दोनों वर्ग के इतिहासकारों अपने–अपने तरीके से तर्क के समर्थन में तथ्यों का चयन करते हैं। इतिहास में इस प्रकार का चयन ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए बाधक है।

8.4.4 धर्म एवं जाति व प्रजाति का प्रभाव

इतिहास लेखन में धर्म एवं प्रजाति व जातिगत मान्यताओं का प्रभाव वस्तुनिष्ठता को गम्भीर तरीके से प्रभावित करता है। इतिहासकार चाहते हुए भी अपने आप को धर्म एवं प्रजातीय भावनासे मुक्त नहीं कर पाता है। मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन में एक ओर युदनाथ सरकार ने औरंगजेब की धर्मान्धता के कारण उसकी अत्यधिक आलोचना की है, जबकि दूसरी ओर फारूखी औरंगजेब धार्मिक नीति को भेदभावपूर्ण नहीं माना है। इसी प्रकार के तीव्र मतभेद रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, यहूदी और अरब इतिहासकारों में भी प्राप्त होता है। अंग्रेज इतिहासकार,जिन्होंने प्राचीन भारत का इतिहास लेखन किया है, उसमें उस समय के भारत को एक पिछड़े एवं असभ्य देश के रूप में दिखने का प्रयत्न किया है जबकि राष्ट्रवादी इतिहासकारों को प्राचीन भारत, सभ्यता एवं संस्कृति के उत्कृष्ट केन्द्र के रूप में नजर आता है। इस प्रकार धर्म एवं प्रजातिगत मान्यताएं ऐतिहासिक ज्ञान के वस्तुनिष्ठता के प्रमुख बाधक के रूप में माने जा सकते हैं।

8.4.5 ऐतिहासिक न्याय की मूल्यपरकता

मैंडेलबाम के अनुसार ऐतिहासिक न्याय मूल्यपरक होता है। अतः इसमें वस्तुनिष्ठता की तलाश करना उचित नहीं है। इतिहासकार सांस्कृतिक तथा व्यक्तिगत दृष्टिकोण से इतिहास की व्याख्या करता है। सामाजिक एवं सांस्कृति मूल्यों का स्वरूप स्थायी न होकर युगानुकूल परिवर्तनशील होता है। दासप्रथा उपनिवेशवाद के किसी युग में सामाजिक रूप से उपयोगी थी, परन्तु वर्तमान में उनकी सामाजिक उपयोगिता नहीं है। परिवर्तित सामाजिक मूल्य इतिहासकार को प्रभावित करते है। यदि क्रोचे, डिल्थे एवं मेनहीम के विचारों का अध्ययन किया जाय तो उनके इतिहास लेखन में मूल्यपरकता की भावना के प्रधान होने का संकेत प्राप्त होताहै। मैंडलबाम का मानना है कि ऐतिहासिक व्याख्याओं का आधार सांस्कृतिक मूल्यों की वैध मान्यताएँ होती है। ऐसी मान्यताएँ ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को प्रभावित करती है।

8.4.6 भावों की प्रधानता

इतिहास लेखन में अनेक बार तर्क की जगह भावों को प्रधानता प्राप्त हो जाती है। रांके ने लिखा है कि ''इतिहास लेखन में अंतश्चेतना का योगदान रहता है।'' यदि ऐसा है तो उसका भावप्रधान होना स्वाभाविक होता है। संभवतः इसी कारण रांके इतिहास लेखन को तथ्यपरक बनाना चाहते थे। इतिहासकार गूच ने भी उल्लेख किया है कि हाड़–मांस के बने लेखक के व्यक्तित्व कीपहचान उसके द्वारा लिखे गए साहित्य में होती है, जिसमें भावों की प्रधानता को अलग करके वस्तुनिष्ठ बनाना सम्भव नहीं होता। हेनरी पिरेन का भी मानना है कि इतिहासकार चाहे जितना निष्पक्ष हों, पूरी तरह से वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता क्योंकि उसको लिखने वाला अपने ही तरह के हाड़–मांस के बने मानव से संबंधित घटनाओं का वर्णन करता है।

8.4.7 विचारधारा का प्रभाव

आधुनिक युग की एक बड़ी समस्या इतिहासकार का विचारधारा से प्रभावित होना है। इतिहास के क्षेत्र में प्रचलित विचारधारा से प्रभावित मार्क्सवाद, राष्ट्रवाद, संरचनावाद आदि विचारधाराओं से प्रभावित होकर इतिहासकार अपनी मान्यताओं के अनुरूप तथ्य एकत्र करने लगता है। वह अपनी दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या करता है। ऐसे इतिहासकारें से वस्तुनिष्ठता की आशा नहीं की जा सकती।

8.4.8 व्यक्तिगत–पूर्वाग्रह

इतिहास लेखन में साक्ष्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परन्तु एक इतिहासकार द्वारा स्वीकृत सभी तथ्यों पर विश्वास करना उचित नहीं होता है। इतिहासकार के तथ्य उसके मस्तिष्क से छनकर इतिहास के पन्नों में अंकित होते है। ई.एच.कार के शब्दों में इतिहासकार के तथ्य हमें उतना ही ज्ञान देते है जितना दस्तावेज का लेखक हम तक पहुँचाना चाहता है। उल्लेखनीय है कि इतिहास का लेखक अपने समाज का दपर्ण भी होता है जिसका प्रभाव उसके लेखन पर पड़ता है। कार्ल बेकर के अनुसार इतिहास अतीत की घटनाओं का सर्वांगीण विवरण नहीं है, अपितु उस युग के इतिहासकार द्वारा अपनी आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराया गया विवरण है। विल्हण 'विक्रमांक देवचरित' में विक्रमादित्य षष्ठ के जीवन का सम्पूर्ण सत्य न प्रस्तुत करके चरित काव्य की सीमाओं में रहते हुए अपने आश्रयदाता का विवरण उपलब्ध कराता है। इस प्रकार ऐतिहासिक रचनाएं इतिहासकार के अपने समझे गए सत्य का विवरण होती है। हैजलेट के अनुसार ''कला, रुचि, वाणी में व्यक्ति की भावना की प्रधानता होती है, तर्क का नहीं। इतिहासकार की रचना भाव प्रधान होती है।'' इस प्रकार कहा जा सकता है कि इतिहासकार अपने समय की देन होता है। तथा उस पर तत्कालीन सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का भी प्रभाव होता है। इस प्रकार उसके वर्णन में व्यक्तिगत पूर्वाग्रह का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है।

8.5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता रखना एक जटिल समस्या है, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इतिहास का स्वरूप वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता। इसके लिए कुछ सावधानियों की आवश्यकता है। यदि सुविज्ञ इतिहासकार इन सावधानियों को बरते तो समाज विज्ञान की सीमाओं में रहकर इतिहासलेखन में वस्तुनिष्ठता लाई जा सकती है। इसके लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

8.5.1 इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता

इतिहास लेखन एक गंभीरकार्य है। इसमें उन्हीं व्यक्तियों को आना चाहिए, जिनकी इनमें विशेष रुचि हो। बटरफील्ड के अनुसार इतिहास में वस्तुनिष्ठता को समावेश से पहले, सामान्य इतिहास और शोध इतिहास के अंतर को समझना चाहिए। सामान्य इतिहास संक्षिप्त होता है, इसमें इतिहासकार को अपनी व्यक्तिगत धारणाओं को स्थापित करने के कम अवसर होते है। इस प्रकार का इतिहास वस्तुनिष्ठ हो सकता है। लेकिन शोध इतिहास में इतिहासकार को मनोनुकूल विषय एवं तथ्यों का चयन कर व्यक्तिगत एवं सामाजिक रुचि के अनुसार व्याख्या करने के अवसर होते है। ऐतिहासिक प्रस्तुतिकरण में वस्तुनिष्ठता की प्रतिस्थापना इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करता है। व्यक्तिगत योग्यता से ही वह चरितनायकों तथा घटनाओं का यथार्थ संबंध प्रस्तुत करता है। अतः इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश के लिए इतिहासकार की योग्यता पूर्णतया अपेक्षित है।

8.5.2 तथ्यप्रधान इतिहास लेखन

ऐतिहासिक तथ्य वस्तुनिष्ठ इतिहास के आधार है। बटरफील्ड ने स्पष्ट कहा है कि वस्तुनिष्ठता इतिहास की

वाणी है। निर्वैयक्तिक रूप से विचारणीय इतिहास मनुष्य को कुछ विशेष तथ्यों से अवगत कराता है। इससे स्पष्ट है कि इतिहास व्यक्तित्व प्रधान ने होकर तथ्यप्रधान होता है। वर्तमान समाज इतिहासकारों से तथ्य प्रधान ऐतिहासिक विवरण की अपेक्षा रखता है। तथ्यों को प्रधानता देकर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की रक्षा की जा सकती है। जी.एन. क्लार्क ने भी कहा है कि ''यह नहीं भूलना चाहिए कि इतिहास की वस्तुसामग्री तथ्य होते हैं। विवाद के कारण में छिपे हुए तथ्य ही अतीत संबंधी ज्ञान के आधार है।'' ऐक्टन ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि ''तथ्य स्वयमेव वस्तुनिष्ठ होता है। अतः ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए यथार्थ तथ्यों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है।'' वाल्श का मानना है कि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सिद्धान्त द्वारा नहीं अपितु अभ्यास द्वारा प्रतिष्ठापित की जा सकती है। इतिहासकारों में निष्पक्षता और मतैक्यता का होना असम्भव है। लेकिन वे तथ्यों को प्रधानता दे तो कुछ सहमति बन सकती है। वे कहते हैं कि ''एक घटना के प्रस्तुतीकरण में यदि इतिहासकार अतीत का सम्पूर्ण यथार्थ चित्रण नहीं प्रस्तुत कर सकता है तो उसे कम से कम यथार्थ तथ्यों का ही वर्णन करना चाहिए। यही यथार्थता इतिहास की वस्तुनिष्ठता है।''

8.5.3 व्यक्तिगत भावनाओं की अप्रधानता

इतिहासकारों ने इतिहास का अपने विचार के प्रचार का माध्यम बनाया है। इन लोगों ने तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर द्वेष तथा व्यक्तिगत भावनाओं को प्रधानता दी है। ऐसे इतिहासकारों की भर्त्सना होनी चाहिए। डेवी ने लिखा है कि ''बौद्धिक वस्तुनिष्ठता का तात्पर्य व्यक्तिगत तत्त्वों को इतिहास–प्रक्रिया से अलग रखना है जिसके माध्यम से निष्कर्ष प्राप्त होता है।'' वाल्श ने भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा है कि ''स्थान तथा व्यक्तियों के प्रति उदासीनता द्वारा इतिहास में वस्तुनिष्ठता का समावेश सम्भव है।'' इसी मत का समर्थन करते हुए गार्डिनर कहते हैं कि ''इतिहासकार को वस्तुनिष्ठता का परित्याग करके अपनी व्यक्तिगत रूचि के अनुसार इतिहास को अतिरंजित नहीं करना चाहिए।'' ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहासकार की व्याख्या में निहित होती है। व्याख्या–प्रधान का तात्पर्य यथार्थ तथ्यों पर आधारित ऐतिहासिक घटनाक्रम का प्रस्तुतिकरण है। जिन इतिहासकारों ने अतीत के पुनर्निर्माण को प्रचार का साधन माना है उन्हें इतिहासकारों की श्रेणी से बहिष्कृत करना चाहिए।

8.5.4 धार्मिक –नैतिक प्रभाव से मुक्त

सामान्यतः मनुष्य का धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। परन्तु एक इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि वह अपने को धार्मिक प्रभाव से मुक्त रखे। इतिहासकार समाज का प्रतिनिधि होता है। उसे सारे समाज का प्रतिनिधित्व करना चाहिए, न कि धर्म–प्रभावित समाज के एक छोटे वर्ग का। सम्पूर्ण समाज का यथार्थ चित्र उपस्थित करके ही इतिहासकार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को बनाए रख सकता है। इसी प्रकार इतिहास में नैतिकता आरोपित करने से वस्तुनिष्ठता प्रभावित होती है। घटना या व्यक्ति के सम्बन्ध में नैतिक न्याय देना इतिहासकार का कार्य नहीं है। यदि इतिहासकार नैतिक न्याय के अधिकार को प्राप्त करेगा तो वह धर्मगुरु या निरंकुश शासक की भांति व्यवहार करने लगेगा। बटरफील्ड ने कहा है कि ''इतिहासकार न्यायाधीश नहीं, अपितु समाजसेवकों का सेवक है।'' इतिहासकार इस अवधारणा से इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है। उसका प्रमुख कार्य अतीत के तथ्यों का सूक्ष्म विवेचन कर यथार्थ चित्र उपस्थित करना है।

8.5.5 ऐतिहासिक सिद्धान्तों एवं वादों से मुक्ति

ऐतिहासिक व्याख्या पर अनेक सिद्धान्तों एवं दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़ा है। समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, राष्ट्रवाद, मार्क्सवाद आदि सिद्धान्तों ने ऐतिहासिक व्याख्या तथा विश्लेषण को प्रभावित किया है। कुछ इतिहासकारों ने ऐतिहासिक सिद्धान्तों को ऐतिहासिक व्याख्या का बाधा नहीं माना है। लेकिन विभिन्न सिद्धान्तों के सूक्ष्म विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अनेक इतिहासकार एक ही तथ्य को अपने–अपने दृष्टिकोण से देखते है।

8.5.6 इतिहासकार द्वारा ऐतिहासिक अनुशासन व अन्य नियमों का पालन

वाल्श के अनुसार इतिहास का अपना अनुशासन तथा नियम है। इतिहासकार को उन ऐतिहासिक नियमों व अनुशासनों का पालन करना चाहिए जिनकों महान इतिहासकारों के लेखक में मान्यता मिली हो। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहास के अनुशासन का अंग है और निष्पक्षता इतिहास की आवश्यकता है। इतिहास के अनुशासन को जानने वालों का इतिहास लेखन का कार्य करना चाहिए। जी.पी. गूच ने लिखा है कि अतीत कालिक जीवन तथा आदर्शों को

समझाने के लिए हमें निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। क्योंकि अतीत कालिक जीवन तथा आदर्श से हमारा संबंध नहीं है। इसलिए उदारता तथा निष्पक्षता से उन्हें समझने का प्रयास करना चाहिए। रांके, ई.एच.कार, आर.पी कॉलिंगवुड आदि इतिहासकारों ने इतिहास लेखन के तत्वों पर विशद विमर्श प्रस्तुत किया है। वर्तमान के इतिहास लेखकों को उन विमर्शों का भी अध्ययन कर उनका अनुपालन करना चाहिए।

8.6 सारांश

इतिहास लेखन में वस्तुनिष्ठता को प्राप्त करना एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इतिहास लेखन में प्रयुक्त ऐतिहासिक तथ्य वस्तुनिष्ठता से प्राप्त किए गए होंगे, ऐसा माना जाता है। लेकिन इतिहास में वस्तुनिष्ठता तभी स्थापित होगी, जब उसके साक्ष्य निर्विवाद एंव सत्यता के साथ एकत्र किए गए होंगे। इसके साथ ही इतिहासकार को साक्ष्यों को एकत्र एवं व्याख्यायित करने में युगीन चश्मों का न्यूनतम प्रयोग किया होगा। प्राथमिक श्रोतों के चयन में भी इतिहासकार ने निष्पक्षता का प्रयोग किया होगा। प्राथमिक श्रोतों के चयन निष्पक्षता का प्रयोग ज्यादा मिलता है लेकिन कभी–कभी यहाँ भी कमी दिखाई देती है। यह कमी व्यक्तिगत पूर्वाग्रह की जगह परिश्रम के कमी पर ज्यादा निर्भर करती है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि हमें इतिहास में वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की तलाश नहीं करना चाहिए। इतिहास में हम मानव–मस्तिष्क तथा उससे उत्प्रेरित कार्यों का अध्ययन करते हैं। मनुष्य स्वयं अध्ययन का एक जटिल विषय है। वैज्ञानिक सामान्य तथा इतिहासकार विशेष का अध्ययन करता है। वैज्ञानिक प्रविधि में आस्थावान इतिहासकारों ने भी इतिहास में विज्ञान के समान वस्तुनिष्ठता का अनुमोदन नहीं किया है क्योंकि दोनों ही भिन्न–भिन्न पृष्ठभूमि तथा दशाओं में काम करते है। वाल्श का मानना है कि इतिहास में दो प्रधान तत्त्व होते हैं – इतिहासकार द्वारा प्रदत्त विषयनिष्ठ तत्त्व तथा साक्ष्य। इतिहासकार साक्ष्यों को प्रधानता देकर इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है, क्योंकि इतिहासकार का प्रत्येक वाक्य साक्ष्य पर आधारित होता है। मैंडलबाम का मानना है कि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहासकार की योग्यता पर आधारित होता है। वह किस प्रकार किसी घटना के नेतृत्वकर्त्ता तथा ऐतिहासिक घटना के सम्बन्ध को प्रस्तुत करता है। यह उसकी योग्यता एवं विशेषता पर आधारित होता है। उल्लेखनीय है कि इतिहासकार की योग्यता का विकास सिद्धान्त द्वारा नहीं, अपितु अभ्यास द्वारा सम्भव है। वाल्श का मानना है कि वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिकता, इतिहास की अंतश्श्चेतना में एक बुद्धिवादी विचारधारा का प्रवेश सुनिश्चित करती है। इस संबंध में रेनियर का मानना है कि इतिहास लेखन की आचार संहिता इतिहास में निहित रहती है, इतिहासकार में नहीं। कोई भी व्यक्ति इतिहास लेख का व्यवसाय चयन करने के लिए बाध्य नहीं है। जो भी व्यक्ति, इस कार्य को अपनाता है उन्हें इतिहास के अनुशासन को भी स्वीकार करना चाहिए। बौद्धिक निष्ठा के अभाव में इतिहास अपने वास्तविक स्वरूप को खोकर साहित्यिक रचना बन जाता है। इतिहास के नियम एवं अनुशासन इतिहासकार को हमेशा ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को अपनाने हेतु प्रेरित करते है। सर चार्ल्स ओमन का मानना है कि इतिहास–रचना लेखक को व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती है। इतिहासकार अपनी रचना निर्वैयक्तिक बनाने का प्रयास करते हुए कुछ कठोर तथ्यों को प्रधानता देकर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सुरक्षित रख सकता है। वर्तमान समय में इतिहासकारों का सबसे बड़ा दायित्व यही है कि इतिहास में यथासम्भव यथार्थ तथ्यों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग करें।

8.7 संदर्भ पुस्तकें

1. ई. श्रीधरन – इतिहास लेख (हिन्दी अनु., मनजीत सिंह सलूजा), हैदराबाद, 2020
2. गोविन्द चन्द्र पाण्डे (संपा) – इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
3. झारखण्डे चौबे – इतिहास दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013
4. बी.शेक अली – हिस्ट्री : इट्स थ्योरी एण्ड मेथड, मैकमिलन इण्डिया लि., नई दिल्ली, 2001

8.8 अभ्यास प्रश्न

1. वस्तुनिष्ठता से क्या तात्पर्य है? इसकी आवश्यकता के आधार बताइए।
2. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालिए।
3. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता प्राप्त करने के बिन्दुओं का विश्लेषण कीजिए।
4. ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
5. प्रमुख इतिहासकारों के मतों के आधार पर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को परिभाषित कीजिए।

इकाई 9 : ईसाई इतिहास–लेखन

इकाई की रूपरेखा

9.1–प्रस्तावना

9.2–उद्देश्य

9.3–ईसाई धर्म का प्रारम्भिक इतिहास

9.4–सन्त आगस्टाइन (संत आंगस्टीन)

9.5–ग्रेगरी (539–594 ई0)

9.6–वेनरेबल बीड

9.7–मठीय वृत्तान्त

9.8–इतिवृत्त

9.9–कैरोलिंगियन पुनर्जागरण एवं इतिहास लेखन

9.10–सारांश

9.11–सन्दर्भ पुस्तकें

9.12–अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तवाना

ईसाई इतिहास लेखन मुख्य रूप से ईसाई धर्म के विस्तार का इतिहास है। ईसाई धर्म संसार को ईश्वर की रचना मानता है। ईसाई धर्म की एक प्रमुख मान्यता यह है कि ईश्वर अपनी सृष्टि में स्वयं को प्रकाशित करता है एवं मनुष्य इसी संसार में इस परमतत्व की प्राप्ति करता है। ईसाई मान्यताओं को लोकप्रिय बनाने के लिए ईसाई धर्म गुरूओं ने मानवों के मध्य एक सांसारिक एवं पारलौकिक मान्यताओं का समन्वित जीवन दर्शन प्रस्तुत किया। इसमें ईसाई धर्म की प्रारम्भिक मान्यताओं को व्यवस्थित तरीके से संयोजित करके उसको मानने वालों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इसमें विधर्मियों के उन आरोपों का जवाब भी था जो ईसाई धर्म पर लगे थे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको प्राचीन काल में ईसाई धर्मावलम्बियों द्वारा लिखित ऐतिहासिक ग्रन्थों की विषयवस्तु, इतिहास लेखन के उनके उद्देश्य, ऐतिहासिक स्रोतों को एकत्र करने की विधि, ऐतिहासिक स्रोतों का विश्लेषण, उनके पूर्वाग्रह आदि से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे–

1. ईसाई इतिहास लेखन की परम्परा का ज्ञान,
2. ईसाई इतिहास लेखन की विशेषताएं,
3. ईसााई इतिहास लेखन में ईसाई धर्म ग्रन्थों का स्थान,
4. ईसाई इतिहास लेखन में पूर्वाग्रह
5. परवर्ती इतिहास लेखन पर ईसाई इतिहास लेखन का प्रभाव

9.3 ईसाई धर्म का प्रारम्भिक इतिहास

ईसाई या चर्च के इतिहास लेखन का मुख्य उद्देश्य एक सर्वव्यापी इतिहास का प्रस्तुतीकरण था। ईसाई धर्म की यह मान्यता थी कि संसार की उत्पत्ति के समय से ही ईसाइयत की यह नियति थी कि वह पूरी मानवता का धर्म बने। इस संबंध में ईसाई धर्मगुरूओं ने एक सर्वव्यापी इतिहास की अवधारण बनाने का प्रयत्न किया लेकिन इस हेतु

एक व्यवस्थित समय के इतिहास का निर्माण किया जाना आवश्यक था। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि प्राचीन यूरोपीय परम्पराओं में अनेक पंचांगों का प्रयोग हो रहा था। सर्वप्रथम इनका एकीकरण आवश्यक था। इस संदर्भ में सेक्सटस जूलियस अफ्रीकानस (180ई0–250ई0) का योगदान महत्वपूर्ण है। ये पहले ईसाई इतिहासकार थे जिन्होंने एक सार्वभौमिक कालक्रम तैयार किया। इन्होंने एशिया, मिश्र और इटली की यात्रा की थी, बाद में मुख्य रूप से फिलिस्तीन के एम्माँस में रहे, जहाँ उन्होंने प्रीफेक्ट के रूप में कार्य किया। लगभग 222 ई0 में उन्हें रोम में क्षेत्रीय राजदूत नामित किया गया। इनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य *क्रोनोग्राफिया* (221 ई0) तक का प्रकाशन था। इसमें उन्होंने मिश्र एवं चाल्डियन कालक्रम, बाइबिल की मान्यताएं, ग्रीक पौराणिक कथाओं, यहूदी मान्यताओं आदि को ध्यान में रखकर एक सार्वभौमिक कालसूची विकसित करने का प्रयत्न किया। इस सार्वभौमिक कालसूची में बाइबिल को स्थान मिलने से ईसाई धर्म की मान्यताओं को एक ठोस आधार प्राप्त हो गया। ईसाई इतिहास लेखन में दूसरा महत्वपूर्ण नाम सीजेरिया के यूसीबियस (260–340 ई0) का नाम आता है। ये फिलिस्तीन के सिजेरिया में रहते थे। वहाँ रोमन साम्राज्य का सबसे बड़ा ईसाई पुस्तकालय था। उन्होंने ईसाई धार्मिक व लौकिक मान्यताओं से संबंधित अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें *क्रोनोग्राफिया, एक्लेसियास्टिकल हिस्ट्री, लाइव्स ऑफ द मार्टियर्स ऑफ येरूशलम* और *लाइफ ऑफ कान्सटेंटाइन* महत्वपूर्ण है। यूसीबियस ने सेक्सटस जूलियस अफ्रीकानस के कार्य को आगे बढ़ाते हुए अपने *क्रोनोग्राफिया* में बाइबिल, मिस्त्री, असीरियाई, यूनानी और रोमन काल गणनाओं को पुर्नव्यवस्थित करने का कार्य किया। इस कालक्रम का मूल आधार *ओल्डटेस्टामेंट* है। वर्षों की गणना ईसाई 'सृष्टि' से की गई है और अंत में सभी तिथियों की गणना बाइबिल के कालानुक्रम के अनुरूप किया गया। इतिहास के आनुंषगिक विज्ञान के रूप में कालगणना की पहचान कर उस पर जोर देना ईसाई इतिहास लेखन की एक महत्वपूर्ण देन है। इसमें विभिन्न ईसाई समुदायों का कालक्रम के साथ विवरण दिया गया है। यूसीबियस ने कान्सटेटाइन के जीवनवृत्त को आधार बनाकर *लाइफ ऑफ कान्सटेंटाइन* नामक पुस्तक लिखी। इसमें कान्सटेटाइन के जीवनवृत्त को अलंकारिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उनके पुस्तक *लाइफ ऑफ मार्टियर्स* में ईसाई संतों के चमत्कारों एवं सामाजिक अवदानों पर प्रकाश डाला गया है।

यूसीबियस के इतिहास लेखन की एक विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक वस्तु को पूर्व निर्धारित मानते थे। उनका मानना था कि मूसा का विधान, ईसा मसीह के पूर्व की संस्कृति, ईसा मसीह का अवतरण आदि सब कुछ दैवी योजना की तैयारी के हिस्से थे। ईसाई धर्म की मान्यताओं को लोकप्रिय बनाने में यूसीबियस का अप्रतिम स्थान है। इसी कारण इन्हें चर्च के इतिहास का संस्थापक माना जाता है।

ईसाई इतिहास लेखन का अगला महत्वपूर्ण लेखक पॉलस ओरोसियस (380–420 ई0) है। यह संत आगस्टीन का शिष्य था। उसने संत आगस्टीन के सुझावों के आधार पर अपना विख्यात ग्रन्थ *सेवन बुक्स ऑफ हिस्ट्री अगेंस्ट पेगनिजम* लिखा। इसमें ईसाई धर्म के विरोधियों द्वारा ईसाई मत पर लगाए गए आरोपों का जवाब दिया गया है। उल्लेखनीय है कि रोम के पतन के लिए ईसाईयों का जिम्मेदार बताया गया था। ओरोसियस ने इन आरोपों को पूरी तरह से नकार दिया तथा यह स्थापित करने का प्रयत्न किया कि ईसाई धर्म ही मानवता की रक्षा कर सकता है। उसका मानना था कि मनुष्य की नियति ईसाई ईश्वर द्वारा नियंत्रित है। उसने प्रेरित किया कि बाइबिल की मान्यताओं का अनुसरण करते हुए जीवन बिताएं तो एक बेहतर लौकिक एवं पारलौकिक जीवन प्राप्त कर सकते है। ईसाई धर्म को लोकप्रिय बनाने में पॉलस ओरोसियस का महत्वपूर्ण स्थान है।

9.4 सन्त आगस्टाइन (संत आंगस्टीन) (354–430 ई0)

प्रारम्भिक ईसाई चर्च में संत आगस्टाइन का महानतम व्यक्तित्व था। वह पेगन थे, जिनके लिए ईसायत एक गहरी आत्म संतुष्टि या भावनात्मक संतुष्टि बनकर आई।आगस्टीन की दो कृतियां है, जो कि विश्व की क्लासिक ग्रन्थों में शामिल है।

कन्फेशंस– यह आगस्टीन की आत्मकथा है, यह काफी ईमानदारी और गंभीरता से लिखी गयी है, यह सीधे ईश्वर को संबोधित है। इस रचना से ज्ञात होता है कि उनकी धर्म, आस्था और ईश्वर में श्रद्धा की यह यात्रा आसान नही थी। इस पुस्तक में दार्शनिकता में डूबने तथा प्रबल भावनात्मक आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन किया है। *कन्फेंशस* में उन्होंने लिखा है, वह आरम्भ में पेगन थे, वह अपने पिछले पापों के कारण परेशान थे और वह जानते थे कि ईश्वर उन्हें सुन रहा है, अपने अर्न्तद्वंद के बाद वह ईसाई धर्म से प्रेरित हुए और एक विशप के रूप में कार्य करते हुए अपना संपूर्ण जीवन ईसाई धर्म को समर्पित कर दिया।

इनकी दूसरी रचना *डी सिविटाट डेई (सिटी ऑफ गॉड)* दुनिया की महानतम कृतियों में से है। यह ग्रन्थ

ईसाइयत की गाथा का एक प्रभावी दस्तावेज है। यह रचना 413–426 ई0 में बाईस भागों तथा 1200 पन्नों में लिखा गया। संत आगस्टीन ने 13 साल तक अपनी पुस्तक पर मेहनत किया। यह पुस्तक इस आरोप का खंडन करने के लिए लिखी गई कि अलारिक के अधीन गाँथ लोगो ने 410 ई0 में रोम का लूट लिया और उस पर कब्जा कर लिया, इस कहर के लिए पेगन ने ईसाईयत को जिम्मेदार माना। आगस्टीन ने लिखा कि रोम के हारने का कारण ईसाई धर्म नहीं था। इसी आरोप के खंडन में यह रचना लिखी थी। अपने नगर के साथ हुई बदसलूकी के लिए पेगन लोगों ने ईसाइयत को जिम्मेदार माना और कहा कि प्राचीन देवी–देवताओं के उपेक्षा के कारण उनको दंड मिला।आगस्टीन ने इसे अपने आस्था के प्रति चुनौती माना और अपनी पूरी ताकत रोमन जगत को यह समझाने में लगा दी कि ये आपदायें ईसाइयत के कारण नहीं बल्कि पिछले धर्म में किये गये गलत कर्मों के कारण हुई *है।डि सिविटाट डेई (सिटी ऑफ गॉड)* में आगस्टीन लिखा है कि–इतिहास में दो नगर होते है।

पहला सिविटाट डेई (ईश्वर का नगर) इस स्वर्गिक शहर की स्थापना फरिश्तों ने की थी। यह दैवीय प्रेम पर आधारित है, उसकी झलक पवित्र चर्च में दिखती है, जिसका काम स्वर्ग की झलक को धरती पर उतारना है।दूसरा सिविटाट टेरेना (मनुष्य का नगर) इसे हम धरती का शहर या राज्य कहते है। इसकी स्थापना शैतान के विद्रोह से हुई है, इस नगर का आधार भौतिक शक्ति है। यह मनुष्य की खुशियों और विवादों से जुड़ा है, जो गलत है। मनुष्य के शहर सीमित और अस्थायी है, जबकि ईश्वर का नगर असीम और स्थायी है। इतिहास में इनमे विभेद किया जा सकता है, किन्तु उन्हे स्पष्टः अलग नही किया जा सकता। इस पुस्तक के साथ ही पेगनवाद का अंत हुआ और दर्शन के रूप में ईसाइयत की शुरूआत हुई। यह पुस्तक कैथोलिक धर्म ज्ञान का आधार बनी। चर्च और राज्य के संबंध को परिभाषित करने का यह पहला प्रयास था। इस पुस्तक ने कैथोलिक इतिहास–लेखन को भी नियंत्रित किया।

आगस्टीन ने ऐतिहासिक प्रक्रिया का चित्रण अच्छाई–बुराई, देव–दानव, धर्मकेन्द्रित–धर्म निरपेक्ष राज्य के मध्य संघर्ष के रूप में किया। उसने इतिहास, पवित्र या निर्वाण इतिहास को एक दैविक योजना माना। ग्रीको–रोमन मानवतावादी विचार ने मनुष्य को अपने भाग्य का बुद्धिमान निर्माता माना जबकि ईसाई विचारधारा ने अपने आप को इंसानी कमियों पर आधारित करते हुए माना है कि मानवीय प्रयास या उपलब्धियों के पीछे ईश्वरीय कृपा निहित है। ईश्वर ही मानवीय क्रियाओं की योजना बनाता है और उन्हें लागू करवाता है। मानवीय क्रियायें अंधी होती है। ये अंधविश्वास उनके मूलभूत पात्र का नतीजा है। इंसानी मामलों में ईश्वर कों केंद्र में रखने वाले इतिहास के नजरिये को अलग–अलग तरह से पवित्र इतिहास, मुक्ति इतिहास या दैवीय इतिहास कहा गया। पूरे मध्यकाल में यूरोप इतिहास के इसी नजरिये से शासित रहा। हर्बट बटरफील्ड ने *डिक्शनरी ऑफ हिस्ट्री ऑफ आइडियाज* में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा कि संत आगस्टीन के लेखन में यूनानियों के इतिहास की चक्रीय विकास की अवधारणा का दृढ़ अस्वीकरण दिखाई पड़ता है। वह इसकी अनुमति नहीं दे सकता कि हर घटना अनंत काल तक खुद को दोहराती चली जाय। यह मान्यता ईसा के अवतरण को कठपुतली के तमाशे में बदल देती।

आधुनिक युग के प्रारम्भ में आत्म प्रकाशन करने वाले ईश्वर की अवधारणा धीरे–धीरे पृष्ठभूमि में चली गई किन्तु एक अर्थपूर्ण सार्वभौमिक वृत्त के रूप में ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया के स्वरूप की अवधारणा अवस्थित रही। वस्तुतः इतिहास के रूप में लिखित ईसाई ऐतिहासिक रचनाओं का जब यूनानी परंपरा में मेल हुआ तब इतिहास की आधुनिक शाखा अस्तित्व में आयी।ईसाई धर्म के उदय के बाद संत आगस्टीन प्रथम व्यक्ति थे, जिसने मानव इतिहास में सात विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। सेंट आगस्टीन के लेखन ने पश्चिमी ईसाइयत तथा पाश्चात्य दर्शन को प्रभावित किया।

9.5 ग्रेगरी (539–594 ई0)

ईसाई इतिहास लेखन अगले महत्वपूर्ण स्तम्भ **ग्रेगरी (539–594 ई0) या जिसे टूअर्स के ग्रेगरी** के रूप में जाना जाता है। यह फ्रैंक क्षेत्र में ईसाई धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। फ्रैंक क्षेत्र में रोमन, ईसाई एवं जर्मन तीनों ही तत्वों का मिश्रण था। ग्रेगरी की सबसे महत्वपूर्ण रचना *हिस्टोरिया रीगम फ्रैंकोरम (हिस्ट्री ऑफ द किंग्स ऑफ द फ्रैंक्स)* है। इस पुस्तक में यूरोप में ईसाई धर्म के विकास का अलंकारिक एवं चमत्कारपरक वर्णन है। ईसाई परम्पराओं से संबंधित आख्यानों के अध्ययन की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें चमत्कारों से संबंधित ईसाई कहानियाँ, ईसाई प्रतीकशास्त्र, प्राकृतिक भूगोल, ईसाई शहीदों की कहानियाँ, चर्च की बहसों के संवाद, कुलीन एवं पवित्र पुरूषों का जीवन वृत्त, बाइबिल की कथाओं के संदर्भ आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसमें ईसाई धर्म में शामिल सेंट मार्टिन के जीवन वृत्त को भी विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। गाल क्षेत्र के ईसाईकरण

को जानने का यह सबसे प्रमाणिक स्रोत है। *हिस्टोरिया रीगम फ्रैंकोरम* प्रारम्भिक फ्रैंकिश इतिहास का केंद्रीय स्रोत है, जो नवीन यूरोप में रोमन संस्कृति से प्रारम्भिक मध्ययुगीन काल तक के संक्रमण की अवधि का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसा माना जाता है कि यह रचना एक राज्य के रूप में फ्रैंक्स की उभरती सैन्य, राज्य एवं सांस्कृतिक शक्ति को स्वर देने का प्रयास था।

9.6 वेनरेबल बीड (673–735 ई0)

ये संत अगस्टीन के पश्चात ईसाई इतिहास लेखन के सबसे लोकप्रिय लेखक थे। इनके लेखन में धर्म ज्ञान, कालानुक्रम, व्याकरण, गणित, विज्ञान एवं इतिहास सभी का अंश मिलता है। इनका जन्म इंग्लैण्ड के जारो, नॉर्थम्ब्रिया में हुआ था। यह भाग उत्तरी इंग्लैण्ड का हिस्सा है जो उस समय लैटिन, अंग्रेजी और आइरिश संस्कृतियों का संगम था। बीड ने अत्यन्त ही ईमानदारी एवं पवित्रता के साथ जीवन बिताया। उनके लेखन में भी इस स्थिति की झलक मिलती है। अपने जीवनकाल के दौरान और पूरे मध्ययुग में बीड की प्रतिष्ठा, ईसाई धर्मग्रन्थों की व्याख्या एवं ईसाई कालक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिए विशेष रूप से है। उन्होंने ही घटनाओं के काल को ईसा मसीह के जन्म के समय से यानि ए.डी. (एनो डोमिनी) के साथ देखने की प्रथा को लोकप्रिय बनाया। बीड ने अपने लेखन में उस समय उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों का भरपूर उपयोग किया। उन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, रोम, जर्मनी आदि क्षेत्रों से ऐतिहासिक धार्मिक स्रोतों का संग्रह कराकर अपने लेखन में उनका उपयोग किया, जोकि उस युग की दृष्टि से अत्यन्त प्रगतिशील बात थी। उनकी मुख्य प्रसिद्धि का आधार उनकी ऐतिहासिक रचना '*हिस्टोरिया एक्लेसियास्टिकल (एक्लेसियास्टिकल हिस्ट्री ऑफ दी इंग्लिश नेशन)* है।

बीड ने कालक्रम से संबंधित समस्याओं को सरल करने हेतु विशेष प्रयत्न किया। चूंकि विभिन्न राजवंशों के राजाओं के शासनकाल से घटनाओं की तिथि निकालने की एंग्लो–सैक्सन विधि अत्यन्त जटिल थी अतः उन्होंने इसे ईसा मसीह के अवतरण तिथि से तय करने का प्रयत्न किया। कालान्तर में यही विधि सम्पूर्ण यूरोप एवं विश्व ने अपनाया। उन्होंने व्याकरण से संबंधित भी उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखे। बीड ने इसाई धर्म से संबंधित महान व्यक्तियों के जीवन वृत्त को भी लिखा है। इनके द्वारा लिखित कुथबर्ट एवं बेनेडिक्ट बिस्कॉप का जीवनवृत्त अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। उन्होंने कालक्रम के इतिहास पर एक ग्रन्थ *ऑन द रेकनिंग ऑफ टाइम* लिखा और सर्वव्यापी इतिहास पर भी एक ग्रन्थ लिखा। उनके योगदानों को देखते हुए उन्हें इंग्लिश इतिहास का जनक कहा जाता है।

9.7 मठीय वृत्तान्त

ईसाई इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण अंग ईसाई धार्मिक मठों के भीतर किया जाने वाला इतिहास लेखन है। इन वृतान्तों में कालक्रमानुसार वर्ष भर की घटनाएं संग्रहित की जाती थी। प्रत्येक वर्ष ईस्टर के समय मठ के प्रमुख का कार्य होता था कि आने वाले वर्ष का कैलेंडर बनाए जिसमें रविवारों, संतों के दिवसो तथा चर्च में मनाए जाने वाले बड़े उत्सवों का विवरण हो। अंग्रेजी मठों में 596 ई0 में आगस्टीन के आने के बाद यह परम्परा भी बन गई कि इन वार्षिक विवरणों में हाशियों और कभी–कभी पंक्तियों के मध्य सभी तरह की घटनाएं संक्षेप में उल्लिखित की जाए। धीरे–धीरे यह काल क्रमानुसार जानकारी विस्तृत होने लगी। इस तरह मठ के ये विवरण भावी पीढ़ियों के लिए तथ्यात्मक जानकारी छोड़ जाने लगे। इस अंग्रेजी प्रथा की नकल यूरोप मुख्य भूमि पर भी हुई। शार्लमा ने अंग्रेजी मठों के विवरण के ऐतिहासिक महत्व को पहचाना तथा यह व्यवस्था कर दी कि प्रत्येक मठ अपने समय की घटनाओं का वार्षिक अभिलेख रखे, विशेष रूप से अपने पड़ोस की घटनाओं का। इन मठीय वृतान्त का सबसे प्राचीन उदाहरण लिंडिसफार्न (532–593 ई0) का वृतान्त है। रिचर्ड होण्डेन (13वीं सदी) का *द एनल्स ऑफ इंग्लिश हिस्ट्री* इन मठीय वृतान्तों सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

9.8 इतिवृत्त

वृतान्तों से मिलती–जुलती एक अन्य इतिहास लेखन की विद्या इतिवृत्त आठवीं सदी के अन्त तक विकसित होती दिखती है। यह विशेष स्प से नॉर्थमब्रिया के विभिन्न स्थानीय मठों में संग्रहित किया गया। इन इतिवृत्तों में वार्षिक विवरणों के साथ ही उनके आस–पास घटने वाली घटनाओं को व्यवस्थित रूप से संगृहित किया जाता था। इनमें विशेष रूप महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं घटनाओं से संबंधी वृतान्तों पर जोर दिया जाता था। *नार्थमब्रियन क्रानिकल* इस तरह का पहला इतिवृत्त था जो वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिणी इंग्लैण्ड के मैनचेस्टर में

रचे गए कुछ वृतान्त *ऐंग्लो–सैक्सन क्रानिकल* नामक इतिवृत की रचना का आधार बने। यह इतिवृत्त नवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सगृहित किया गया था। इतिवृत्त लेखन की परम्परा तेरहवीं सदी तक चलती रही।

9.9 कैरोलिंगियन पुनर्जागरण एवं इतिहास लेखन

यूरोपियन सभ्यता के निर्माण में शार्लमां का महत्वपूर्ण स्थान है। वह केवल एक महान विजेता ही नहीं था बल्कि संस्कृति के अन्य पक्षों पर भी ध्यान देता था। साक्षरता के प्रसार के लिए उसने स्कूलों की संख्या में वृद्धि की तथा श्रेष्ठ विद्वानों को अपने दरबार में लाया। उसके दरबार में अलकुइन पॉल द लोम्बार्ड, थियोडुल्फ, एन्जिलबर्ट और आइनहार्ड जैसे विद्वान थे। 789 ई0 में उसने राजाज्ञा निकाली कि प्रत्येक मठ एवं गिरजाघर में एक स्कूल होना चाहिए। शार्लमां के शासन के अधीन स्कूलों एवं शिक्षा के इस पुनर्जीवन को कैरोलिंगियन पुनर्जागरण कहते है। इस कारण मठीय वृतान्तों की संख्या में भी वृद्धि हुई। इस समय का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार आइनहार्ड शार्लमां का सचित्र व जीवनीकार था। उसकी *वीटा केरोली (द लाइफ ऑफ शार्लमां)* इस फ्रैंक सम्राट के जीवन का वास्तविक चित्र उपस्थित करती है। उस युग का दूसरा महत्वपूर्ण इतिहासकार पॉल द डीकन या पॉल द लॉम्बार्ड था जिसने *हिस्ट्री ऑफ लाम्बार्डस* (774 ई0) लिखा। यह पुस्तक भी मध्ययुगीन ईसाई लेखन के सम्पूर्ण तत्वों को अपने में समेंटे हुए है। इस युग का एक अन्य महत्वपूर्ण इतिहासकार निथार्ड था। इसकी कृति फोर बुक्स ऑफ हिस्ट्री अपने स्पष्ट इतिहास लेखन के कारण अत्यन्त चर्चित रही। निथार्ड का चर्च से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसकी माँ बर्था शार्लमां की पुत्री थी तथा उसका पिता एंजिलबर्ट कैरोलिंगयन दरबार का राजनयिक था। अपनी जानकारी एवं नवीन दृष्टिकोण के कारण निथार्ड की कृति नवीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण कृति रही।

9.10 सारांश

ईसाई इतिहास लेखन ईसाई धर्म के विकास एवं प्रसार से विशेष रूप से संबंधित था। ईसाई धर्मावलम्बी इतिहास चिंतको की दृष्टि में ब्रह्माण्ड में होने वाली हर घटना में ईश्वर की योजना निहित होती है। ईसाई लेखकों का एक महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि तिथि परक घटनाओं के लिए ईसा मसीह के जन्म का प्रतिमान प्रस्तुत किया गया। सार्वभौमिक तिथिकरण के विकास में इस तथ्य का महत्वपूर्ण योगदान है। ईसाई इतिहास लेखन को मुख्य आधार प्रदान करने वालों में सेक्सटस जूलियस अफ्रिकानस, यूसीबियस, पॉलंस ओरोसियस, सेंट आगस्टीन, ग्रेगरी द टूअर्स, वेरनेबल बीड आदि उल्लेखनीय है।

9.12 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

9.11 अभ्यास प्रश्न

1. ईसाई इतिहास लेखन के विकास का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. ईसाई इतिहास लेखन के प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. ईसाई इतिहास लेखन में सेंट आगस्टीन के योगदान पर प्रकाश डालिए।

इकाई 10 : यूनानी–रोमन–इतिहास लेखन परम्परा

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 यूनानी इतिहास–लेखन एवं इतिहासकार

10.3.1 क्लासिक युग और यूनानी इतिहास–लेखन की प्रवृत्ति

10.3.2 हेरोडोटस

10.3.3 थ्यूसीडाइडीस

10.3.4 जिनोफोन

10.3.5 पोलीबियस

10.4 रोमन इतिहास–लेखन एवं इतिहासकार

10.4.1 फेबियस पिक्टर

10.4.2 केटो

10.4.3 लिवि

10.4.4 कार्नेलियस टैसीटस

10.5 यूनानी और रोमन इतिहासकारों में अन्तर

10.6 सारांश

10.7 सन्दर्भ पुस्तकें

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक समय के साथ–साथ इतिहास–लेखन की अवधारणाऐं सतत परिवर्तनशील रही हैं। देश, काल, परिस्थिति के साथ–साथ सामाजिक परिवेश इतिहास लेखन को प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि विभिन्न कालों का इतिहास अलग–अलग ही रहता है। इतिहास लेखन की परम्परा भी विभिन्न देशें में विभिन्न रही है। प्रायः प्रत्येक देश में प्राचीन काल में किसी न किसी रूप में इतिहास लिखा गया।

इतिहास के मुख्य रूप से दो स्वरूप प्रारम्भ में पाये जाते थे। प्रथम कथात्मक और दूसरा वैज्ञानिक। प्रथम में इतिहास के लेखन का स्वरूप मात्र एक कहानी रहा है परन्तु वैज्ञानिक अवधारणा के समर्थक इतिहासकार प्रत्येक घटना की विश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करके उसके स्वरूप को बदलने में सफल रहे हैं। पश्चिम में इतिहास लेखन का मुख्य आधार 'मानववाद' था। इतिहास के अन्तर्गत मानव के क्रिया–कलापों, उसकी उपलब्धियों एवं उत्थान–पतन का वर्णन स्पष्ट तौर पर किया जाता था। पश्चिम में इतिहास लेखन की दो महत्वपूर्ण परम्सायें विकसित हुई–

(i) यूनानी इतिहास–लेखन परम्परा

(ii) रोमन इतिहास–लेखन परम्परा

इनमें यूनानी इतिहास–लेखन परम्परा प्राचीनतर है और रोमन इतिहास–लेखन बहुत हद तक यूनानी इतिहास–लेखन परम्परा के प्रभाव से विकसित हुआ है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों के बारे में जानने योग्य हो जाऐंगे–

- यूनानी एवं रोमन इतिहास–लेखन एवं इतिहासकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- प्राचीन यूनानी एवं रोमन इतिहास लेखन परम्परा एवं चिन्तन के परिप्रेक्ष्य को समझ सकेंगे।
- रोमन और यूनानी इतिहासकारों के अन्तर को समझ सकेंगे।
- रोमन इतिहासकारों के यूनानियों की अपेक्षा कम वस्तुनिष्ठ और विश्लेषणात्मक होने के कारणों को जान सकेंगे।

10.3 यूनानी इतिहास–लेखन एवं इतिहासकार

आपके अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्राचीन इतिहास लेखन की यूनानी परम्परा को मोटे तौर पर तीन भागों में बाँटा गया है–

- सिकन्दर के पूर्व
- सिकन्दर के समकालीन
- सिकन्दर के पश्चात

सिकन्दर के पूर्व के काल को सामान्यतः पूर्व क्लासिकल युग कहा जाता है। छठी शताब्दी ई. पू. से लेकर सिकन्दर के काल तक के युग को क्लासिकल युग' की संज्ञा दी गई है। पूर्वक्लासिकल युग में ऐतिहासिक जानकारी देने वाली रचनाऐं साहित्यिक अभिरूचि और दर्शन से प्रभावित थी। प्राचीन यूनान में अतीत को संरक्षित करने के प्रयास साहित्यिक कृतियों में दृष्टिगोचर होते हैं। प्राचीन यूनानी अपने परिवार के पूर्वजों को आस्था और सम्मान प्रदान करते थे। इन्होने पूर्वजों की स्मृति और वंशावली को सहेजने के उद्देश्य से अपनी कृतियों की रचना की। साथ ही साथ इन कृतियों में तत्कालीन भूगोल एवं वातावरण से सम्बन्धित जानकारी का विवरण भी प्राप्त होता है।

यूनान में इतिहास लेखन का आरम्भिक स्वरूप वीरगाथा के रूप में दिखाई देता है। युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले वीरों की स्तुति में लिखे गए गीत अतीत का विवरण प्रस्तुत करने में आरम्भिक सफल प्रयास माने जा सकते हैं। यूनानी लोक–आख्यानों में इलियड, ओडिसी, एनियन मुख्य हैं, किन्तु होमर कृत *'इलियड'* का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक महत्व की प्रथम रचना 'होमर की कविताओं' के रूप में '*इलियड*' प्रस्तुत की गई, परन्तु इसके लेखक के सम्बन्ध में इतिहासकारों और विद्वानों में मतभेद है। हालांकि इलियड की विषयवस्तु यह प्रमाणित करती है कि कवि का सौन्दर्य के प्रति दृष्टिकोण उसकी जीवन्त बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

होमर के पश्चात दूसरा यूनानी विद्धान हेसियड को माना जाता है। हेसियड ने वीरों और देवताओं के आपसी सम्बन्धों को प्रदर्शित करने वाली रचनाऐं लिखीं। वीर पुरुषों के वंशों को देवताओं से जोड़ने वाली 'प्रवृत्ति उसकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती हैं। हेसियड की प्रमुख रचनाऐं हैं–*थियोगोनी, वर्क्स एंड डेज़, द शील्ड ऑफ हेराक्लीज*। यूनानी–इतिहास अवधारणा में हेसियड का 'युग–चक्र सिद्धान्त' सर्वथा महत्वपूर्ण है। उसने चार युगों की कल्पना की है और नामकरण चार धातुओं के नाम पर रखा है–

1. **स्वर्ण युग** –इस युग में क्रोनस का स्वर्ग में शासन था। मनुष्य स्वयं देवताओं के साथ रहता और जीवन–यापन करता था। पृथ्वी स्वंय ही उन्हें सभी श्रेयस्कर वस्तुऐं प्रदान करती थी।
2. **रजत युग** –यह दूसरा चरण था, जिसमें पूर्ववर्ती युग की अपेक्षा हीनतर अवस्था में पहुँच गया। धीरे–धीरे मनुष्य विनाश की ओर अग्रसर होता जा रहा है। इस युग में पारस्परिक संघर्ष में व्यस्त रहने के कारण देवताओं की आराधना के प्रति उदासीन होने लगा।
3. **कांस्य युग** –युग चक्रवादी अवधारणा का यह तृतीय चरण है। मानवीय गुणों एवं मूल्यों में उत्तरोत्तर ह्रास इस युग की विशेषता है। मनुष्य शक्तिशाली था परन्तु भाव से शून्य था। उसका भवन तथा अस्त्र–शस्त्र कांस्य

निर्मित थे। पारस्परिक झगड़े, कलह तथा संघर्ष इस युग की विशेषता रही है।

4. **लौह युग** –चक्र सिद्धान्त का अंतिम चरण है। इस युग के वीर पुरुष अपने पूर्वजों की तुलना में अधिक वीर और न्यायप्रिय थे। इस युग में ट्राय और थेनीज के युद्धों में वीर पुरुषों ने भाग लिया। वर्तमान कालिक लौह युग में श्रम तथा दुख से मानव समाज मुक्त नहीं था।

युगों के चक्रात्मक विकास का यह सिद्धान्त इस मानयता पर आधारित है कि जैसें रात–दिन, चन्द्रमा का उदयमान तथा क्षयमान पक्ष अथवा एक ऋतु के पश्चात् दूसरे का आगमन होता रहता है। इसी प्रकार सम्पूण्र ब्रह्माण्ड में भी परिवर्तन की चक्रात्मक प्रक्रिया चलती रहती है। वर्तमान नवीन ऐतिहासिक मान्यताओं के दृष्टिकोण से कालिंगवुड का विचार उचित प्रतीत होता है, जिसमें उन्होने हेसियड के इस युग–चक्रात्मक सिद्धान्त को 'अनैतिहासिक अवधारणा' माना है।

उपरोक्त रचनाओं को इतिहास की श्रेणी में रखा जाये या नहीं, इसका उत्तर यदि वर्तमान इतिहास–लेखन की मान्यताओं ओर विचारधाराओं के आलोक में दिया जाये तो कहा जा सकता है कि "उपयोगी होते हुए भी उन रचनाओं को इतिहास की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है। क्योंकि ये वास्तविक इतिहास की कसौटियों पर खरे नहीं उतरते। इन्हें आंशिक इतिहास एवं धर्ममूलक या मिथक की श्रेणी में रखा जाये तो अधिक समीचीन होगा।

10.3.1 क्लासिक युग और यूनानी इतिहास–लेखन की प्रवृत्ति

वास्तव में यूनान में इतिहास–लेखन का वास्तविक स्वरूप छठीं शताब्दी ईसा–पूर्व से प्रारम्भ हुआ। यूनान में यह बौद्धिक संक्रमण का काल था। छठी शताब्दी ई. पू. के यूनान के इस काल में काव्य के साथ–साथ गद्य का विकास होने लगा। उस काल में मिथकीय आख्यानों और धर्ममूलक कथाओं से हटकर कुछ ऐसा रचा गया, जिसे विद्वानों ने इतिहास की श्रेणी में रखा। उस युग के विद्वानों ने पूर्व में लिखे गये वर्णनों को अपना आधार न बनाकर खोज और आलोचना के माध्यम से इतिहास–लेखन की ओर कदम बढ़ाया। भूगोल, कालगणना, दर्शन तथा विज्ञान का चिन्तन आकार लेने लगा। समुद्री और व्यापारिक यात्राओं के कारण अन्य देशों की संस्कृतियों से समपर्क हुआ। परिणामस्वरूप नयी विकसित वैज्ञानिकता इतिहास–लेखन में परिलक्षित होने लगी। अतः अब पुरोहितों, न्यायाधीशों और उच्च अधिकारियों तालिकाओं, राजाओं की वंशावलियों, संधि–विग्रह के लेखें और रिकार्डों का संरक्षण प्रारम्भ हो गया। आयोनिया के बहुत से लेखक नगर–राज्यों, निगमों, जातियों, राजवंशों और मन्दिरों की उत्पत्ति की परम्पराओं और किवदन्तियों को सरल गद्य में लिपिबद्ध करने लगे। इन लेखकों में अकूसिलौस, कादमस, हिलेनिकस, हिकाटियस, दायोनियस, चारोन और फेरेसिदेस प्रमुख हैं। इन्हें सामूहिक रूप से लोगोग्राफी कहते हैं। इन लेखकों का लेखन सामयिक घटनाओं पर केन्द्रित रहता था।

लोगोग्राफी इतिहास लेखकों में सर्वप्रथम हिकाटियस का नाम आता है। यह हेरोडोटस का पूर्वगामी था। उसके द्वारा रचित प्रथम कृति *'ट्रैवेल्स अराउन्ड द वर्ल्ड* में अपनी फारस यात्रा का वर्णन है। उसकी द्वितीय कृति *'बुक ऑफ लोकल जीनीओलाजीज* में प्राचीन आख्यानों की आलोचना प्रस्तुत की गई है। हिकाटियस का इतिहास–लेखन दो प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित था– (i) यथार्थ (ii) पारम्परिक आख्यानों का आलोचनात्मक परीक्षण। हिकाटियस ने स्वयं कहा था – "मैं उसी चीज को लिखता हूँ जिसे मैं सत्य समझता हूँ क्योंकि यूनानियों की अनेक कहानियाँ है, जो मुझे हास्यस्पद लगती है।" वस्तुतः हिकाटियस की उक्त दोनों कृतियाँ मूलतः इतिहास के रूप में प्रतिस्थापित भले ही न हो पाई हों लेकिन इतिहास तत्व की रक्षा इनमें निहित है।

10.3.2 हेरोडोटस

हेरोडोटस एक महान भूगोलवेत्ता, घुमक्कड़ प्रवृत्ति वाला, अपने रीति–रिवाजों एवं संस्कृति से प्रेम करने वाला एवं पूर्वाग्रह रहित व्यक्त्वि का धनी व्यक्ति था। हेरोडोटस का जन्म एशिया माइनर के एक यूनानी बस्ती हालिकार्नेसस (वर्तमान में बोड्रम, टर्की में स्थित) में 484 ई. पू0 में एक कुलीन व्यापारी परिवार में हुआ था। यह क्षेत्र उस समय पर्शियन साम्राज्य का हिस्सा था।

हेरोडोटस ने 'हिस्ट्री' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया। इससे उसका अभिप्राय खोज एवं 'अनुसंधान था। हेरोडोटस की एक मात्र प्रसिद्ध रचना है–यूनान–पर्शियन युद्ध (449–474 ई. पू.) है, जिसे *'हिस्ट्री* कहा गया। हेरोडोटस के पूर्व किसी ने भी अतीत की घटनाओं से जुड़े कारण और परिणामों का इतने योजनाबद्ध ढंग से वर्णन नहीं किया था। हेरोडोटस के बाद सम्पादकों ने उसकी रचना '*Histories*' को 9 भागों में बाँट दिया, जिसका प्रत्येक भाग

कलाओं की देवियों में से किसी एक को समर्पित है। प्रथम पाँच भाग में पर्शियन साम्राज्य के उत्थान–पतन, वहाँ की भौगोलिक स्थिति, पर्शियनों की विजय, लोगों के रहन–सहन, रीति–रिवाजों का रोचक वर्णन है एवं अगले चार भागों में युद्ध का वर्णन है।

हेरोडोटस के अनुसार इतिहास के चार प्रमुख लक्षण हैं –

(i) यह वैज्ञानिक विद्या है अर्थात् इसकी पद्धति आलोचनात्मक है।

(ii) यह मानवीय विद्या है अर्थात् इसका उद्देश्य मानव कार्य–कलाप का अध्ययन करना है।

(iii) यह तर्कसंगत विद्या है अर्थात् इसके निष्कर्ष ओर तत्व साक्ष्यों पर आधारित होते हैं।

(vi) यह शिक्षाप्रद विद्या है अर्थात् इसका कार्य अतीत के आलोक में भविष्य की खोज करना है और मनुष्य को सद्मार्ग दिखाना है।

हेरोडोटस की आलोचनात्मक दृष्टि बड़ी गहरी व पैनी थी। उनका मानना था कि इतिहास में गति और प्रवाह है। साम्राज्य और सभ्यताएं उठती–गिरती रहती हैं। किसी संस्कृति का उत्कर्ष क्रमशः अपकर्ष में परिवर्तित हो जाता है। प्रत्येक तथ्य चरम सीमा पर पहुँच कर अपने विरोधी तथ्यों को जन्म देता है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत' उनकी कृति *Histories* के प्रत्येक पृष्ठ पर अमिट रूप में अंकित है। उनका मानना था कि प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को इसका ध्यान रखना चाहिए।

दूसरे–तीसरे व्यक्तियों से सुनी–सुनाई घटनाओं के बारे में लिखना। हैरोडोटस की शैली थी। जिज्ञासा व निरीक्षण की अपनी मेधा के बल पर वह यह जानने की कोशिश करता था कि घटनाऐं कैसे घटित हुई। यद्यपि उनके लेखन में प्रत्यक्षदर्शी अवलोकनों को महत्व दिया गया है। साथ ही जानकारियों के अन्य स्रोतों जैसे धार्मिक केन्द्रों, साक्षात्कारों, इतिवृत्तों, परम्पराओं और विभिन्न दस्तावेजों को भी भरपूर उपयोग किया गया है। हेरोडोटस को 'ऐतिहासिक गद्य–रचना' का भी जनक माना गया है। उसके वर्णन की विशेषता है–पक्षपातरहित और पूर्वाग्रह रहित वर्णन। ग्रीक लोगों की और विशेषकर एथेंसवासियों की विजयगाथओं का उत्सव मनाते हुए वह फारसियों और स्पार्टावासियों की वीरता को भी खुलेमन से स्वीकार करता है। उसका सम्पूर्ण लेखन 'दस्तानगोई' शैली में वर्णित है।

हेरोडोटस के इतिहास–लेखन में कोई दोष न हो ऐसा नहीं है। वह सुनी हुई बातों पर विश्वास कर लेता था। दरअसल, वह भाग्यवादी एवं ईश्वर वादी विचारधारा का पोषक था। उसका विश्वास था कि व्यक्ति का भाग्य उसके निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उसके अनुसार इतिहास की गति का आधार ईश्वर की इच्छा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हालांकि हेरोडोटस को मात्र अन्धविश्वासी मानते हुए उसकी उपेक्षा कर देना समीचीन नहीं है।

सिसरो ने हेरोडोटस को 'इतिहास का जनक' कहा है। शाटवेल उसे 'पर्सियन युद्धों का होमर' कहकर सम्बोधित करता है। कालिंगवुड ने हेरोडोटस के सम्पूर्ण कार्यों का विश्लेषण करते हुए उसे वैज्ञानिक–इतिहास का सृजनकर्ता' कहा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हैरोडोटस ने 'हिस्टरीज' के रूप में एक ऐसी मौलिक रचना की, जो न केवल यूनान अपितु सम्पूर्ण यूरोप में अद्वितीय है। यह अनेक शिथिलताओं एवं अशुद्धियों के बावजूद 550 से 479 ई. पू. के मध्य का न केवल यूनान का इतिहास अपितु पश्चिम एशिया और मिश्र का मौलिक इतिहास जानने का यह महत्वपूर्ण स्रोत है।

10.3.3 थ्यूसीडाइडीस

थ्यूसीडाइडीस का जन्म सम्भवतः 450 ई. पू. या उससे कुछ पूर्व हुआ। वह यूनानी इतिहासकारों में हेरोडोटस के बाद दूसरा महत्वपूर्ण विद्वान था। इतिहास के प्रति उसका दृष्टिकोण अपने पूर्वगामी हेरोडोटस से भिन्न था। उसने न केवल इतिहास को महाकाव्यात्मकता और अलौकिकवादिता से अलग किया अपितु उसमें विश्लेषणात्मक पद्धति को महत्व प्रदान करके गम्भीर एवं वर्णनात्मक इतिहास–लेखन को प्रारम्भ किया।

थ्यूसीडाइडीस के लेखन का मुख्य विषय *पेलोपोनेशियाई युद्ध का इतिहास (431–404 ई. पू.)* है। यह आठ भागों में है। अन्तिम भाग का लेखन 411 ई. के अभियान के बीच में अचानक रूक जाता है। 5 वीं सदी ई. पू. का पेलोपोनेशियन युद्ध एथेंस और स्पार्टा के बीच संघर्ष था, जो लगभग 30 वर्षों तक चला। इस युद्ध के आरम्भ से ही थ्यूसीडाइडस ने युद्ध से सम्बन्धित दिन–प्रतिदिन की घटनाओं को लिखना शुरू कर दिया था। यह ऐसा संघर्ष था,

जिसमें अधिकांश अन्य यूनानी राज्य भी एक–दूसरे के समर्थन में उलझ गये थे।

थ्यूसीआइडस ने अपने लेखन में कड़ी वैज्ञानिक पद्धति लागू की। वह मानता था कि ऐतिहासिक प्रक्रिया अतिप्राकृतिक और अतिमानवीय दोनों से अप्रभावित एक सामान्य तर्क–प्रयोज्य घटना है, इसीलिए उसे भविष्य वक्ताओं पर विश्वास न था और वह मिथकों, किंवदन्तियों, आश्चर्यो एव चमत्कारों के इतिहास–लेखन में प्रयोग के बिल्कुल विरोधी था। थ्यूसीडाइडस की तथ्यपरकता और स्रोतों की गहराई से जाँच–पडताल की प्रवृत्ति उसे 'इतिहास की वैज्ञानिक–पद्धति का जनक' स्थापित करती है। उसकी असरदार निष्पक्षता भावी इतिहासकारों के लिए उदाहरण है। वह अपने समय के एथेन्स और स्पार्टा की कथा बयान करते हुए दोनों में किसी के साथ अन्याय नहीं करता। अतीत की सही–सही जानकारी देने की इच्छा उसकी भाषा और शैली को प्रभावित करती है और इस दृष्टि से उसकी भाषा कर्कश, कृत्रिम सी प्रतीत होती है।

थ्यूसीडाइडस विश्लेषण की जो गहराई इतिहास–लेखन में लेकर आया उसका आधुनिक इतिहास चिन्तन पर स्थायी प्रभाव पड़ा। वह इतिहास प्रक्रिया का न केवल 'क्या' अपितु 'कैसे' और 'क्यों' भी जानना चाहता थां जबकि उसका पूर्वगामी हेरोडोटस अधिकांशतः पहले सवाल तक ही सीमित रहा। वह इतिहास लेखन में प्रयुक्त स्रोतों की गहरी जाँच करना चाहता था और सामाजिक मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के पीछे के इरादों और प्रक्रियाओं को तलाशना चाहता था। वह हिप्पोक्रतीस की मान्यताओं से प्रभावित था। थ्यूसीडाइडस के मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का लक्ष्य उन नियमों को निर्धारित करना था, जिनके अनुसार सामाजिक घटनाऐं गतिशील रहती हैं।

थ्यूसीडाइडस के लिए इतिहास एक जैविक प्रक्रिया है। वह एक–दूसरे से तार्किक, व्यवस्थित और स्थायी क्रम से जुड़ी घटनाओं का अध्ययन है। यही विचारधारा बीसवीं सदी में इतिहासवाद कहलायी। आधुनिक इतिहास–पद्धति, जो रचनात्मक तर्क पर आधारित है, उसका सबसे पहले उपयोग करने वाला थ्यूसीडाइडस ही था। उसके इतिहास–लेखन एवं ऐतिहासिक चिन्तन पर इतिहासकार जे. बी. बरी का कथन महत्वपूर्ण है, जिसमें वह कहता है कि –'यदि इतिहास को आज के मुकाम तक पहुँचाने मे किसी एक व्यक्ति द्वारा उठाया गया सबसे बड़ा कदम है, तो वह व्यक्ति थ्यूसीडाइडस ही है।' बिल ड्यूरा भी उसे युद्ध में डूबे रहने का दोष देने के बावजूद भी एक योग्य इतिहासकार मानते हुए कहते हैं कि 'उसमें सत्यनिष्ठा, निरीक्षण की पैनी नजर, निष्पक्ष दिमाग, एवं काम–चलाऊ भाषा–शैली का मिश्रण था।'

10.3.4 जिनोफोन

यूनानी इतिहासकार जिनोफोन ने इतिहास पर दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे–*हेलोनिका* और *एनेबेसिस।* ग्रन्थ 'हेलोनिका' में ई. पू. 411 से 363 ई. पू. तक की घटनाओं का वर्णन उपलब्ध है। जिनोफन ने इतिहास के अतिरिक्त दर्शन, अर्थशास्त्र, युद्ध–विद्या, कृषि–व्यापार, घुड़सवारी, इत्यादि पर भी ग्रन्थ लिखे हैं।

जिनोफन ने चरित्र–चित्रण की विधा और तत्कालीन घटनाओं की चित्रमय प्रस्तुति का अपने ग्रन्थ में समावेश करके अनुपम स्वरूप प्रदान किया है। उसके ग्रन्थों में स्पार्टा के गणतन्त्र का भी उल्लेख उपलब्ध होता है। जिनोफन इतिहास की उपयोगिता में विश्वास करता था, परन्तु उसके लेखन में सूक्ष्मता और निष्पक्षता का अभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। हालांकि जिनोफन ने ऐतिहासिक जीवनी लिखने की विधा का जो सूत्रपात किया उससे अन्य इतिहासकारों को प्रेरणा मिली। उसने यूनानी राजनीति के आर्थिक तत्वों को भी प्रस्तुत किया है। अतः यूनानी–इतिहास–लेखन में उसकी महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता।

10.3.5 पोलीबियस

हेलिनिस्टिक इतिहासकारों में पोलिबियस अग्रणी इतिहासकार था। वह इतिहास–लेखन की ग्रीको–रोमन परम्परा का प्रमुख प्रतिनिधि इतिहासकार था। उसका जन्म तो 198 ई. पू. यूनान के मोगालोपोलिस में हुआ था, किन्तु कालान्तर में 168 ई. पू. में एक युद्धबन्दी के रूप में वह रोम पहुँचा। रोम में निर्वासन की घटना पोलिबियस के जीवन में एक वरदान के रूप में सिद्ध हुई। उनका शेष जीवन अनुसन्धान और इतिहास–लेखन में लगा। उन्होंने चालीस खण्डों में रोम के संवैधानिक विकास का वर्णन किया। यूनानी और रोमन इतिहास–लेखन में पोलिबियस का दृष्टिकोण पूरी तरह से भेदभाव रहित था। उन्होंने हेल्लास के पतन एवं रोम के उत्थान का सुन्दर वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। पोलिबिसय रोम के नेतृत्व में विश्व के एकीकरण की भावना को लेकर बहुत उत्साही थे और इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने प्रसिद्ध ग्रन्थ '*आकमेनिकल हिस्ट्री* (विश्व इतिहास) की रचना की थी। इस ग्रंथ में 164 ई. पू. से 146 ई. पू.

तक रोम का इतिहास वर्णित है। इसमें उसने रोम के साथ–साथ पूर्ण निष्पक्षता से यूनान के इतिहास का भी वर्णन किया है।

इतिहास लेखन में यथार्थता पर विशेष बल देना पोलिबियस के इतिहासलेखन की सर्वप्रमुख विशेषता थी। वह सत्य को इतिहास की आँख मानता था एवं पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इतिहास लिखने पर बल देता था। वह इतिहास को विज्ञान के समतुल्य रखता था एवं उसने इतिहास–लेखन में एक सुनिश्चित प्रणाली का प्रयोग प्रारम्भ किया। पोलीबियस ने भाग्य के स्थान पर मानवीय इच्छा को अधिक महत्वपूर्ण माना। उसके अनुसार "ऐतिहासिक घटनाऐं मानवीय चरित्र एवं इच्छाओं के वशीभूत होकर घटित होती है।" वह यह भी मानता था कि प्रकृति के नियम के अनुसार उत्थान, विकास एवं पतन तथा अन्त का क्रम की इतिहास की गति को प्रभावित करता है। वह सुख एवं दुख के कारण भाग्य को न मानकर देश–काल तथा परिस्थितियों को मानता था। पोलिबियस की एक और मान्यता उसे इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है जिसके अनुसार उसने बताया कि अतीत का अध्ययन चरित्र सुधार के लिए आवश्यक है। अतः कह सकते है कि पोलिबियस के आलोचनात्मक इतिहास–लेखन में कालान्तर में रोमन इतिहासकारों को अत्यधिक प्रेरणा प्रदान की एवं इतिहास–लेखन को एक नई दिशा एवं अर्थ दिया। पोलिबियस की दुर्बलता उनकी भाषा और शैली है। उन्होंने गढ़ी–मढ़ी ऐटिक (यूनानी) भाषा का प्रयोग किया। उनकी शब्दावली पर दार्शनिक और वैज्ञानिक परिभाषाओं की दुरूहता की गहरी छाप है।

10.4 रोमन–इतिहास–लेखन

10.4.1 फेबियस पिक्टर

प्रारम्भिक रोमन इतिहासकारों ने इतिहास–लेखन में यूनानी भाषा का आश्रय लिया। फेबियस पिक्टर पहला रोमन इतिहासकार था जिसने एनियस के समय से अपना इतिहास–लेखन आरम्भ किया एवं रोमन जाति को यूनानी वीरों से सम्बन्धित किया। पिक्टर ने अपनी कृति 'इतिहास' की रचना अपने परिवार के अभिलेखागार में सुरक्षित सरकारी दस्तावेजों को आधार बनाकर की। उसका इतिहास–लेखन मुख्यतः कुलीन वर्ग की गाथाओं तक ही सीमित था। क्योंकि उस समय तक इतिहास को केवल बड़े और श्रेष्ठ लोगों की जीवन–गाथा का विवरण ही समझा जाता था। वस्तुतः उसके द्वारा लिखित इतिहास को कालान्तर में यूनानी और रोमन इतिहासकारों ने महत्वपूर्ण साक्ष्य के तौर पर प्रयोग किया।

10.4.2 केटो

केटो का काल 234 ई. पू. से 149 ई. पू. है। केटो को 'रोमन इतिहास–लेखन पद्धति का पिता' स्वीकार किया जाता है। केटो का ग्रन्थ *ऑरिजिंस (Origins)* रोमन इतिहास–लेखन के लिए क्रांतिकारी था। लेखक के जीवन को अन्तिम वर्ष (149 ई. पू.) तक को समाहित किए और सात भागों में रचित यह ग्रन्थ अधिकांशतः खो चुका है।

देशभक्ति की भावना भरने, नैतिकता सिखाने और युवाओं का चरित्र निर्माण करने जैसे इतिहास के शिक्षाप्रद उद्देश्यों में केटो की गहरी आस्था थी। उसके ग्रन्थ *ऑरिजिन्स* में नैतिक सोच–विचार और बुद्धिमत्तापूर्ण सूक्तियाँ इतनी हैं कि केटो की मृत्यु के बाद उसके उदाहरणों की श्रृंखला *'डिस्टिच'* नाम से अत्यधिक प्रसारित हुई।

केटो अपने इतिहास–लेखन में 'आम जन' को तरहीज देता था और मानता था कि रोम के युद्ध आम सैनिकों के साहस और वीरता के कारण जीते गये, जिसके लिए सेना के उच्च अधिकारियों को श्रेय देना अनुचित था। वह इतिहास के अध्ययन में भूगोल, कानून, रीति–रिवाज, भाषा, संस्था, धर्म, साहित्य, सभ्यता आदि का मूल्य भली–भाँति समझता था। उसका इतिहास–लेखन रोमन इतिहास–लेखन को युगान्तरकारी दिशा देता है। रोम का प्रथम महान इतिहासकार होने के कारण उसे एक नवीन लेखन–पद्धति का अधिष्ठाता भी स्वीकार किया जाता है।

10.4.3 लिवि

टाइटस लिवि न केवल एक प्रसिद्ध रोमन इतिहासकार था अपितु रोमन इतिहास–लेखन में वह एक महत्वपूर्ण स्थान भी रखता है। उसे रोम की महत्ता और विशालता में अटूट श्रद्धा थी। लिवि ने अपने ग्रन्थों को रोमन सम्राट ऑगस्टस के संरक्षण में पूर्ण की थी। लिवि ने "*History of Rome*" नामक ग्रन्थ में रोम नगर की स्थापना से लेकर अपने समय (753 ई. पू. से 9 ईसवी) तक का विवरण लिखा है। उसने कुल 142 पुस्तकें लिखी लेकिन आज केवल 35 पुस्तकें ही उपलब्ध हैं। ये 35 खण्ड वर्तमान में छः संस्करणों में उपलब्ध हैं। लिवि की मंशा रोमन जाति का सम्पूर्ण

इतिहास लिखने थी।

लिवि को इतिहास का विस्तृत ज्ञान था और उसका लेखन पर्याप्त स्पष्टता लिए हुए है। सभी रोमन इतिहासकारों की तरह लिवि ने अपने सामने एक नैतिक लक्ष्य रखा। वह मानता था कि इतिहास को नैतिकता की प्रेरणा देने, नागरिक गुण सिखाने और देशभक्ति प्रोत्साहित करने वाला होना चाहिए। वह अपनी इतिहास–लेखनी के माध्यम से रोम को महान बनाने वाले गुणों को रेखांकित करने निकला था। वे इतिहास को अलंकार शास्त्र का अंग मानते थे। इस पृष्ठभूमि में लिवि की शैली पुष्पित, सज्जित और प्रवाहमयी है। उनके इतिहास–लेखन में आलोचनाशील और वैचारिक अध्येता नहीं है साथ ही उन्होंने उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की जाँच ओर विश्लेषण भी नहीं किया है। उनका मानना था कि स्थितियों, कारणों और प्रक्रियाओं की परीक्षा नहीं होती।

लिवि की धारणा थी कि इतिहास 'मानववादी' होता है और इतिहासकार का कार्य मनुष्य की क्रियाओं का चित्रण करना मात्र है। वह अपने लेखन में भौतिक अनुसंधान या मौलिक पद्धति का दावा नहीं करता। उसके द्वारा लिखित 'रोम का इतिहास' रोचक होते हुए भी आलोचनात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं है। अपनी इतिहास–लेखन में क्षमता और कुशलता के कारण लिवि का स्थान रोमन युग के इतिहासकारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एकमात्र वह ही ऐसा रोमन इतिहासकार था, जिसके तत्कालीन शासक (आगस्टस) के साथ अत्यन्त निकटस्थ सम्बन्ध थे। लिवि में असाधारण साहित्यिक गुण है जिन्हें आज भी स्मरण किया जाता है।

10.4.4 कार्नेलियस टैसीटस

रोमन इतिहासकारों में कार्नेलियस टैसीटस एक महत्वपूर्ण नाम है। वह जाना–माना वक्ता था। उसका जन्म सम्भवतः उत्तरी इटली के एक कुलीन परिवार में 55 ई. में हुआ। विद्वानों ने उसे राम के 'थ्यूसीडाइडस' की संज्ञा दी है। 98 ई. में उसने '*एग्रीकोला* और *दि जर्मेनिया* नामक ग्रन्थों की रचना की। हालांकि जिन कृतियों के लिए टैसीटस की ख्याति है, उनमें दो महत्वपूर्ण है– *ऐनल्स* और *हिस्ट्रीज*। उसने अपनी रचनाऐं लैटिन भाषा में लिखी है। उसके लेखन में लिखित और मौखिक स्रोतों के अनियमित सन्दर्भ मिलते हैं, जिन्हे टैसीटस ने विभिन्न घटनाओं जैसे– युद्धों, षड़यंत्रों, सेनेट की कार्यवाहियों, निर्माण–गतिविधयों इत्यादि से चुना। उसकी विश्लेषणात्मक शक्ति अद्वितीय भी और वह तथ्यों एवं घटनाओं को विश्लेषण के बाद ही अपने ग्रन्थ में जगह देता था।

टैसीटस ने मुख्यतः लगभग 50 वर्षों के रोमन साम्राज्य के इतिहास का चित्रण किया है। उसके वृत्तान्त की खास बात यह है कि राजनैतिक व्यक्तियों से निकटता से जुड़े होने के कारण यह बताता है कि रोमन संभ्रान्त वर्ग में किसी भी स्तर में एकरूपता नहीं थी। अपने इतिहास–लेखन की दृष्टि के बारे में स्वयं टैसीटस ने लिखा है कि – "मेरा उद्देश्य घटना का विस्तार से वर्णन करना नहीं अपितु उन घटनाओं का वर्णन करना है जो अपनी बदनामी के लिए कुख्यात और अच्छे कार्यो के लिए सुप्रसिद्ध हैं। मैं उसे इतिहास का सर्वश्रेष्ठ कार्य मानता हूँ जिससे कि कोई अच्छा कार्य गुमनामी में न खो जाये और आने वाली पीढ़ियाँ बुरे शब्दों और कार्यो के बारे में अपनी धारणा बना सके।"

टैसीटस अपने लेखन को लेकर सचेत था। उसने अपने लेखन को शिक्षात्मक माना है। उसने इतिहास के काम के बारे में नैतिक दृष्टिकोण अपनाया। इसके अनुसार– इतिहासकार का मुख्य ध्येय मनुष्यों के कार्यो पर प्रतिक्रिया देना है जिससे कि अच्छे और बुरे कारनामों से भावी पीढ़ियों को आगाह करना है। अपने पूर्वाग्रह युक्त विचारों के कारण टैसीटस सम्राटों की हमेशा आलोचना करता है। उसने सम्राटों को 'मानव–राक्षस' तक कहा है। जबकि परवर्ती लेखकों ने उन्हीं सम्राटों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

टैसीटस की इतिहास–लेखन शैली प्रवक्ता के समान है। आस्था के प्रश्न पर वह सावधानीपूर्वक किन्तु दोहरा मापदण्ड अपनाता है। उसकी शैली स्पष्ट, सूक्तिपरक और चुटीली है। वह अपनी बातों को पात्रों के मुँह से कहलाता है। चरित्र और व्यक्तित्व चित्रण में वह माहिर था। उसके लेखन में रोम के पतन के काल का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। अपने इतिवृत्त में एक स्थान पर वह लिखता है कि – "मैं इतिहास के उस काल का विवरण दे रहा हूँ जो घोर संकटों से भरा है, अपने युद्धों से भयभीत है, जनसंघर्ष से ग्रस्त है और शान्ति के दौर में भी संत्रास से परिपूर्ण है।" चूंकि वह एक सतर्क और सचेत साहित्यकार था, अतः अपने विचारों और प्रस्तुतिकरण से उसने अपने लेखन को दमदार बना दिया। टैसीटस यूनानी–रोमन विश्लेषण की तकनीक से परिचित था और इस विधा पर उसको महारथ हासिल थी। कह सकते हैं कि बहुत ही योग्यता से लैटिन में रचे उसके ग्रन्थ पाठकों को आज भी प्रभावित करते हैं।

विद्वानों ने टैसीटस के इतिहास–लेखन पर अपने विचारों को इस रूप में रखा है कि "कुछ त्रुटियों को

नजरअंदाज कर दिया जाये तो टैसीटस का नाम विश्व के इतिहासकारों में अग्रणी पंक्ति में है। जिसका मूल कारण उसकी चरित्र–चित्रण की अद्‌भुत क्षमता ही नहीं अपितु इतिहास के प्रति उसका दृष्टिकोण है जिसके द्वारा वह लोगों के अच्छे व बुरे कार्यों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है।"

अनेक शिथिलताओं के बावजूद टैसीटस रोमन इतिहासकारों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वह एक तेज मस्तिष्क का महान विद्वान था। प्रथम उसने इतिहास के महान व्यक्तियों के उद्‌देश्यों को समझने का प्रयास किया और तत्पश्चात् उन्हें अपने इतिहास–लेखन का विषय बनाया। इसीलिए उसकी रचनाओं में विचारों और दार्शनिक पहलुओं की झलक दिखलाई पड़ती है।

10.5 यूनानी और रोमन इतिहास–लेखन की तुलना

यूनानियों की तुलना में रोमन इतिहास–लेखन की परम्परा का स्वरूप पिछड़ा हुआ है। उनके लेखन में यूनानी इतिहासकारों के समान न तो तीक्ष्णता और न ऐतिहासिक दृष्टि परिलक्षित होती है। इसीलिए आधुनिक इतिहासकारों ने रोमन इतिहास–लेखन को यूनानी इतिहास–लेखन की तुलना में कमतर आंका है। ऐसी धारणा है कि रोमन ऐतिहासिक चिन्तन मौलिक नहीं है, उन्होने साधारणतः उपने पूर्वगामी लेखकों के विचारों का ही समर्थन एवं अनुसरण किया है।

यूनानी और रोमन इतिहासकारों की तुलना निम्नलिखित रूपों में कर सकते हैं–

- यूनानी इतिहासकारों के लेखन का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत था और उन्होने मानव के प्रत्येक पक्ष पर अपना ऐतिहासिक दृष्टिपात किया है, जबकि रामन इतिहासकारों ने महत्वपूर्ण कुलीन तन्त्र से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया है।
- यूनानियों ने जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं पर इतिहास लेखन किया है किन्तु रोम के इतिहासकारों ने जन सामान्य के आधारभूत प्रश्नों पर अपनी लेखनी नही चलाई।
- यूनानी इतिहासकारों ने सत्य की खोज पर बल देते हुए उसकी विश्लेषणात्मक व्याख्या को महत्व दिया, जबकि रोमन विद्वानों ने घटना से सम्बन्धित कारणों पर अपना ध्यानाकर्षण नहीं किया है।
- यूनानी इतिहास–लेखकों ने अपने लेखन में 'मानववाद' की अवधारणा पर केन्द्रित रखा जबकि रोम के विद्वान केवल राजनैतिक व सैनिक घटनाओं के दायरे में ही इतिहास–लेखन करते रहे।
- यूनानियों का रचनात्मक नेतृत्व में विश्वास था, क्योंकि वे उस संस्कृति एवं साहित्यिक विकास में सहायक समझते थे परन्तु रोम का इतिहास–लेखन आत्मकथाओं एवं अधिकांशतः दरबारी इतिहास लेखन की तर्ज पर आधारित रहा। साथ ही उन्होंने साहित्यिक विकास के क्रम में संस्कृति की भूमिका को भी यथोचित महत्व प्रदान नहीं किया।

हालांकि निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उक्त कमियों और खूबियों के बावजूद यूनानी–रोमन इतिहासकारों ने अपने युग की परिस्थितियों व आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उद्‌देश्यपूर्ण इतिहास–लेखन की दिशा में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

10.6 सारांश

- मानव इतिहास विकास की प्रक्रिया पर आधारित है, जिसके कारण समय–समय पर मानवीय आवश्यकताओं और मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहा है। यही मूल कारण है कि भिन्न–भिन्न काल के विद्वानों और इतिहासकारों ने अपनी आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए इतिहास–लेखन किया।
- होमर का योगदान यूनानी लेखन में अद्वितीय है। हेसियड का इतिहास–लेखन मुख्यतः धर्म पर आधारित था, जिसने ईश्वर के जन्म और तत्कालीन यूनानी जनता का उसके प्रति व्यवहार पर अपनी लेखनी चलाई।
- हेरोडोटस को सच्चे अर्थों में 'इतिहास के जनक' की उपाधि प्रदान की जाती है क्योंकि उस क्षेत्र में उनका योगदान सर्वाधिक था। उन्होने सर्वप्रथम ऐतिहासिकता को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया। हेरोडोटस की लेखन

कला सुन्दर–स्पष्ट और प्रभावशाली है। साथ ही उसकी आलोचनात्मक दृष्टि अत्यन्त गहन एवं सूक्ष्म थी। हालांकि हेरोडोटस के लेखन में सबसे बड़ो दोष यह था कि वह सुनी हुई बातों एव कथाओं पर विश्वास कर लेता था।

- यूनानी इतिहासकारों के क्रम में दूसरा महत्वपूर्ण इतिहासकार थ्यूसीडाइडस था, जिसने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। एक इतिहासकार के रूप में उसने हेरोडोटस को भी पीछे छोड़ दिया।
- यूनानियों की तुलना में रोमन इतिहास–लेखन की परम्परा का स्वरूप पिछड़ा हुआ है। उनके लेखन में यूनानी इतिहासकारों के समान न तो तीक्ष्णता है और न ही ज्ञान। इसीलिए रोमन इतिहासकारों को यूनानी इतिहासकारों के समकक्ष नहीं रखा जा सका है।
- रोमन इतिहासकारों में फैबियस पिक्टर, केटो, लिवि एवं टैसीटस उल्लेखनीय थे।
- लिवि न केवल एक प्रसिद्ध रोमन इतिहासकार था, अपितु इतिहास–लेखन में वह एक महत्वपूर्ण स्थान रखता था। अपने समकालीन इतिहासकार टेसीटस की भाँति उसे भी क्रमशः रोम का हेरोडोटस और थ्यूसीडाइडस कहा जाता था।

दोनों देशों के इतिहासकारों ने अपने युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए उद्देश्यपूर्ण इतिहास की रचना हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किए।

10.7 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई.एच. कार, इतिहास क्या है (हिन्दी अनुवाद, अशोक चक्रधर),नई दिल्ली, 2006
- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- लाल बहादुर वर्मा, इतिहास : क्यों–क्या–कैसे।
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

10.8 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहास–लेखन की अवधारणा का हेरोडोटस के सन्दर्भ में वर्णन कीजिए।
2. थ्यूसीडाइडस की इतिहास–दृष्टि पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
3. रोमन इतिहास लेखक केटो की उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।
4. "लिवि रोम का एक प्रसिद्ध इतिहास–लेखक था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. यूनानी और रोमन इतिहास–लेखन की परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
6. टेसीटस का एक इतिहासकार के रूप में मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 11 : चीनी इतिहास–लेखन

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 चीन में इतिहास–लेखन परम्परा की उत्पत्ति

11.4 कन्फ्यूसियस

11.5 सुमा-चिएन

11.6 पान–कू

11.7 चीनी इतिहास लेखन की विशेषताएँ

11.8 सारांश

11.9 सन्दर्भ पुस्तकें

11.10 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य आपको चीनी इतिहास लेखन की परम्परा से अवगत कराना है। चीन में प्राचीन काल से ही इतिहास लेखन एवं अध्ययन का प्रमुख विषय था। प्राचीन चीनी इतिहास लेखन का विकास सभी प्रभावों से स्वतंत्र रहा। चीन समाज में पूर्व में घटित घटनाओं का विवरण संरक्षित रखना एक महत्वपूर्ण कार्य माना जाता था क्योंकि इतिहास लेखन का दैवी विधान के साथ संप्रेषण का एक तरीका माना जाता था। प्रत्येक चीनी पूजागृह में एक पंजीकार था जो कुलीन वंशों का विवरण, राजकीय कार्यों का विवरण एवं ज्योतिष संबंधी गणनाओं का कार्य करता था। शाही दरबार में इसी प्रकार के पंजीकार होते थे जिनकी शासन में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। कालान्तर में इन्ही सब व्यवस्थाओं के मध्य से चीनी इतिहास लेखन की विशिष्ट विद्या का जन्म हुआ।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों के बारें मे जानने के योग्य हो जाएंगे –

- चीनी इतिहास लेखन की परंपरा का ज्ञान
- चीनी इतिहास लेखन की विशेषताएँ
- चीनी इतिहास लेखन में कन्फ्यूशियस का योगदान
- चीनी इतिहास लेखन में सूमा–चिएन का योगदान
- चीनी इतिहास लेखन में पान–कू का योगदान

11.3 चीन में इतिहास–लेखन परम्परा की उत्पत्ति

चीन में इतिहास लेखन परम्परा का प्रारम्भ हनान् प्रान्त के आन्यांग राहर में पुरातात्त्विक अन्वेषण में प्राप्त हड्डियों पर उल्लिखित ऐतिहासिक विवरणों से माना जाता है। प्रत्येक हड्डी पर 10–15 से लेकर 100 तक अक्षर अंकित है। ये अधिकतर तत्कालीन शासक–परिवारों की विभिन्न गतिविधियों का उल्लेख करते है। इन हड्डियों में दैवीय शक्तियों के आह्वाहन के लिए भी अक्षर अंकित होते थे। कुछ समय बाद हड्डियों की जगह ताम्र–पंत्राकित लेख, बांस की पट्टियों और रेशम के कपड़ों पर भी प्राचीनतम इतिहास संबंधी विवरण लिखने की प्रथा का प्रारम्भ हुआ। प्राचीन चीन में विभिन्न प्रकार के लिखित विवरणों से क्रमबद्ध वंशानुगत इतिहास–लेखन का प्रयास पश्चिमी चौउकाल के अन्त

(841 ई. पू.) से प्रारम्भ हुआ। इन लिखित विवरणों में प्राचीन चीन के दर्शन, साहित्य एवं राजनैतिक विवरणों का उल्लेख मिलता है। इन विवरणों के आधार पर इतिहास–लेखन को एक शास्त्र के रूप में विकसित करने का श्रेय चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक व विचारक कन्फ्यूसियस को जाता है।

11.4 कन्फ्यूसियस (557–478 ई. पू.)

कन्फ्यूसियस के जीवन को जानने का आरम्भिक स्रोत सीमा कियान द्वारा रचित जीवनी ग्रन्थ *'रेकार्ड्स ऑफ द ग्रांड हिस्टोरियन'* को माना जाता है। कन्फ्यूसियस के मृत्यु के कई शताब्दी बाद रचित इस ग्रन्थ में कन्फ्यूसियस के जीवन–प्रसंगों को किंवदती के रूप में दिया गया है। यही वजह है कि इनके जीवन की घटनाओं के बारे में कल्पना और वास्तविकता को अलग कर पाना कठिन हो जाता है। माना जाता है कि कन्फ्यूसियस का जन्म ईसा पूर्व 551 में हुआ था। उनका जन्म लू प्रान्त में हुआ था जो वर्तमान में शानडोंग प्रान्त के कूफू नगर के पास का इलाका है। इनके पिता का नाम शूलियांग हे था। इनके पिता जीविका चलाने हेतु लू सरकार के किराए के सैनिक के रूप में कार्य करते थे। बचपन में पिता की मृत्यु हो जाने पर उनका पालन पोषण मातृ कुल में हुआ। उनके मातृकुल का वातावरण शिक्षा एवं साहित्य से परिपूर्ण था। बालक कन्फ्यूसियस पर भी इसका प्रभाव पड़ा और पुस्तकों की सहायता से उन्हें जीवन–निमार्ण करने की प्रेरणा मिली।

अतीत के प्रति श्रद्धा बढ़ाने एवं पूर्वजों द्वारा प्रस्तुत उदाहरण के प्रति सम्मान पैदा करने के लिए कन्फ्यूसियस ने इतिहास की महत्ता पर विशेष जोर दिया। उन्होंने अपने शिष्यों कों इतिहास, काव्य एवं नैतिक शिष्टाचार का ज्ञान देते थे। स्वलिखित एवं संपादित पाँच पुस्तकों (फाइव चिंग) प्राप्त होती है जिसमें शुचिंग और शी चिंग सबसे महत्त्वपूर्ण है। शु–चिंग अर्थात ऐतिहासिक दस्तावेज की पुस्तक की विषयवस्तु दो तत्वों पर आधारित है– राजवंशो के वृतांत और नैतिकता के उपदेश। इसमें राजकीय भाषणों, आदेश पत्रों, संस्मरणों, सामंती अभिलेखों आदि का संग्रह हैं। इसके जरिये कन्फ्यूसियस अपने शिष्यों को प्रारम्भिक शासनों की महत्वपूर्ण घटनाओं के जरिये प्रेरित करने की कोशिश करता है। कन्फ्यूसियस के अनुसार इसी युग में वीर एवं निःस्वार्थी नायकों ने चीन में एकता स्थापित करके उसे सभ्य बनाया। जैसे महान चीनी शासक याओ ने लंबे समय तक शासन करते हुए चीनी जनता को बहुत समृद्ध बनाया। *'शीचिंग'* कन्फ्यूसियस द्वारा संपादित कविता के पुस्तक के रूप में जानी जाती है। इसमें प्राचीन प्रार्थना, गीत और काव्यात्मक स्तुतियाँ है। इनका विषय वस्तु नैतिक आदर्शों एवं राजधर्म से संबद्ध है। कन्फ्यूसियस के अन्य पुस्तकों में भी धार्मिक आचारों, मानव कल्याण उपयोगी सूक्तो एवं शिक्षाओं का संग्रह है। किन्तु कन्फ्यूसियस को वास्तविक अर्थों में इतिहासकार नहीं माना जा सकता। क्योंकि वह अपने लेखन में नैतिकता और बुद्धिमानी को प्रोत्साहित करने के लिए काल्पनिक भाषणों एवं कहानियों को डाल देता था। वह जनश्रुति और इतिहास से संबंद्ध चुनी हुई कहानियों के जरिये अपने शिष्यों को प्रेरित करने वाला आदर्श शिक्षक था। लेकिन उसका इतिहास–लेखन में योगदान यह है कि इतिहास की प्रतिष्ठा को बढ़ाकर उसने उसके अध्ययन एवं लेखन को बढ़ावा दिया।

11.5 सुमा-चिएन

(147–87 ई. पू.) प्राचीन चीनी इतिहास लेखन का सबसे महत्वपूर्ण स्तम्भ सुमा–चिएन है। उसके पिता सुमा–तान चीनी सम्राट वू के दरबार में प्रतिष्ठित इतिहासकार था। वह राजकीय ज्योतिष का भी कार्य करते थे। इस कारण चीनी राजदरबार में सुमा–चिएन संपर्क बना हुआ था तथा वयस्क होने पर वह राजकीय कार्य में संलग्न हो गया। उसके पिता ने चीन का एक बृहद इतिहास लिखने की योजना बनाई लेकिन इसको पूर्ण करने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। अपने पिता के आरम्भ किए ऐतिहासिक लेखन कार्य का पूर्ण करने की जिम्मेदारी सुमा–चिएन पर आ गई। इस बीच कुछ गलतफहमियों के कारण चीनी शासक सुमा–चिएन से नाराज हो गया। उसके सामने मृत्यु दण्ड या बधियाकरण का प्रस्ताव रखा गया। अपने पिता के अधूरे कार्य को पूर्ण करने हेतु उसे बधियाकरण का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। उसने अत्यन्त परिश्रम प्राचीन चीन का इतिहास लिखा जो कि *शिह–ची* नाम से विख्यात हुआ। इस ग्रन्थ में जनश्रुतियों के येलो सम्राट से लेकर अपने समय तक के लगभग 3000 वर्षों के चीन का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यह 130 अध्यायों मे वर्णित है।

शिह–ची ग्रन्थ पाँच भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग 'पन शीर' मूल इतिहास या वर्ष वृतान्त कहा जाता है। इसमें चीनी सम्राटों के शासन काल की प्रमुख घटनाओं का विवरण है। दूसरा भाग 'प्याओ' तालिका कहा जाता है। इसमे हान वंश के पूर्व के विभिन्न छोटे–छोटे राज्यों की वंश तालिका दी गई है। तृतीय भाग में रीति–रिवाजो,

संगीत, पंचाग, ज्योतिष, गणना प्रणाली, त्योहार, जल स्रोत, आर्थिक जीवन के तत्व आदि पर विचार किया गया है। चतुर्थ भाग मे पूर्व हान काल के समाज के प्रसिद्ध परिवारों व वर्गों के कुलो का उल्लेख किया गया है। पाँचवा एवं अंतिम भाग प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनियाँ है।

अध्यायों का वर्गीकरण एक योजना के अन्तर्गत किया गया है जिसमें विषय सावधानी से और सोच–समझकर चुने गए है। यह ग्रन्थ मुख्यतः आख्यानों की एक श्रृंखला है जिसमें प्रसिद्ध व्यक्तियों एवं सम्राटों, तलवारबाजो, मनोरंजन करने वाले समूहों, प्राकृतिक पर्यावरण एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से संबंधित अद्‌भुत वर्णन है। यह ग्रन्थ वस्तुतः परिवर्तन का इतिहास है जिसमें लगभग 3000 वर्षों के काल विस्तार में विभिन्न राजवंशों के उपलब्धियों के अपने लक्ष्य का उद्‌घाटन करते हुए सुमा–चिएन कहते है कि वह अतीत के कार्य–व्यापारो एवं घटनाओं का परीक्षण एवं उनकी सफलताओं एवं असफलताओं, उनके उत्थान एवं पतन के पीछे स्थित सिद्धान्तों का अनुसंधान करना चाहते हैं। प्राचीनकाल के अन्य प्रमुख इतिहासकारो के समान उनकी कृति भी उपदेशात्मक से पूर्ण है। सुमा–चिएन ने सरकारी अभिलेखों का प्रयोग भी अपने ग्रन्थ में किया है। इसके साथ ही ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण, व्यक्तिगत रूप से बातचित करके आकड़ों का एकत्रण एवं अपनी व्यापक यात्राओं द्वारा भी जानकारी एकत्र कर इस ग्रन्थ में उपयोग किया है। लेकिन बाद के इतिहासकारों का मानना है कि सुमा–चिएन ने ऐतिहासिक घटनाओं के अंतर्निहित कारणों को जानने का विशेष प्रयास नहीं किया है। उसने घटनाओं के विवरण दर्ज करने पर ज्यादा जोर दिया है। वस्तुतः उस युग में संसार के विभिन्न देशों में विवरणात्मक इतिहास लेखन का जोर था। अतः तत्कालीन समय में कारणात्मक इतिहासलेखन की अपेक्षा करना उचित भी नहीं है। इन सीमितताओं के बावजूद सुमा–चिएन का प्रयास अपने युग से बहुत आगे का था। उनके इतिहास लेखन ने परवर्ती चीनी इतिहास लेखन को प्रभावित किया। उसने चीन में गद्यात्मक इतिहास लेखन की विधा का मार्ग तैयार किया। इनके द्वारा तैयार की गई इतिहास लेखन की विधि को अनेक परवर्ती चीनी इतिहास लेखको ने अपनाया।

11.6 पान–कू (32–92 ई.)

सुमा–चिएन के बाद प्राचीन चीनी इतिहास लेखन का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार पान–कू था। इसकी रचना *'हान् शू'* अर्थात *'हिस्ट्री ऑफ द फार्मर हान डाइनैस्टी'* प्राचीन चीनी इतिहास लेखन की महान रचना मानी जाती है। सुमा–चिएन की तरह ही इसने भी अपने पिता पान् प्याओं द्वारा प्रारम्भ किए गए हान वंश के इतिहास को पूर्ण करने के लिए इस ग्रन्थ का लेखन किया। पान–कू ने इस इतिहास ग्रन्थ को पूर्ण करने का कार्य व्यक्तिगत रूप से आरम्भ किया था। इसके लिए उसे राजद्रोह के आरोप में बंदी बनना पड़ा लेकिन बाद में उसे मुक्त कर दिया और आधिकारिक रूप ऐतिहासिक ग्रन्थ को पूर्ण करने की अनुमति दी गई। इसके साथ ही चीन में राजकीय इतिहास लेखन की परम्परा का आरम्भ हुआ। इसके पूर्व राजकीय अभिलेखागार का प्रमुख कार्य अभिलेख संरक्षण था। अब वहाँ इतिहास लेखन का कार्य भी किया जाने लगा।

पान–कू की रचना *'हान–शू'* सुमा–चिएन द्वारा लिखित ग्रन्थ *शिह–ची* की शैली पर ही लिखा गया था। लेकिन पान–कू ने सम्पूर्ण इतिहास लेखन की जगह राजवंश के इतिहास लेखन को मुख्य आधार बनाया। पान–कू का मुख्य उद्देश्य राजवंशों के उत्थान एवं पतन की गाथा को व्यक्त करना था। *शिह–ची* में जहाँ ऐतिहासिक निरन्तरता को प्रदर्शित किया गया था, वहीं हान–शू में चक्रीय इतिहास शैली को प्राथमिकता दी गई। पान–कू ने अपने ग्रन्थ में सामंत परिवारों के इतिहास खण्ड को हटा दिया क्योंकि उस समय तक चीन में साम्राज्यवादी शासन की स्थापना हो जाने के बाद सामंतो की प्रासंगिकता समाप्त हो गई। पान–कू का ग्रन्थ राजकीय विवरणों को औपचारिक एवं अलंकारिक तरीके से प्रस्तुत किया गया। पान–कू चीनी इतिहास लेखन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि इनकी परम्परा का अनुसरण करके परवर्ती राजवंशों से भी अपने पूवर्जों का इतिहास राजकीय स्तर पर तैयार कराना। जब कोई राजवंश समाप्त हो जाता तो उसके उत्तराधिकारी राजवंश के अन्तर्गत उसका विस्तृत विवरण लिखा जाता। पान–कू के आरम्भिक नमूने के आधार पर ऐसे मानक इतिहास लगभग दो हजार वर्षों तक लिखे गए।

11.7 चीनी इतिहास लेखन की विशेषताएँ

प्राचीन सभ्यताओं में होने वाले इतिहास लेखन की दृष्टि से रखा जाय तो प्राचीन चीनी इतिहासकारो ने इतिहास के क्षेत्र में मौलिक प्रतिभा को प्रस्तुत किया है। बहुत समय तक आधुनिक इतिहासकारों का इस पर ध्यान नही गया लेकिन चीनी ग्रन्थों के अंग्रेजी व अन्य भाषाओं में अनुवाद होने पर इनकी महत्ता का पता आधुनिक

इतिहासकारों को हुआ। प्राचीन चीनी इतिहासकारों ने सुव्यवस्थित तरीके से अपने पूर्वजों की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। यद्यपि चीनी इतिहासकारों में उपदेश देने की और आगामी पीढ़ियों को सचेत करने की उत्कट प्रवृत्ति रही है। लेकिन उनके उपदेशात्मकता में भी एक मौलिकता है। विशेषरूप से कन्फ्युसियस एवं सुमा–चिएन के लेखन से भविष्य की अनेक पीढियाँ मागदर्शन प्राप्त करती रही है। चीनी इतिहासकारों में अपने पूर्ववर्ती परम्पराओं की आलोचनात्मक ग्रहण शक्ति का भी ज्ञान होता है। चीन का राजकीय इतिहासकार अपने पूर्व के ग्रन्थों का ज्यों–की–त्यों नकल नही प्रस्तुत करता था बल्कि प्राचीन पीढ़ी की प्रमाणिकता की जाँच पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा विभिन्न समयों पर पुर्नप्रस्तुत पाठों की तुलना करके की जाती थी। इस तरह चीनी इतिहासकारों का एक प्रमुख कार्य जाली और प्रक्षिप्त अंशों को रेखांकित करना था। इस प्रकार की ऐतिहासिक पद्धति प्राचीन इतिहास लेखन के इतिहास में एक उत्कृष्ट पक्ष को व्यक्त करती है। चीनी इतिहास लेखन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि इनमे से प्रत्येक रचना किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर एक विभाग के सम्मिलित कार्य का फल है, अर्थात राज्य की ओर से इतिहासकारों का एक वर्ग यह कार्य करता था। चीनी इतिहासग्रन्थों की अन्य विशेषता यह थी कि ये एक संघटनात्मक कथानक–जीवनशैली में लिखे गए थे अर्थात संपूर्ण ग्रन्थ को तीन या चार विभागो में विभक्त किया गया है और ये सभी एक दूसरे के पूरक है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि चीनी समाज में प्राचीन अनुभवों के महत्व के अवबोध ने चीनी जनता को अपनी परम्पराओं के सुरक्षा के प्रति विशेष रूचि जाग्रत की। अनुभवों की व्यावहारिक उपादेयता को देखते हुए इतिहास लेखन को विशेष महत्व प्रदान किया गया। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि किसी भी पूर्व के देश और अधिकांश पश्चिमी देशों की तुलना प्राचीन चीन के इतिहास पर सर्वाधिक मूल स्रोत उपलब्ध है एवं चीनी इतिहास लेखन परम्परा विश्व की श्रेष्ठ परम्पराओं में से एक है।

11.8 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि चीनी समाज में अपने अतीत को सहेज कर रखने की विशिष्ट परंपरा प्राचीन काल से विकसित होने लगी। उनकी इतिहास लेखन की परंपरा में नैतिक मार्गदर्शन और ऐतिहासिक परंपरा को सहेजने का समन्वय दिखाई देता है। कन्फ्यूशियस की शिक्षाओं ने चीनी समाज में एक आदर्श राजनैतिक और सांस्कृतिक व्यवस्था की पृष्ठभूमि तैयार की। सूमा–चिएन, पान–कू एवं अन्य चीनी इतिहासकारों ने प्राचीन चीन में व्यवस्थित इतिहास लेखन की रूपरेखा तैयार करनी आरंभ कर दी। राजकीय स्तर पर भी इतिहास लिखने का कार्य आरंभ किया गया। इन सब ने मिलकर प्राचीन चीन में इतिहास लेखन की एक विशिष्ट प्रणाली को जन्म दिया।

11.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

11.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्राचीन चीनी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. प्राचीन चीनी इतिहास लेखन में कन्फ्यूसियस के योगदान का वर्णन कीजिए।
3. प्राचीन चीनी इतिहास लेखन में सुमा–चिएन के योगदान का वर्णन कीजिए।

इकाई 12 : इतिहास के आधुनिक दार्शनिक : हेगेल, मार्क्स, स्पेंगलर, टॉयन्बी, आर. जी. कॉलिंगवुड

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 जार्ज विल्हैल्म फ्रेड्रिक हेगेल

- 12.3.1 महत्वपूर्ण रचनाएं
- 12.3.2 विश्वात्मा का विचार
- 12.3.3 द्वन्द्वात्मक पद्धति
- 12.3.4 इतिहास दर्शन
- 12.3.5 राज्य का महिमामण्डन
- 12.3.6 विश्व इतिहास
- 12.3.7 विचारों की प्रधानता
- 12.3.8 मूल्यांकन

12.4 कार्ल मार्क्स

- 12.4.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या
- 12.4.2 उत्पादन प्रणाली के चरण
- 12.4.3 अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त
- 12.4.4 वर्ग–संघर्ष
- 12.4.5 क्रांति
- 12.4.6 मूल्यांकन

12.5 ओस्वाल्ड आर्नाल्ड स्पेंगलर

- 12.5.1 इतिहास दर्शन
- 12.5.2 संस्कृति की अवधारणा
- 12.5.3 संस्कृति के विकास की अवस्थाएं
- 12.5.4 संस्कृतियों का उत्थान और पतन

12.6 अर्नोल्ड जे टॉयन्बी

- 12.6.1 कृतियाँ
- 12.6.2 सभ्यताओं का वर्गीकरण
- 12.6.3 चुनौती एवं प्रत्युत्तर का सिद्धान्त
- 12.6.4 सृजनात्मक व्यक्तित्व और वर्ग

12.7.राबिन जार्ज कालिङ्गवुड

12.7.1 कालिंगवुड का इतिहास दर्शन

12.8 सारांश

12.9 सन्दर्भ पुस्तकें

12.10 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में यूरोपीय इतिहासकारों ने इतिहास लेखन की धारा को महत्वपूर्ण ढ़ंग से प्रभावित किया। इन इतिहासकारों के विचारधाराएं अनेक वादों से प्रभावित रही और उसी के अनुरूप इन लोगों ने इतिहास लेखन भी किया। आधुनिक इतिहासकारों की विचारधाराएं जिन प्रमुख वादों से प्रभावित रही, उनमें स्वच्छंदतावाद, प्रत्यक्षवाद, ऐतिहासिक भौतक वाद, विज्ञानवाद, ऐतिहासिक सापेक्षवाद, उत्तरआधुनिकता वाद आदि प्रमुख है। हीगल ने आदर्शवादी ऐतिहासिक सिद्धान्त का विकास किया। हीगल के ही कुछ प्रक्रियाओं को अपनाते हुए मार्क्स ने समाजवाद को वैज्ञानिक रुप प्रदान किया। दोनों विश्व युद्धों के दौरान एवं उसके बाद जिस तरीके से इतिहास लेखन में परिवर्तन आया, उसकी झलक स्पेंगलर, टॉयनबी और कॉलिंगवुड के इतिहास लेखन में मिलती है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों के बारें मे जानने के योग्य हो जाएंगे –

- इतिहास लेखन की विधा में आधुनिक इतिहास दार्शनिकों की भूमिका
- इतिहास लेखन की विधा में हीगेल का योगदान
- इतिहास लेखन की विधा में मार्क्स का योगदान एवं उसके सिद्धांतों का परवर्ती जगत पर प्रभाव
- इतिहास लेखन की विधा में स्पेङ्ग्लर का योगदान
- इतिहास लेखन की विधा में टायनबी का योगदान
- इतिहास लेखन की विधा में आर.जी. कॉलिंगवुड का योगदान

12.3 जार्ज विल्हैल्म फ्रेड्रिक हीगल (1770–1831)

जर्मनी के प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक एवं विचारक हीगल का जन्म 1770 ई0 में स्टटगार्ट नामक नगर में हुआ था। उनके पिता एक सरकारी कर्मचारी थे और वे हीगल को धार्मिक शिक्षा दिलाना चाहते थे। 18 वर्ष की आयु में ही हीगल ने स्टटगार्ट के 'ग्रामर स्कूल' में शिक्षा ग्रहण की। 1788 ई0 में उसने ट्यूबिनजन के विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र में डाक्टर की उपाधि प्राप्त ही। कालान्तर में उन्होंने यूनानी दर्शन के अध्ययन में रूचि दिखाई। अपना अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् हीगल ने स्विट्जरलैंड के बर्न नामक नगर में निजी शिक्षक के रूप में कार्य किया। लेकिन धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र में उनकी रूचि बनी रही। कालान्तर में उन्होंने अध्यापक के रूप में जेना, एरलानजन, बर्लिन एवं हीडलबर्ग विश्वविद्यालय के कार्य किया। 1830 ई0 में उन्हें बर्लिन में हैजा महामारी का प्रकोप हुआ और इसमें हीगल की भी मृत्यु हो गई।

12.3.1–महत्वपूर्ण रचनाएं

हीगल एक महान विचारक होने के साथ ही एक विद्वान लेखक भी थे। उसने दर्शन, इतिहास, राजनीति, अध्यात्म व कला आदि क्षेत्रों में लेखन कार्य किया। उनकी प्रथम महत्वपूर्ण रचना फिनोमिनोलॉजी ऑफ स्पिरिट (1807) है। इसमें उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक में सार्वभौमिक सत्य की खोज एवं विश्वात्मा के विचार आदि पर प्रकाश डाला गया है। उनकी दूसरी महत्वपूर्ण रचना 'साईंस ऑफ लॉजिक' है जिसमें उन्होंने द्वन्द्ववाद का क्रमबद्ध विश्लेषण किया है। अपनी पुस्तक 'फिलोसॉफी ऑफ राइट' में उन्होंने राजनीतिक सिद्धान्तों का व्यवस्थित निरुपण किया है। इस पुस्तक में उन्होंने स्वतंत्रता की अवधारणा पर विस्तार से विचार किया गया है। हीगल के इतिहास संबंधी विचारों का संग्रह 'फिलोसॉफी ऑफ हिस्ट्री' में मिलता है। इसमें वे सौन्दर्यशास्त्र पर भी

विचार प्रस्तुत करते है।

12.3.2–विश्वात्मा का विचार

हीगल के राजनैतिक एवं ऐतिहासिक चिंतन का आधार उनका विश्वात्मा का विचार है। हीगल इतिहास को विश्वात्मा की अभिव्यक्ति मानता है। हीगल के अनुसार संसार में दिखाई देने वाली सभी वस्तुओं का उद्‌भव विश्वात्मा के रूप में देखता है। हीगल की प्रसिद्ध कथन है कि ''जो कुछ वास्तविक है वह विवेकमय है और विवेकमय है वह वास्तविक है।'' उसने आत्मा को वास्तविक मानकर इसे शाश्वत तथा सर्वव्यापी व अपने आप में ही पूर्ण माना है। उसके अनुसार परिवर्तन नित्य विश्व प्रक्रिया का अंग है। आत्मा का अपनी सर्वोच्च अवस्था तक पहुँचने के लिए अनेक सोपानों को पार करना पड़ता है। हीगल के अनुसार विश्वात्मा के विकास का प्रारंभिक रुप भौतिक अथवा जड़ जगत है। मानव इसका उच्चतम रूप है। इस विकासक्रम में मानव की स्थिति सर्वोपरि है क्योंकि इसमें चेतना का अस्तित्व होता है। हीगल के अनुसार संसार की समस्त वस्तु अर्थात् सम्पूर्ण विश्व एक निश्चित विकासक्रम में संयोजित है तथा विश्वात्मा की ओर अग्रसर है। विश्वात्मा का विकास विभिन्न संस्थाओं के रूप में होता है, जिनमें राज्य का सर्वोच्च स्थान है क्योंकि यह अन्य सभी संस्थाओं का नियामक एवं रक्षक है। इसलिए राज्य पृथ्वी पर विश्वात्मा का प्रकटीकरण है।

12.3.3 –द्वन्द्वात्मक पद्धति

द्वन्द्ववाद हीगल के विचारों में केंद्रीय स्थान रखता है। यह ऐतिहासिक विकास को एक सुनिश्चित प्रक्रिया में होना सम्भव बनाता है। यूनानी दार्शनिक सुकरात, प्लेटो एवं अरस्तु के विचारों इस सिद्धान्त के बीज प्राप्त होते है। उनके अनुसार ऐतिहासिक विकासक्रम में तीन तत्व वाद (Thesis), विवाद (Antithesis), और संवाद (Synthesis) की भूमिका केंद्रीय होती है।

उनका मानना है कि प्रत्येक विचार और घटना दो परस्पर विरोधी तत्वों–वाद और प्रतिवाद के संघर्ष से उत्पन्न होती है। इन दोनों के सत्य तत्वों को ग्रहण करके एक नया रूप जन्म लेता है, जिसे संवाद कहा जाता है। यह वाद और विवाद दोनों से श्रेष्ठ होता है, क्योंकि इसमें दोनों के गुण अन्तर्निहित होते है। कालान्तर में यह वाद बना जाता है। वही प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है। इस प्रकार वाद, प्रतिवाद और संवाद की प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है। यह प्रक्रिया विकास को उच्चतर स्तर की ओर ले जाती है। इस प्रकार संसार का निरन्तर विकास हो रहा है।

12.3.4–इतिहास दर्शन

हीगल के इतिहास संबंधी विचार पूववर्ती विचारकों हर्डर, कांट, शिलर, फिंच तथा शेलिंग से प्रभावित थे। उन्होंने हर्डर से यह विचार ग्रहण किया था कि विश्व इतिहास ही मानव की आदिम काल से आज तक के विकास पद्धति की योजना प्रस्तुत करता है। हीगल कांट के इस विचार से सहमत थे कि इतिहास का मूल उद्देश्य मानव स्वतंत्रता का विकास है। सामाजिक जीवन में दिखने वाला सदाचारमय बौद्धिक चिंतन राज्य के उद्‌विकास एवं उसके अस्तित्व की सार्थकता को प्रदर्शित करता है। शेलिंग के विचारों से प्रभावित होकर हीगल लिखता है कि इतिहास दर्शन न सिर्फ मानवीय प्रणाली अपितु, ब्रह्मांडीय प्रणाली भी प्रदर्शित करता है। इस प्रणाली में संसार स्वयं को आत्मज्ञान की चेतना में अनुभूत करता है।

हीगल के अनुसार प्रकृति और इतिहास अलग–अलग मान्यताओं पर आधारित है। प्रकृति की प्रणालियां चक्रीय एवं पुनरावृत्तिमय हैं। दिन–रात का होना, मौसम का निश्चित अनुक्रम में बदलाव, आदि सुनिश्चित क्रम में पुनरावृत्ति करते है। इस चक्र को शासित करने वाले नियम सामान्यतः बदलते नहीं है। इतिहास की घटनाएं सामान्यतः पुनरावृत्ति नहीं करती, क्योंकि वह चक्रिय नहीं सर्पिल गतिमान होता है। यदि युद्ध या कोई अन्य घटना इतिहास में दोबारा घटती है, तो यह पुनरावृत्ति नहीं है, क्योंकि प्रत्येक नया युद्ध या नई घटना, नई परिस्थितियों में जन्म लेता है तथा उसके परिणाम भी भिन्न होते है।

12.3.5–राज्य का महिमामण्डन

हीगल के अनुसार ऐतिहासिक प्रक्रिया का कथ्य एवं व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना का विकास राज्य में ही सम्भव होता है। हीगल का मानना है कि इतिहास आदिकालीन जनजातीय जीवन की समस्त अपूर्णता से अधिक संपूर्ण

तर्कसंगत राज्य के विकास की यात्रा है। उसके अनुसार राज्य एक स्वाभाविक संगठन है। यह युग–युग के ऐतिहासिक विकास, सामुदायिक जीवन एवं परिवर्तित परिस्थितियों का परिणाम है। हीगल ने राज्य को एक ऐसी शक्ति के रूप में व्यक्त किया है जो राष्ट्रीय एकता को प्रकट करती है तथा राष्ट्रीय एकता को घरेलू और विदेशी क्षेत्र में प्रभावकारी रूप से लागू करती है। हीगल राज्य को व्यापक एवं संकीर्ण दोनों ही अवधारणाओं के संदर्भ में देखते है। व्यापक अर्थ में राज्य नैतिक समुदाय का एक रूप है जिसमें मनुष्य का पूर्ण विकास सम्भव है। संकीर्ण अर्थ राज्य को समुदाय का कानूनी एवं राजनीतिक ढांचा कहा जा सकता है। हीगल के अनुसार राज्य स्वयं एक साध्य है। यह व्यक्ति से उच्चतर है क्योंकि यह व्यक्ति का सर्वोच्च कर्त्तव्य राज्य का घटक बनना है। राज्य में मूर्तिमान स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति होती है। जब व्यक्ति सार्वभौमिक हितों में ही अपना हित देखने लगता है तथा राज्य की चेतना को अपनी सार्वभौमिक चेतना मानने लगता है, तब जाकर व्यक्ति का सर्वोच्च विकास सम्भव है।

12.3.6–विश्व इतिहास

हीगल के कांट और हर्डर के समान विश्व–इतिहास की प्रक्रिया का समर्थन किया है। उनके अनुसार इतिहास केवल घटनाओं का अन्वेषण एवं संकलन ही नहीं है, अपितु उनके भीतर अन्तर्निहित कार्य–करण की गवेषणा है। वास्तविक इतिहास में हम उस विकास प्रक्रिया को आंकलित कर सकते है जहाँ मानव के बर्बरता से सभ्यता तक की विकासगाथा संपन्न होती है। हीगल की मान्यता है कि विश्व शासन बुद्धि करती है इसलिए विश्व का इतिहास एक बुद्धिसंगत प्रक्रिया है। हीगल का यह विचार उसकी विश्व की दार्शनिक व्याख्या पर आधारित है। उनकी मान्यता के अनुसार विश्व इतिहास की मूल प्रवृत्ति मानव–स्वतंत्रता का विकास है। अन्य शब्दों में, हीगल यह मानते है कि इतिहास में मानव स्वतंत्रता के विकास की प्रवृत्ति होती है। इसमें वह मानव स्वतंत्रता का अर्थ 'नैतिक बुद्धि के प्रसार' से लगाते हैं जिसे हम स्वतंत्रता की चेतना भी कह सकते हैं, और इसे हीगल ने सामाजिक संबंधो का बाह्य रूप धारण करने वाला माना है। हीगल के अनुसार सामाजिक संबंध राष्ट्र के रूप में परिणत होते है, तथा राष्ट्र नैतिक बुद्धि की सर्वोच्च अभिव्यक्ति होता है। इस दृष्टि से इतिहास दर्शन का लक्ष्य राष्ट्र के विकास–क्रम की गवेषणा करना है।

12.3.7–विचारों की प्रधानता

हीगल ने इतिहास को केवल विचारों का विकास माना है और कहा है कि घटनाएं विचारों की बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं। अन्य शब्दों में, इतिहास मूल रूप से विचारों की संतति का वृतान्त है जिसमें मनुष्य पहले इच्छा करता है और फिर कर्म के रूप में अपने विचारों का अभिव्यक्त करता है। अर्थात् ये कर्म बुद्धि पर आश्रित होते है। हीगल बुद्धि एवं भावना में गहन अर्न्तसंबंध मानते है और मानते है कि बुद्धि प्रायः भावना को अपना उपकरण बना लेती है। बुद्धि कोई अमूर्त अव्यक्त तत्व नहीं है और इन्द्रियातीत दैवी शक्ति भी नहीं है।बल्कि यह मनुष्य की सामान्य मानसिक स्थिति है। हीगल का मानना है की इतिहास का स्वरूप बौद्धिक एवं तार्किक होता है। तार्किक प्रक्रिया के द्वन्द्वात्मक एवं विरोधात्मक होने के कारण इतिहास की प्रक्रिया भी इसी प्रकार द्वन्द्वात्मक एवं विरोधात्मक होती है।

12.3.8–मूल्यांकन –हीगल के विचारों ने परवर्ती चिंतन को बहुत प्रभावित किया। बिस्मार्क ने हीगल के राष्ट्रीयता के विचार के आधार पर ही जर्मनी को संगठित किया। मार्क्स ने भी हीगल के द्वन्द्ववादी प्रणाली को अपने चिंतन का आधार बनाया। उसने राष्ट्रीय हितों को व्यक्ति के हितों से प्राथमिकता देकर राष्ट्रवाद का प्रसार किया। उसके राष्ट्रवादी विचारों से फासीवाद और नाजीवाद ने भी व्यापक सामग्री ग्रहण किया।

12.4 कार्ल मार्क्स (1818–1883)

मार्क्स का जन्म जर्मनी में राइनलैंड के ट्रायर शहर में हुआ था और वे एक विधिवेत्ता के पुत्र थे। उन्होंने बर्लिन विश्वविद्यालय में कानून और विधिशास्त्र की पढ़ाई की किंतु इतिहास और दर्शनशास्त्र में भी उन्होंने गहरी रूचि ली। सन् 1841 में विश्वविद्यालय छोड़ने के बाद वे तत्कालीन आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के तीव्र आलोचक हो गए और शीघ्र ही उन्हें अपनी मातृभूमि को त्यागकर पहले फ्रांस फिर बेल्जियम और अंततः इंग्लैण्ड में शरण लेनी पड़ी। वे उन लोगों में से थे जिन्होंने फर्स्ट इंटरनेशनल (1864 ई.) की स्थापना की और उसके बाद समाजवादी आंदोलन के सबसे सशक्त व्यक्तित्व बन गए। मार्क्स के कठिन और उथल–पुथल भरे जीवन की दो अत्यन्त अनुकूल व सकारात्मक घटनाऐं थीं– 1843 में जेनी वॉन वेस्टफालेन से उनका विवाह और उसी वर्ष फ्रेडरिक एंगेल्स के साथ उनका परिचय। जेनी जीवन पर्यन्त एक निष्ठावान पत्नी बनी रहीं और उनके कार्य में समर्पित सहयोगी की भूमिका निभाई। एंगेल्स के साथ मार्क्स की मित्रता उनके जीवन और संघर्ष के दौरान अनमोल सिद्ध हुई। वस्तुतः उनका

पारस्परिक सहयोग इतिहास के सर्वाधिक रचनात्मक सहकार्यों में से एक था।

जीवन तथा इतिहास की भौतिकवादी धारणा की व्याख्या करने वाली प्रथम दो कृतियां द होली फैमिली (1845) और द जर्मन आइडियोलॉजी (1848) थी। ये दोनों पुस्तकें मार्क्स ने एंगेल्स के सहयोग से लिखीं। 1848 में 'द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' प्रकाशित हुई जो मार्क्सवाद के मूल तत्वों की पहली सुव्यवस्थित और संतुलित अभिव्यक्ति थी। यह भी मार्क्स और एंगेल्स द्वारा संयुक्त रूप से लिखी गई। मार्क्स की पुस्तक 'द क्रिटीक ऑफ पालिटिकल इकोनॉमी (1859)' एक उत्कृष्ट रचना है जिसके बारे में एंगेल्स ने बाद में लिखा, 'जिस प्रकार डार्विन ने जैविकीय प्रकृति के विकास के नियम की खोज की उसी तरह मार्क्स ने मानव इतिहास के विकास के नियम की खोज की।' दास केपिटल उनके जीवनकाल की सबसे महत्वपूर्ण रचना और वैज्ञानिक साम्यवाद की प्रधान कृति थी। जब मार्क्स का निधन हुआ तो एंगेल्स ने कहा 'मानवजाति एक मस्तिष्क से वंचित हो गई और वह भी एक ऐसे मस्तिष्क से जो हमारे समय का महानतम मस्तिष्क था।''

12.4.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त मार्क्सवाद का प्रमुख सिद्धान्त है। इस संबंध में मार्क्स एवं एंगल्स का मुख्य तर्क यह है कि आर्थिक शक्तियाँ ही लोगों के इतिहास का निर्माण करती है। इतिहास के प्रत्येक युग में समाज के आर्थिक संबंध पूरी समाज–व्यवस्था के निर्धारक होते है और राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक और बौद्धिक संबंध आर्थिक संबंधों की प्रतिछाया मात्र है। आर्थिक संबंधों का तात्पर्य उन संबंधों से है जिनसे बंधकर मनुष्य जीवन निर्वाह के साधन जुटाता है और अपनी भौतिक आवश्यकताएँ पूर्ण करता है। इनमें समाज की सारी आर्थिक गतिविधियां आ जाती है। उत्पादन, विनिमय और वितरण। समाज की विकास प्रक्रिया में वस्तुओं के उत्पादन, विनिमय तथा वितरण पद्धति की भूमिका सबसे प्रधान होती है। इनमें अन्य तत्त्वों जैसे कि साहित्य, विज्ञान, कला, संस्कृति, कानून और धर्म की भूमिका गौण होती है, क्योंकि इन सबमें भी आर्थिक तत्व का प्रभाव सबसे बढ़–चढ़ कर होता है।

नई आवश्यकताओं के कारण उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता है। सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया को मार्क्स द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर व्याख्यायित करते है। उल्लेखनीय है कि हीगेल ने भी द्वंद्वात्मक भौतिक आधार पर ही परिवर्तन को सम्भव माना है लेकिन हीगेल और मार्क्स के निष्कर्ष भिन्न है। हीगेल के अनुसार सृष्टि का मूलतत्व प्रत्यय है, अतः सामाजिक परिवर्तन का मूल स्त्रोत भी प्रत्यय ही है। हीगेल ने राष्ट्र राज्य को प्रत्यय के विकास की चरम परिणति माना है। इसके विपरीत मार्क्स ने भौतिक जगत या भौतिक तत्व को सृष्टि का मूल तत्त्व स्वीकार किया है और उसे सामाजिक परिवर्तन का मूल तत्व माना। उत्पादन प्रणाली के विकास में भौतिक तत्त्व का विकास प्रतिबिंबित होता है, इसलिए इसकी चरम परिणति सर्वगुण सम्पन्न उत्पादन प्रणाली के रूप में देखने को मिलेगी, जो केवल साम्यवादी समाज में सम्भव है। हीगेल के राष्ट्रराज्य के विपरीत साम्यवादी समाज, अंतराष्ट्रीय समाज होगा। इस तरह मार्क्स हीगेल की तर्क प्रक्रिया अपनाते हुए भी उसके विपरीत निष्कर्ष पर पहुंचें।

12.4.2–उत्पादन प्रणाली के चरण–

ऐतिहासिक विकास में उत्पादन प्रणाली के पाँच चरण स्वीकार किए है–

1. **आदिम–साम्यवादी प्रणाली**–उत्पादन के साधन इस अवस्था में बहुत अविकसित थे और मनुष्य अक्सर जंगली जानवरों का शिकार करके या मछलियां पकड़कर अपना जीवन–निर्वाह करते थे। उत्पादन सम्मिलित श्रम के आधार पर होता था और उत्पादन के साधन भी सबके साझे थे। निजी संपत्ति की अवधारणा अभी विकसित नहीं थी तथा शोषण भी अभी नहीं था। वस्तुतः यह अवस्था राज्य के उदय से पहले की सामाजिक अवस्था थी।

2. **दास प्रणाली** –निजी संपत्ति की अवधारणा विकसित हो गई थी और एक वर्ग उत्पादन के साधनों का स्वामी बन गया। उसने काम करने वालों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया और उसे दास बना दिया। शोषण की व्यवस्था का आरम्भ यही से हुआ।

3. **सामंती प्रणाली** –उत्पादन की इस अवस्था में मुख्य साधन भूमि थी और एक वर्ग भूमि का स्वामी बनकर किसानों से श्रम कराता था। यह प्रणाली दास अवस्था से भिन्न थी। इसमें किसान जमींदार की निजी संपत्ति नहीं था अर्थात् वह किसानों को गुलामों की तरह खरीद और बेंच नहीं सकता था।

4. **पूंजीवादी प्रणाली** –इस प्रणाली में मुख्यतः बड़ी–बड़ी मशीनों की सहायता से उत्पादन होता है। पूंजीपतियों का स्वामित्व उत्पादन के साधन पर होता है जो कारखाने के मालिक होते है। इस अवस्था में मजदूर अपने मालिक के व्यक्तिगत आश्रित नहीं होते बल्कि कहीं भी मजदूरी करने को स्वतंत्र होते है। परन्तु बाजार की स्थिति इस प्रकार की होती है कि मजदूर बहुत कम पारिश्रमिक के बदले अपना श्रम बेचने को विवश हो जाते हैं और उन्हें दरिद्रता का जीवन जीना पड़ता है। इस अवस्था में शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

5. **समाजवदी प्रणाली**–यह एक आदर्श अवस्था होगी जिसमें उत्पादन के सारे साधनों पर सामाजिक स्वामित्व स्थापित हो जाता है। इस सामाजिक अवस्था में सामाजिक संबंध श्रमिकों के सहयोग और परस्पर सहायता के होते है जिन्हें शोषण से मुक्ति मिल चुकी हो। मानव मात्र के लिए यह नई प्रणाली न केवल उत्पादन शक्तियों के विकास का पथ प्रशस्त करेगी बल्कि सामाजिक जीवन के अन्य सभी क्षेत्रों में भी प्रगति के असीम अवसर प्रदान करेगी।

12.4.3 –अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त

मार्क्स ने पूँजीवादी समाज में शोषण को स्पष्ट करने के लिए अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त को प्रस्तावित किया। यह सिद्धान्त आर्थिक तत्वों पर आधारित है। सामान का मूल्य इसके उत्पादन में लगे श्रम की मात्रा में आंका जाता है। श्रम भी एक समान है। उत्पादन के चार कारकों, श्रम, पूंजी, भूमि और संगठन में श्रम की केंद्रीय भूमिका है। इसके अभाव में अन्य कारक बेकार है। पूंजीवादी की रीढ़ इसी अतिरिक्त मूल्य पर आधारित होती है। श्रमिक जब किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो उसकी मजदूरी की अपेक्षा उस वस्तु को बहुत अधिक मूल्य पर बेचा जाता है जिसका लाभ पूँजीपतियों को मिलता है। इस व्यवस्था के आधार पर ही पूँजीपतियों की पूँजी में अत्यधिक वृद्धि होती है और श्रमिकों का आर्थिक शोषण होता है।

12.4.4–वर्गसंघर्ष

मार्क्स के अनुसार, अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। केवल प्रारम्भिक साम्यवादी चरण में वर्ग संघर्ष नहीं था। अन्य सभी ऐतिहासिक चरणों में प्रभावी एवं आश्रित वर्गों या सम्पत्ति वाले और सम्पत्तिहीन के बीच सक्रिय विरोध रहा है। यह सक्रिय विरोध वर्ग के विरोधभासों से पैदा होता है। पूरे इतिहास में प्रत्येक युग में दो विरोधी वर्ग रहे है। दास प्रथा में स्वामी और दास, सामंतवादी प्रथा में सामंत और किसान तथा पूँजीवादी प्रथा में बुर्जुआ और सर्वहारा का अस्तित्व रहा है। दास, किसान और सर्वहारा उत्पादन करते है, लेकिन उनके उत्पाद को उनके शोषकों अर्थात स्वामी, सामंत और बुर्जुआ वर्ग द्वारा ले लिया जाता है और उनके बदले उन्हें जीवन जीने भर के साधन प्राप्त होते है। उत्पादन के साधन पर स्वामित्व होने के कारण सम्पत्ति वाले वर्ग सम्पत्तिविहीन का शोषण करते है। यही वर्ग संघर्ष का मुख्य कारण है। प्रत्येक युग में विरोधी वर्ग के अन्तर्निहित विरोधाभासों को शोषित वर्ग का अन्त करके सुलझाया जा सकता है।

12.4.5–क्रांति

वर्ग संघर्ष क्रांति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। वर्ग संघर्ष समाज के भीतर चलता रहता है लेकिन उसका अंतिम रूप क्रांति समाज में प्रत्यक्ष रूप से घटित होता है। वर्ग संघर्ष लम्बे समय तक चलने वाली गतिविधि है, लेकिन क्रांति थोड़े समय के लिए तेजी से और हिंसात्मक होती है। सामंती प्रथा ने दास प्रथा को खत्म किया, पूँजीवादी प्रथा ने सांमतवाद को खत्म किया और सर्वहारा क्रांति पूँजीवाद का अंत करेगी। इस प्रकार किसी भी युग में सामाजिक परिवर्तन सदैव क्रांति के द्वारा किया जाता है।

12.4.6–मूल्यांकन

कार्ल मार्क्स के विचार एक प्रगतिशील परिवर्तन के वाहक बने। माकर्स के सिद्धान्तों को 19वीं तथा 20वीं सदी में जितनी लोकप्रियता मिली उतनी अन्य किसी विचारधारा को नहीं मिली हैं। आज भी विश्व में करोड़ों निर्धन, शोषित एवं पूंजीवाद से पीड़ित लोग मार्क्स को अपना संरक्षक मानते है। पूँजीवाद के दोषों को उजागर करके मार्क्स ने महान कार्य किया। वतर्मान समय की सरकारों के वंचितों के हितों में किए जा रहे कल्याणकारी कार्यों के मूल में मार्क्सवादी चेतना ही अन्तर्निहित है। अतः जब तक संसार में शोषण, निर्धनता एवं बेरोजगारी जैसी समस्याएं मौजूद रहेंगी तब तक मार्क्स के विचारों की उपयोगिता बनी रहेगी।

12.5 ओस्वाल्ड आर्नाल्ड स्पेंगलर (1880–1936 ई.)

ओस्वाल्ड आर्नाल्ड स्पेंगलर का जन्म 29 मई 1880 की जर्मनी के ब्लाकनवर्ग में हुआ था। उन्होंने हार्ले, बर्लिन व म्यूनिख के विश्वविद्यालयों से गणित व विज्ञान की शिक्षा पूर्ण की थी। किन्तु उनकी रूचि इतिहास एवं दर्शन में ज्यादा थी। एक इतिहासकार के रूप में बीसवीं शताब्दी के इतिहासदर्शन को उन्होंने महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया। स्पेंगलर ने प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इतिहास में संश्लेषण एवं उद्देश्य की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी रचनाओं में प्राथमिक श्रोतों के गहन विश्लेषण के दर्शन होते है। प्रथम विश्वयुद्ध की विनाशलीला ने स्पेंगलर को गहन रूप से प्रभावित किया। उन्होंनं अपनी रचना *'दि डिक्लाइन ऑफ दि वेस्ट'* में इतिहास के विकास के मौलिक स्थापनाओं के पुनर्विश्लेषण की आवश्यकता को रेखांकित किया है।

12.5.1–इतिहास दर्शन

स्पेंगलर का इतिहास लेखन एवं दर्शन का लक्ष्य मानव संस्कृतियों के उद्विकास को समझने का प्रयत्न है। उनका मानना है कि सभी संस्कृतियाँ, उत्थान और पतन के एक समान प्रक्रिया का अनुगमन करती है। स्पेंगलर का मानना रहा हे कि इतिहास को रेखीय पद्धति के आधर पर प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुकिन भाग में विभाजित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इतिहास की प्रवृत्ति वृत्तात्मक होती है न कि रेखीय। उनका यह मानना है कि यूरोप इतिहास का केंद्र स्थल नहीं है। वे अपने इतिहास लेखन को एक संस्कृति या एक देश तक सीमित न रखते हुए समग्र विश्व के विश्लेषण को अपने अध्ययन का आधार बनाते हैं।

12.5.2–संस्कृति की अवधारणा

स्पेंगलर के मतानुसार संस्कृति इतिहास के केंद्रबिन्दु होती है। वे संस्कृति को एक जीवन की तरह लेते है। इसकी अपनी आत्मा होती है जो अनेक प्रतीकों द्वारा व्यक्त होती है। स्पेंगलर ने संस्कृतियों को उच्चतम जीवन का सार माना है। उनके अनुसार अपने निश्चित जीवन–क्रम को पूर्ण करने के अतिरिक्त संस्कृतियों का कोई उद्देश्य नहीं होता और उनकी जीवन–लीला से ही इतिहास की प्रक्रिया चलती है। ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य, राजनीति, आचार, भाषा, संबंध, नियम आदि सभी मानव क्रिया–कलाप इसकी आत्मा के प्रतीक होते हैं। स्पेंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति स्वयं में एक सम्पूर्ण विश्व है, विशिष्ट अविभाज्य तथा अद्वितीय। उन्होंने संस्कृति की कल्पना एक अवयवी के रूप में किया है, जो अपने समस्त अवयवों को व्याप्त करता है। वे इस अवयवी को संस्कृति की आत्मा कहते है।

स्पेंगलर का मानना है कि विश्व की प्रमुख आठ संस्कृतियाँ है – मिश्र की संस्कृति, बेबिलोनिया की संस्कृति, भारतीय संस्कृति, चीनी संस्कृति, यूनानी–रोमन संस्कृति, अरबी संस्कृति, मेक्सिको की संस्कृति एवं आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति। प्रत्येक संस्कृति अपनी मौलिक अभिव्यक्ति के तरीकों एवं मुख्य प्रतीक से जानी जाती है। स्पेंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति अनन्य होती है। संस्कृति की अनन्यता का आधार उसका मुख्य प्रतीक होता है। यह मुख्य प्रतीक ही उसकी संस्कृतिक चेतना निर्धारित करता है। मिश्र की संस्कृति का मुख्य प्रतीक 'पत्थर', चीनी संस्कृति का मुख्य प्रतीक 'ताओ मार्ग', भारतीय संस्कृति का मुख्य प्रतीक 'निर्वाण की संस्कृति' और यूनानी संस्कृति का मुख्य प्रतीक सौन्दर्य की अवधारणा है।

स्पेंगलर का मानना है कि मुख्य प्रतीक संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को व्याप्त करता है। यह संस्कृति के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन व संस्थाओं में अभिव्यक्त होता है। यही संस्कृति को एकता एवं व्यक्तित्व प्रदान करता है।

12.5.3–संस्कृति के विकास की अवस्थाएं

स्पेंगलर के अनुसार संस्कृतियाँ, समावयवी किन्तु परस्पर पूर्णतया पृथक, स्वायत्त व स्वावलम्बी इकाईयाँ है। जिनका जीवनकाल हजार वर्ष का होता है तथा ये विकास एवं क्षय की समान अवस्थाओं से गुजरती है। प्रत्येक संस्कृति युवावस्था, प्रौढ़ता, वृद्धावस्था से गुजरते हुए मृत्यु को प्राप्त करती है। स्पेंगलर ने संस्कृति के विकास तथा अवसान की इन अवस्थाओं की तुलना ऋतुओं के चक्र बसन्त, ग्रीष्म, पतझड़ और शीतकाल से भी करते है। जन्म से वृद्धावस्था तक अथवा बसन्त से शीतकाल तक की यात्रा के उपरान्त संस्कृति की मृत्यु हो जाती है। संस्कृति के शीतकाल को स्पेंगलर 'सभ्यता' का काल कहते है। संस्कृति का आरम्भ 'बसन्त' काल के साथ होता है। यह संस्कृति की शैशवास्था है। इस चरण में आर्थिक जीवन कृषि प्रधान होता है। गढ तथा मंदिर, ग्रामीण परिवेश में दिखने लगते

है, नगर की स्थापना के साथ–साथ शासक व पुरोहित वर्ग का उदय होता है। भारत में वैदिक संहिताओं का युग तथा यूनान में ओलम्पिक देवाओं का युग है। यह चरण 300 वर्षो तक चलता है। संस्कृति का दूसरा चरण ग्रीष्म काल के रूप में वर्णित है। इसका काल नगरों के उदय के साथ होता है। धीरे–धीरे सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया ग्राम से नगर की तरफ स्थानान्तरित होती है। यह महान कलाकारों का युग है। संस्कृति का यह चरण अन्वेषण और वैज्ञानिक चिंतन के लिए भी जाना जाता है। संस्कृति का तृतीय चरण पतझड़ के समतुल्य है। इसमें ग्रीष्म की प्रवृत्तियां परिपक्व होती है। क्लान्ति और उदासी के लक्षण प्रकट होने लगते है। नगरीय मूल्य ग्रामीण मूल्यों का स्थान लेने लगते है। नगर ग्रामीण जीवन का शोषण करने लगता है। सामंती तंत्रों के स्थान पर निरंकुश राजतंत्रों की स्थापना होती है। इस चरण में एक ओर तो कला, विज्ञान और दर्शन के क्षेत्रों में पूर्णतया परिपक्व हो चुकी शैली की उत्कृष्टतम कृतियों की रचना होती है, किन्तु साथ ही आलोचना और विनाश की विषम प्रवृत्ति भी प्रबल होन लगती है। संस्कृति की अंतिम अवस्था 'शीत ऋतु' के समतुल्य होती है। इसमें प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता का लोप हो जाता है। संस्कृति सभ्यता में परिवर्तित हो जाती है। स्पेंगलर के अनुसार सभ्यताएं सर्वाधिक बाह्य तथा कृत्रिम अवस्थायें है। एक ऐतिहासिक प्रकिया के रूप में शुद्ध सभ्यता संस्कृति के तत्व को क्रमशः अजैविक और मृत हो जाना है।

12.5.4–संस्कृतियों का उत्थान और पतन

स्पेंगलर का मानना है कि संस्कृतियों के जीवन–मृत्यु चक्र से संबंधित नियम सुनिश्चित होते है। एक स्थिति में संस्कृतियाँ सभ्यता की अवस्था में पहुंच कर मृत्यु को प्राप्त होती है। प्रत्येक संस्कृति एक जीवधारी प्राणी के समान उत्पन्न एवं नष्ट होती है। प्रत्येक संस्कृतियाँ ऋतुओं की तरह परिवर्तित होती है। लेकिन वह अपने पूर्व रूप में कभी नहीं पहुँचती है। स्पेंगलर के अनुसार संस्कृतियों का जन्म उस समय होता है जब मानव जाति की आद्य–आध्यात्मिकता में एक महान आत्मा निराकार से आकार लेकर प्रकट होती है। यह एक सीमित तथा निर्धारित भू–भाग पर पुष्पित होती है, जहां यह एक पौधे की तरह आबद्ध रहती है। जब यह आत्मा जिन संभावनाओं को लेकर जन्मी थी, उन समस्त संभावनाओं को मानव समुदायों, भाषाओं, सिद्धांतों, कलाओं, राज्यों, विज्ञानों के माध्यम से प्रकट कर लेती है, इसकी मृत्यु हो जाती है और आद्य–आत्मा में प्रष्टि हो जाती है।

स्पेंगलर के अनुसार संस्कृतियाँ जन्म, प्रौढावस्था होते हुए जब वृद्धावस्था की स्थिति में पहुँचती है तब वह सभ्यता का स्तर होता है। संस्कृति के नवोन्मेष का भाव यहाँ समाप्त हो जाता है। सर्वत्र कृत्रिमता का भाव प्रकट होने लगता है। लोगों के विचार में धर्म के स्थान पर अधर्म, लोक के स्थान पर स्वेच्छाचारी प्रभावी वर्ग, वास्तविक मूल्यों के स्थान पर कृत्रिम मूल्यों तथा निरंकुशता का भाव हावी हो जाता है। संस्कृति के मृत्यु के कुछ पूर्व प्रत्येक सभ्यता में एक बार पुनः धर्म की ओर उन्मुखता देखी जाती है। यह स्थिति उस संस्कृति के पतन एवं अन्य संस्कृति के जन्म के प्रतीक का संकेत करती है।

12.6 अर्नोल्ड जे टॉयन्बी (1889–1975)

अर्नोल्ड जे टॉयन्बी का जन्म 1889 ई0 में लंदन के सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम हेली वालपी टॉयन्बी तथा माता का नाम सारा एडिथ टॉयन्बी था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा विन्चेस्टर एवं बल्लिऑल के विद्यालयों में हुई। उन्होंने वहाँ विशेष रूप से यूनानी एवं लैटिन साहित्य का अध्ययन किया। इससे उनका दृष्टिकोण विस्तृत हुआ एवं उन्हें इस तथ्य का साक्षात्कार हुआ कि वर्तमान संस्कृति के अतिरिक्त विश्व में अन्य संस्कृतियाँ भी रही है जो उत्पत्ति, विकास एवं क्षय के चक्र को पूरा कर चुकी है। टॉयन्बी के काल में यूरोपीय इतिहास में निरन्तर परिवर्तन हो रहे थे और अनेक घटनाएँ अनेक देशों को प्रभावित रही थी। इस पर्यवेक्षण के आधार टॉयन्बी को यह विश्वास हो गया कि कोई राजनीतिक या राष्ट्रीय इकाई वस्तुतः ऐतिहासिक इकाई नहीं हो सकती।

इंग्लैण्ड एक स्वतंत्र राष्ट्र होते हुए की ऐतिहासिक दृष्टि से यूरोप का एक अंग है। उन्होंने कुछ समय तक लंदन विश्वविद्यालय के किंग्स कॉलेज में अध्यापन कार्य किया और लंबे समय तक विदेश मंत्रालय से संबंध रहे। वे अनेक बार विश्व–भ्रमण किया तथा विश्व की अनेक सभ्यताओं के अवशेषों का प्रत्यक्ष निरीक्षण किया। प्राचीन स्थलों और भवनों के दर्शन ने उनकी इतिहास–दृष्टि को सजगता, सचित्रता एवं सर्वांगीणता प्रदान की। टॉयन्बी के ग्रन्थों में धर्म, संस्कृति एवं इतिहास का सूक्ष्म, विश्लेषणात्मक एवं मौलिक अध्ययन प्राप्त होता है।

12.6.1–कृतियाँ

टॉयन्वी के प्रमुख कृतियों में *ग्रीक हिस्टोरिकल थॉट, दि वेस्टर्न क्वेश्चन इन टर्की एण्ड ग्रीस, जर्नी टू चाइना,*

स्टडी ऑफ हिस्ट्री, वार एण्ड सिविलाइजेशन, सिविलाइजेशन ऑन ट्रायल, ए हिस्टोरियन्स एप्रोच टु रिलिजन डेमोक्रेसी इन एटोमिक एज, ईस्ट एण्ड वेस्ट, ए जर्नी अराउन्ड दी वर्ल्ड सम्मिलित है। यद्यपि इन सभी ग्रन्थों में टॉयन्वी की गहन ऐतिहासिक दृष्टि के दर्शन होते है। परन्तु उनकी कीर्ति का आधार 12 भागों में उनके द्वारा लिखित पुस्तक *'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री'* है। उनकी यह कृति इतिहास का विश्वकोष है।

12.6.2 –सभ्यताओं का वर्गीकरण

टॉयन्वी के इतिहास–दर्शन का आधार राष्ट्र न होकर सभ्यता है। उनका मानना है कि सभ्यता ऐतिहासिक अध्ययन का वह लघुतम भाग है जिस पर उस देश का इतिहास समझते समय मनुष्य की दृष्टि पड़ती है। उनके अनुसार ऐतिहासिक अध्ययन का बोधगम्य क्षेत्र समाज है, जिनका समय एवं स्थान राष्ट्र राज्यों एवं नगर राज्यों या अन्य राजनीतिक समुदाय की अपेक्षा विस्तृत है। इतिहास के विद्यार्थियों का सम्बन्ध समाज से होता है न कि राज्यों से। टॉयनवी का मानना है कि सभ्यता में धार्मिक तथा प्रादेशिक एवं कुछ अंश तक राजनीतिक विशेषताएँ शामिल होती है। टॉयनबी ने अपने अध्ययन के अंतगर्त पहले 21 सभ्यताओं को शामिल किया और बाद में उनकी सख्या 26 हो गई। इनमें से प्रमुख सभ्यताएँ हिन्दू, ईरानी, ईसाई, यूनानी, सुमेरियाई, मिश्र आदि है। टॉयनवी द्वारा अपने अध्ययन का आधार सभ्यता को मानना एक क्रांतिकारी कदम माना जाता है क्योंकि उस समय यूरोपिय राष्ट्रराज्यों को इतिहास का केंद्र माना जाता था तथा पूर्वी दुनिया के राज्य औपनिवेशिक स्थिति में ही थे।

12.6.3–चुनौती एवं प्रत्युत्तर का सिद्धान्त

इतिहास के अध्ययन में टॉयन्वी 26 सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन की चर्चा करते है। अपने विश्लेषण में चुनौती एवं उसका प्रत्युत्तर सिद्धान्त के अन्तर्गत सभ्यताओं के उत्थान एवं पतन का विश्लेषण करते है। अपनी इस अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वह कहते है कि प्रत्येक सभ्यता के जीवन में चुनौतियाँ आती है। ये चुनौतियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अथवा प्राकृतिक हो सकती है। इन चुनौतियों से समस्याएं बड़ी होती है और जब इस सभ्यता के निवासी इस समस्या के समाधान हेतु अथक प्रयास करते हैं उसे चुनौती का प्रत्युत्तर कहा जा सकता है। जब समस्या का समाधान हो जाता है तो सभ्यता प्रगति मार्ग पर अग्रसर हो जाती है। टॉयन्वी के अनुसार सभ्यताओं का उत्थान उस समय होता है जब सृजनशील अल्पसंख्यक कठिन से कठिन चुनौती का सामना करते हुए ऐसी समाधानों की खोज करते है जिससे सम्पूर्ण समाज में नवचेतना का संचार होता है।। अपने इस विचार की पुष्टि हेतु वह सुमेरियन सभ्यता का उदाहरण देते है। सुमेरिया के निवासियों के सामने दक्षिण ईराक के दलदल रूपी गंभीर चुनौती थी। लेकिन सुमेरियन नवपाषाण युगीन सृजनशील अल्पसंख्यकों ने वहाँ के निवासियों को संगठित कर विशाल सिंचाई योजनाओं को आरम्भ किया तथा दलदल की समस्या का स्थाई समाधान प्रस्तुत किया। सामाजिक चुनौती का उदाहरण उन्होंने रोमन साम्राज्य से प्रस्तुत किया है। रोमन साम्राज्य के विघटन के कारण अराजकता उत्पन्न हो गई। इसके निवारण में कैथोलिक चर्च की भूमिका महत्वपूर्ण है जिसने जर्मन–जातीय राज्यों को धार्मिक समुदाय की एक इकाई के रूप में संगठित कर दिया। टॉयन्वी का मानना है कि किसी सभ्यता का विकास तब होता है जब उसके समक्ष आई हुई चुनौती का उसके द्वारा दिया गया जवाब न केवल सफल हो अपितु आगे अधिक कठिन चुनौती का मुकाबला करने के लिए उसके नागरिक तत्पर हो। जब एक सभ्यता के नेता चुनौतियों का सृजनात्मक रूप से जवाब देने में असफल रहते है तब राष्ट्रवाद, सैनिकवाद एवं अल्पसंख्यक स्वेच्छाचारिता के कारण उसका पतन हो जाता है।

12.6.4–सृजनात्मक व्यक्तित्व और वर्ग

ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में सृजनात्मक वर्ग की केंद्रीय भूमिका होती है। टॉयन्वी के अनुसार कठोर दुर्गम भूमि, नये देश, दबाव और दण्ड की यातना से मनुष्य में चुनौतियों की प्रतिक्रिया की शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्ति के द्वारा मनुष्य चुनौती का उत्तर तो देता ही है, साथ ही एक नयी चुनौती को अपने सामने खड़ा कर लेता है। जिस प्रतिक्रिया और उत्तर से एक चुनौती समाप्त होती है उसी से दूसरी चुनौती उत्पन्न होती है। मनुष्य को पुनः उस चुनौती का उत्तर देना होता है। चुनौतियों के इस प्रकार क्रमशः सफल उत्तर देने की प्रवृत्ति का नाम ही विकास है। चुनौतियों का सफल उत्तर देने के लिए मनुष्य को अपने भीतर एक आन्तरिक संतुलन स्थापित करना पड़ता है। इसे आत्मनियमन कहते है। सभ्यता का विकास करना सृजनात्मक व्यक्तियों एवं वर्गों का कार्य है, जो जनता के सामान्य स्तरों को अपनी प्रतिभा के आकर्षण द्वारा अपनी ओर खींच लेते है। ये सृजनात्मक व्यक्तित्व तथा वर्ग 'निर्गमन' और 'प्रत्यागमन' की प्रक्रिया द्वारा कार्य करते है। ये कुछ समय के लिए संसार से अलग हो जाते है और शक्ति का संचय करते है एवं इसके पश्चात् संसार में वास आकर अपूर्व ऊर्जा के साथ सृजन कार्य में संलग्न हो

जाते है।

सृजनात्मक प्रतिभाएं अपने तपस्या मार्ग पर 'निवृत्ति और प्रवृत्ति' की प्रक्रिया अपनाते है। निवृत्त होकर वे अपने भीतर सुषुप्त शक्ति व ऊर्जा को जागृत करते है और स्वयं को रूपान्तरित करके नेतृत्व प्रदान करने के लिए समाज में लौटते है। सन्तों, सिद्धो, राजनेताओं और सैनिकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों आदि लोग सृजनशील व्यक्तित्व अल्पसंख्यक वर्ग का उदाहरण प्रस्तुत करते है। सृजनात्मक व्यक्तियों में संत पॉल, सन्त बैनेडिक्ट, सन्त ग्रेगरी महान, बुद्ध, मुहम्मद साहब आदि उल्लेखनीय है। सृजनात्मक वर्गों में हेलनिक समाज के विकास, इतिहास के दूसरे चरण में एथेन्स, पश्चिमी समाज के विकास के दूसरे चरण में इटली व तीसरे चरण में इंग्लैण्ड आदि के माध्यम से टॉयन्वी ने 'निवृत्ति और प्रवृत्ति' की प्रक्रिया को विभिन्न सभ्यताओं के इतिहास में दिखाने का प्रयास किया है।

12.7–राबिन जार्ज कालिङ्गवुड (1889–1943)

इतिहास–लेखन क्षेत्र में वैज्ञानिक चिन्तनधारा के विरूद्ध एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले अंग्रेज विचारक कालिंगवुड का जन्म सन् 1889 ई. इंग्लैण्ड के एक सामान्य परिवार में हुआ था। उन्होंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी और वहीं भौतिक दर्शन के प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। उन्होंने अनेक शोध–पत्र लिखे थे। इन्हीं शोध–पत्रों का संग्रह उनकी मृत्यु के बाद सन् 1945 ई. में पाँच भागों में *'दि आइडिया ऑफ हिस्ट्री'* नाम से प्रकाशित हुआ है जिसके चार भागों में तो अन्य विचारकों के सिद्धान्त का आलोचनात्मक अध्ययन है, जबकि पाँचवें भाग में उनके अपने विचार प्रतिपादित हैं।

कालिंगवुड पर अनेक विद्वानों का प्रभाव पड़ा था। आरम्भ में उन्होंने ग्रीन और ब्रैडले के आदर्शवादी विचारों को स्वीकार किया, परन्तु बाद में अपने नये इतिहास–दर्शन का विकास किया। इनका सिद्धान्त क्रोचे की तरह है। दोनों ने ही एक प्रकार के आदर्शवाद तथा दर्शन एवं इतिहास की अभिन्नता का प्रतिपादन किया है। इसीलिये कुछ लोग कालिंगवुड को क्रोचे का शिष्य भी कहते हैं परन्तु नाक्स ने कालिंगवुड की पुस्तक के प्राक्कथन में इस बात को अस्वीकार किया है और लिखा है कि कालिंगवुड ने क्रोचे से सौन्दर्यशास्त्र तथा इतिहास, दोनों, ही क्षेत्रों में सीखा है किन्तु अपने निष्कर्ष में वह अपने स्वतन्त्र अभिमत प्रस्तुत करता है। प्लेटो को वह अपना प्रिय दार्शनिक मानता था साथ ही विके का प्रभाव अपने पर अधिक मानता था।

12.7.1–कालिंगवुड का इतिहास दर्शन

कॉलिंगवुड का इतिहास दर्शन आदर्शवादी चिंतन से प्रभावित रहा है। उनके इतिहास दर्शन की कुछ मान्यताऐं क्रॉचे के इतिहास–दर्शन से प्रभावित रही है। कॉलिंगवुड की पुस्तक 'दी आईडियाज ऑफ हिस्ट्री' में उनके आदर्शवादी इतिहास लेखन का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। कॉलिंगवुड ने समस्त इतिहास को विचार प्रधान इतिहास स्वीकार किया है। उनका मानना है कि इतिहास मनुष्य को कार्य करने हेतु प्रेरित, प्रोत्साहित और विवश भी करता है। यह मानवीय कार्यों का उद्‌गम स्थल है। इसीलिए वे इतिहास का अभिप्राय मानवीय मस्तिष्क से प्रभावित होकर विश्व को समझने से करते है। वे मानवीय ज्ञान को दो भागों में विभक्त करते है। प्रकृति का परिचय कराने वाला ज्ञान–विज्ञान तथा मानव–संबंधों का परिचय कराने वाला ज्ञान को इतिहास कहते है।

कालिंगवुड यह मानते है कि सभी इतिहास विचारों का इतिहास है। अर्थात् ऐतिहासिक व्याख्या इतिहास को समझने का सबसे महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इतिहास में मानवीय कार्यों का अध्ययन होता है। प्रकृति विज्ञान एवं धर्म शास्त्र की तरह इतिहास की विचार प्रधान होती है। किन्तु प्रत्येक विचार इतिहास का स्त्रोत नहीं होता अपितु बौद्धिक चिंतन द्वारा प्रस्तुत विचार जिसका लक्ष्य व दिशा निश्चित हो, इतिहास कहा जायेगा। कालिंगवुड का मानना है कि इतिहास एक अद्वितीय प्रकार का ज्ञान है तथा यह मानव के सम्पूर्ण ज्ञान का स्त्रोत है। इतिहास की अवधारणा को और स्पष्ट करते हुए कालिंगवुड कहते है कि इतिहास तथ्यों का इतिवृत्तात्मक विवरण मात्र न होकर विचारों की अभिव्यक्ती है। यह न केवल अतीत और न ही इतिहासकार के अतीत संबंधी विचारों से अपितु दोनो से ही सम्बद्ध होता है।

कालिंगवुड ने इतिहास को तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक बनाने का भी पर्याप्त प्रयत्न किया है। इसी हेतु वे लगातार दोनों का तुलनात्मक विवरण उपलब्ध कराते रहे है। उनका मानना है कि इतिहासकार एवं वैज्ञानिक के साक्ष्यों के प्रयोग में समानता की अपेक्षा विभिन्नता अधिक है। इसीलिए साक्ष्यों के आधार पर जब एक वैज्ञानिक अपने निष्कर्ष की घोषणा करता है तो समान परिस्थिति में वह निष्कर्ष सर्वव्यापी होता है। किन्तु इतिहासकार को अपने को विशेष परिस्थिति में रखकर ही कहना होता है कि तथ्य जिनका वह निरीक्षण कर रहा है, वे उसकी समस्या के समाधान में

सहायक हो सकते है। इस तरह जहाँ वैज्ञानिक साक्ष्यों का परीक्षण करता है वहीं इतिहासकार साक्ष्यों की खोज करता है। इतिहासकार के निर्णय अनुमानित होते है और साक्ष्य भी अनुमानित होते है। साक्ष्य पर आधारित इतिहास अतीत का विज्ञान है। इतिहास में कारणता को स्वीकार करते हुए कालिंगवुड लिखते है कि इतिहासकार परिस्थिति से उत्पन्न कारणों की व्याख्या में अपने सिद्धान्त और व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित होता है। इतिहासकार का पुनीत कर्त्तव्य है कि वह कारणों की व्याख्या में बाह्य तथा आभ्यान्तर पक्षों पर भी ध्यान दे। प्राकृतिक प्रक्रिया को केवल घटनाओं के अनुक्रम के रूप में देखा जा सकता है किन्तु ऐतिहासिक प्रक्रिया वह है जिनका विचार–प्रक्रियाओं से निर्मित एक आभ्यान्तर पक्ष होता है और इतिहासकार इन विचार–प्रक्रिया को ढूँढता है। इतिहासकार जानना चाहता है कि मन ने अतीत नें क्या किया हैं। ऐतिहासिक चिंतन कल्पना का वह कार्य–व्यापार है जिसके द्वारा हम इस साध्य भावना को विस्तृत प्रसंग प्रदान करने का प्रयास करते है। इतिहास में कोई भी उपलब्धि अंतिम नहीं होती। इतिहास की परिकल्पनात्मक प्रस्तुति ही ऐतिहासिक प्रस्तुति है, इसीलिए उसका निष्कर्ष निश्यचात्मक न होकर सम्भावनात्मक होता है। इतिहासकार जिस अतीत का अध्ययन करता है वह मृत अतीत नहीं, अपितु इतिहासकार के मस्तिष्क में सजीव अतीत होता है।

कालिंगवुड इतिहास की विषय वस्तु को प्राकृतिक विज्ञान की विषयवस्तु से भिन्न मानते है। इसकी विषयवस्तु उस विचार प्रक्रिया से सम्बद्ध होती है जिसकी पुनरानुभूति इतिहासकार कर पाता है। अर्थात् प्रत्येक परावर्तित प्रक्रिया जो उद्देश्य पूर्ण भी होती है, इतिहास की विषयवस्तु कहलाती है। कालिंगवुड का मानना है कि इतिहास में कला और विज्ञान दोनों के तत्व होते है। इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप की सबसे बड़ी विशेषता वर्तमान के परिवेश में अतीत की व्याख्या है। अपनी क्रमबद्धता के कारण इतिहास एक विशेष प्रकार का विज्ञान है। यह एक ऐसा विज्ञान है जो ऐसी घटनाओं का अध्ययन करता है जो हमें प्रत्यक्षतः प्राप्त नहीं है, अपितु जिन्हें प्रत्यक्षतः प्राप्त वस्तुओं के आधार पर तथ्य या साक्ष्य अनुमानतः निष्कर्ष निकाला जाता है। इसके साथ ही इतिहास में कला के भी अनेक गुण होते है। वह तथ्यों एवं विचारों की अनुभूतिपरक एवं अतिन्द्रीय संभावनाओं पर विचार करता है।

कालिंगवुड इतिहास को एक उपयोगी ज्ञान मानते है। इतिहास के अध्ययन से हमें आत्मज्ञान प्राप्त होता है। इससे न केवल अन्य लोगों से अपनी विशिष्टताओं की जानकारी प्राप्त होती है अपितु मनुष्य के रूप में अपने स्वभाव को जानने में भी सफलता मिलती है। इसमें जब वह यह समझने का प्रयास करता है कि वह क्या कर सकता है तो इसके लिए उसे जानना होता है। कि उसने क्या किया है और इसका ज्ञान इतिहास कहलाता है। इसलिए इतिहास मनुष्य के लिए एक उपयोगी विषय है।

12.8 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक इतिहास लेखन की दिशा को आधुनिक पाश्चात्य दर्शनिकों ने एक निश्चित दिशा दी। हीगेल ने इतिहास को घटनाओं का संकलन मात्र नहीं मानता था बल्कि उसके अनुसार इतिहास घटनाओं के भीतर छिपी हुई कार्य–कारण–प्रक्रिया कि गवेषणा है। उनका मानना था कि इतिहास की मुख्य प्रवृति मानव स्वतन्त्रता का विकास है। मार्क्स ने हीगेल की पद्धति में कुछ नवीन तत्वों को जोड़कर एक नयी क्रांति की शुरुआत की जोकि विचार जगत में मार्क्सवादी क्रांति के नाम से जानी जाती है। यह ऐतिहासिक विकास में आर्थिक तत्वों के विश्लेषण को केन्द्रीय मानती है। स्पेङ्ग्लर ने विश्व इतिहास को एक नए सिरे से समझने का प्रयत्न किया। उनके इतिहास दर्शन में विश्व कि सभ्यताओं और संस्कृतियों के सिलसिलेवार विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया है तथा उत्थान एवं पतन के बिन्दुओं को पहचानने का प्रयत्न किया गया है। टायनबी का इतिहास दर्शन भी विश्व इतिहास का एक नवीन विश्लेषण है। यह सम्पूर्ण विश्व को सभ्यताओं मे विभाजित करके उनके विश्लेषण का प्रयत्न करता है। कॉलिंगवुड का इतिहास दर्शन विचारों के सम्यक विश्लेषण पर आधारित है। वे ऐतिहासिक ज्ञान को सुदूर अतीत का ज्ञान नहीं मानते थे बल्कि उनका मानना था कि हम ऐतिहासिक चिंतन द्वारा अपने अतीत को जानते है।

12.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई.एच. कार, इतिहास क्या है (हिन्दी अनुवाद, अशोक चक्रधर),नई दिल्ली, 2006
- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016

- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- लाल बहादुर वर्मा, इतिहास : क्यों–क्या–कैसे।
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)

12.10 अभ्यास प्रश्न

1. हीगल की ऐतिहासिक पद्धति और अवदानों का विश्लेषण कीजिए ।
2. कार्ल मार्क्सकी ऐतिहासिक पद्धति और अवदानों का विश्लेषण कीजिए ।
3. कार्ल मार्क्स के इतिहास के भौतिकवादी व्याख्या की अवधारणा का विश्लेषण कीजिए ।
4. ओसवाल्ड आर्नोल्ड स्पेङ्ग्लर के इतिहास संबंधी अवधारणा का विश्लेषण कीजिए ।
5. आर्नोल्ड जे. टोयनबी ऐतिहासिक अवधारणाओं का विश्लेषण कीजिए।
6. आर्नोल्ड जे. टोयनबी के चुनौती एवं प्रत्युत्तर की अवधारणा पर प्रकाश डालिए ।
7. आर. जी. कॉलिंगवुड की इतिहास दर्शन का विश्लेषण कीजिये।

इकाई 13 : भारतीय इतिहास लेखन का एक सर्वेक्षण : वैदिक महाकाव्य और पौराणिक परम्परा

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 गाथा

13.4 नाराशंसी

13.5 दानस्तुति

13.6 आख्यान

13.7 महाकाव्य

13.7.1 रामायण

13.7.2 रामायण की ऐतिहासिक सामग्री

13.7.3 महाभारत

13.8 पुराण

13.8.1 पुराण का ऐतिहासिक महत्व

13.9 सारांश

13.10 सन्दर्भ पुस्तकें

13.11 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता संसार की प्राचीन सभ्यताओं में एक विशिष्ट स्थान रखती है। प्राचीन समय में भारत को कई बार उत्थान और पतन का सामना करना पड़ा, इसलिए भारतीय इतिहास–लेखन में कई बड़े अन्तराल दिखाई पड़ते है। यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारत में राजनीतिक इतिहास लेखन की सुस्पष्ट परम्परा नहीं थी, लेकिन विविध प्रकार ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग किया जाए तो एक समग्र इतिहास की रूपरेखा तैयार हो जाती है। प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में वैदिक साहित्य सर्वप्रथम आते है। इनमें राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से संबंधित तथ्य बिखरे पड़े है। इन ऐतिहासिक सामग्रियों को गाथा, नाराशंसी, दानस्तुति, आख्यान एवं इतिहास–पुराण परम्परा के सम्यक अध्ययन के साथ प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी हमारे महाकाव्य है। राजनैतिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों के निर्माण में रामायण और महाभारत अप्रतिम स्थान रखते है। पुराणों में प्रत्येक अध्याय में इतिहास के विविध तथ्य भरे पड़े है। इनके अध्ययन द्वारा इतिहास, भूगोल एवं सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों का ज्ञान होता है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी निम्न तथ्यों से अवगत होंगे–

1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएं
2. वैदिक इतिहास परम्परा के प्रमुख तत्व
3. प्राचीन भारतीय महाकाव्यों का सांस्कृतिक महत्व

4. पुराणों में वर्णित ऐतिहासिक सामग्री
5. प्राचीन भारतीयों के इतिहास के प्रति दृष्टिकोण

13.3 गाथा

वैदिक इतिहास–लेखन में गाथा–परम्परा का विशेष योगदान है। ऋग्वेद में गाथा, इन्द्रगाथा, गाथानी, ऋजगाथा आदि अनेक रूपों में ऋग्वेद की परम्पराओं का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में इन्द्रगाथाओं का विशेष महत्व है। अन्य मानवीय जन–नायकों से संबंधित गाथाएँ भी हैं। इनका विभिन्न अनुष्ठानात्मक गाथाएँ महाकाव्य शैली में है और उनसे यह प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में राजनैतिक घटनाओं से संबंधित मौलिक परम्पराओं का एक विशाल संग्रह विद्यमान था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मंत्रों के विविध प्रकार में गाथा मानव से संबंधित थी। इस तथ्य की पुष्टि शुनः शेप आख्यान के लिए प्रयुक्त ''शतगाथम'' शब्द से पर्याप्त रूप से होती है। यह कथा ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में मिलती है। ऐतरेय ब्राह्मण के महाभिषेक–प्रकरण में अभिसिक्त किए जाने वाले प्रसिद्ध राजाओं की स्तुति में अनेक प्रचीन गाथाएँ उद्धृत की गई है जो पुराणों में समान प्रसंग में नाराशंसी का भी उल्लेख मिलता है।

वैदिक साहित्य में 'गाथिन' शब्द का भी उल्लेख मिलता है, जिसका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि गाथाएं प्रायः लोकभाषा में थी और उनको गाने वाले गाथिन कहे जाते थे। गाथा व नाराशंसी को इतिहास एवं पुराण के साथ वर्गीकृत किया जाता था तथा गाथाओं को विभिन्न अवसरों पर गाया जाता था। अश्वमेघ यज्ञ व अन्य यज्ञों के अवसर पर भी इन्हें रचा जाता था तथा यज्ञमान व शूरवीर राजाओं के कीर्ति का गायन किया जाता था। अश्वमेघ यज्ञ के प्रसंग में जिस दिन घोड़ा छोड़ा जाता था, उस दिन ब्राह्मण वीणा वादक द्वारा तीन स्वरचित गाथाओं को राजकीय बलिकर्त्ता की प्रशंसा में गाने का उल्लेख मिलता है। उसी दिन एक क्षत्रिय वीणावादक भी राजा की प्रशंसा में तीन गाथाओं की रचना करता था। इसमें विशेष रूप से राजा की राजकीय उपलब्धियों एवं सामरिक उपलब्धियों का वर्णन होता था। मैत्रायणी संहिता के अनुसार गाथा का गायन विवाह के अवसर पर भी किया जाता था तथा यह वहाँ पर उपस्थित लोगों को आनन्द से भर देती थी। ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि अभिषिक्त राजा की प्रशंसा में गाथा का गायन किया जाता था।

जैन तथा बौद्ध धर्म में भी गाथा की परम्परा थी। जैन गाथा अर्धमागधी तथा बौद्ध गाथा पालि में है। थेरगाथा तथा थेरीगाथा इसके उदाहरण है। इसके अतिरिक्त हाल की गाहा सतसई (गाथा सप्तशती) भी गाथा का उदाहरण है। अवेस्ता में भी गाथा का वर्णन मिलता है जिसकी प्रकृति वैदिक गाथा के समान ही है। इसमें पारसी धर्म के संस्थापक जरथुस्त्र को मानव रूप में प्रदर्शित किया गया है।

13.4 नाराशंसी

प्राचीन वैदिक साहित्य में नराशंस, नारांशसी तथा नाराशंसी शब्दों का उल्लेख मिलता है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में अग्नि को नराशंस के रूप में वर्णित किया गया है। यज्ञों में आहुति प्राप्त करने के कारण अग्नि को नराशंस कहा गया है। यह 'सत्य' (यजमान को यज्ञफल देने वाला), 'आजिर' (पुरातन), प्रचेता (प्रकृष्ट ज्ञान सम्पन्न), कवि क्रतु सायण ने इसका शाब्दिक अर्थ मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय अग्नि विशेष के रूप में किया है। वैदिक साहित्य में नाराशंसी का उल्लेख गाथा, इतिहास व पुराण के साथ ही होता पाया गया है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि अनुशासन, विद्यावाकोवाक्य, इतिहास–पुराण, गाथा तथा नाराशंसी के स्वाध्याय करने से देवों को मधु से पूर्ण आहुतियाँ प्राप्त होती है। ऋग्वेद में नाराशंसी अनेक संदर्भों में प्राप्त हुई है। यह अपने मूल अर्थ में 'नरों की प्रशंसा' से युक्त पितरों की प्रशंसा से सम्बद्ध थे। तत्पश्चात् इसके अर्थ में विकास दिखाई देता है। पितरों के साथ ही उसके वस्तुओं और विचारों की प्रशंसा में कहे गए वचन भी नाराशंसी कहे जाने लगे। ये मानवीय प्रशंसाएं अग्नि देवता के मानवीयकृत रूप में 'नराशंस' से संबंध मानी जाती थी, जिनका वर्णन एक कवि के रूप में किया गया है जिसकी जिहव्मधुसिक्त होती थी।ऋग्वेद में नाराशंसी प्रायः गाथा के साथ ही उल्लिखित है। कालान्तर में यह एक गाथा के रूप में मान्य हो गई। पं0 भगवद दत्त का मानना है कि ब्राह्मण काल में इतिहास, पुराण, गाथा व नाराशंसी के स्वतंत्र ग्रन्थ विद्यमान थे।

नाराशंसी के ऐतिहासिक साहित्य को परम्परा कालान्तर में भी चलती रही। ब्राह्मण ग्रन्थों में अपने पूर्वस्थिति से विकसित रूप में तैत्तिरीय आरण्यक में नाराशंसी का उल्लेख मिलता है। संभवतः नाराशंसी बिखरे रूप में विविध गाथाओं के रूप में लोक में विद्यमान रहे होंगे। आश्वलायन गृहसूत्र में नाराशंसी का अनुशीलन स्वाध्याय के अध्ययनान्तर्गत स्वीकार किया गया है और इसका स्वाध्याय करने वाले व्यक्ति के देवों एवं पितरों को अमृत की कल्या

प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है।

13.5 दानस्तुति

सामाजिक जीवन के एक महत्वपूर्ण कृत्य दान का प्रारंभिक उल्लेख उल्लेख ऋग्वेद के दानस्तुति मंत्रों में मिलता है। ऋग्वेद में दान देने की क्रिया के लिए दान व दक्षिणा शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में दान देने की परम्परा मुख्य रूप से धार्मिक कर्मकाण्ड से जुड़ी हुई थी। ऋग्वैदिक दानस्तुति सूक्तों में स्तुति का द्रष्टा ऋषि होता है जो सामान्यतः दाता का पुरोहित होता है। देवता का आह्वान किया जाता है, उसके पराक्रमों की प्रशंसा की जाती है तथा उससे सहायता के लिए अनुरोध किया जाता है। इन सूक्तों के मंत्रों का वर्ण्य विषय या तो दाता है या वह प्रसंग जिसके कारण दान दिया गया है। दाता राजा या देवता हो सकता है। राजा या समूह का मुखिया भी दाता के रूप में प्रदर्शित होता है। लेकिन कुछ दानस्तुति सूक्तों में इन्द्र–सोम, अश्विनी, विश्वदेवा एवं सरस्वती आदि का भी दाता के रूप में उल्लेख मिलता है। जिन प्रमुख राजाओं के नाम एवं उपलब्धियों का विवरण इन स्तुतियों से प्राप्त होता हैं उनमें पुरूमीढ, अध्यावर्ती, मनुसावर्णि, पृथुश्रवस उल्लेखनीय है।

ऋग्वैदिक काल में दान देना एक पवित्र कर्म माना जाता था। दान या दक्षिणा धन के आदान–प्रदान का एक स्वस्थ माध्यम था। ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर, अलग–अलग शब्दों एवं भावनाओं को प्रकट करते हुए दान एवं उसकी महिमा विभिन्न रूपों में उपलब्ध है। दक्षिणा देने वाले यजमान स्वर्ग में उच्च पद प्राप्त करते है। जो लोग घोड़ो का दान करते है, वे सूर्य के साथ रहते है। वस्त्र का दान देने वाले सोम के पास गमन करते है और स्वर्ण दान वाले अमृत्व को प्राप्त करते है।

दानस्तुति मंत्रों की शैली ऋग्वेद के अन्य मंत्रों से थोड़ा भिन्न है। दान स्तुति मंत्र अन्य मंत्रों के समान स्पष्ट नहीं है। प्रायः इन मंत्रों में आवश्यक प्रसंगों का अभाव पाया जाता है। जैसे– कुरंग, कशु, पाकस्थामा, श्रतुवर्ण आदि अनेक राजाओं के नामों के अतिरिक्त कोई संकेत नहीं प्राप्त होता है। कुछ मंत्रों में इनके नामों के अतिरिक्त पुत्र या वंश का उल्लेख मिलता है। कुछ मंत्रों में राजाओं के नाम से साथ यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि वे किस नदी के पास निवास करते थे। ऋग्वैदिक दान स्तुतियों में अतिश्योक्ति नहीं है अपितु हार्दिक प्रसन्नता है। साथ ही कृतज्ञता का भाव भी अभिव्यक्त किया गया है। ऋषियों ने दान–दाताओं को विद्वान तथा उत्तम व्रतों का आचरण करने वाला बताया है। दान–स्तुतियों की एक विशेषता यह है कि प्रायः दान की तुलना सूर्य रश्मियों से की गई है तथा दान–दाता मानवीय पुरूष होकर भी इन्द्रादि देवताओं के समान अलौकिक समझे जाते थे।

इन दान स्तुति मंत्रों में स्वर्ण, पशु आदि जैसे महत्वपूर्ण वस्तुओं के साथ ही अन्न दान को भी प्रशंसनीय माना गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नैतिक सदाचरण एवं लोक कल्याण के स्थापना के मंतव्यों को पूर्ण करने में दानस्तुति मंत्र विशिष्ट स्थान रखते है। इन दानस्तुति मंत्रों में वर्णित आदर्शों ने परवर्ती राजाओं एवं राजव्यवस्था को कल्याणकारी कार्यों हेतु प्रेरित किए।

13.6 आख्यान

वैदिक इतिहास लेखन में आख्यान परम्परा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक इतिहास के अधिकांश परम्पराओं के सूत्र इन आख्यानों में प्राप्त है। आख्यानों में संकलित ऐतिहासिक तत्वों पर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। लेकिन अधिकांश विद्वानों का मानना है कि इतिहास–विमर्श में आख्यान ऐतिहासिक घटनाओं और सूचनाओं को कथा रूप देने का कार्य करते है जो अन्यथा सूचनाओं की सूची बनकर रह जाते हैं। परिवर्तन के इसी क्रम में आख्यान विभिन्न प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते है। आख्यान का कार्य वस्तुतः वास्तविक घटनाओं को उन विशिष्ट अर्थ संगतियों से जोड़ना है जो साहित्य की विभिन्न विधाओं में कल्पना का आश्रय लेकर किसी समाज की चेतना के निर्माण में सहायक बनती है। आख्यान अपने इस कार्य के लिए रूपक का सहारा लेता है।

वैदिक आख्यानों के अन्तर्गत इन्द्र–वृत्र आख्यान, पुरूरवा–उर्वशी आख्यान, सरमा–पणि आख्यान, घोषा आख्यान, शुन शेप आख्यान, नचिकेता आख्यान आदि उल्लेखनीय है जिनमें इतिहास के महत्वपूर्ण अंश निहित है। शुनशेप आख्यान ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में यह आख्यान विस्तार से वर्णित है। यह आख्यान हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र की कथा से मिलकर एक विस्तृत रूप ले लेता है। उर्वशी–पुरूरवा आख्यान भी वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर वर्णित है। भारतीय साहित्य में वर्णित प्राचीनतम प्रणयगाथाओं में इसका स्थान आता है। इसके माध्यम से राजकीय कर्त्तव्यों का भी उचित ढंग से क्रियान्वयन की शिक्षा प्राप्त होती है। इसी प्रकार अन्य

आख्यानों में भी राजनैतिक–सांस्कृतिक जीवन के महत्वपूर्ण सूत्र अन्तर्निहित है। प्रत्येक आख्यानों के भीतर मानव समाज के सामूहिक कल्याण एवं विश्व में मंगल की स्थापना का भाव निहित है। वैदिक साहित्य से यह बात प्रतिध्वनित होता है कि देवता एवं मानव में अति निकट का सम्बन्ध था। मानव यज्ञों में देवों का आहुति प्रदान करता था और देव भी प्रसन्न होकर मानवीय आकांक्षाओं की पूर्ति करते थे। इन्द्र एवं अश्विनी विषयक आख्यान इस कथन का उदाहरण है। यजमानों से प्राप्त सोमरस पीकर इन्द्र तृप्त हो जाते थे एवं यजमान की कामना को सफल करते थे। प्रत्येक आख्यानों का मूल उद्देश्य मानव का कल्याण एवं शिक्षण है। आत्रेयी एवं कपाल का आख्यान नारी चरित्र की उदात्तता एवं तेजस्विता का परिचायक है। यावाश्व–आत्रेय की कथा ऋषि के गौरव, प्रेम महिमा और कवि की साधना को स्पष्ट तरीके से अभिव्यक्त करता है। दध्यङगाथर्णव (पौराणिक ऋषि दधीची) का आख्यान जन कल्याण के व्यापक उद्देश्यों को लिये हुए है। इसमें ऋषि लोकहित एवं वृत्रासुर के वध हेतु इन्द्र को अपनी अस्थियों का दान करते हैं। कुछ आख्यानों में ऋषियों एवं राजाओं के चारित्रिक दोषों पर अनैतिक आचरण का भी वर्णन है। ये आख्यान अनैतिकता के गर्त में पतन से रक्षा के लिए निर्दिष्ट है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक आख्यान भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के महत्वपूर्णों प्रवृत्तियों के प्रारम्भिक झलक प्रस्तुत करते है।

13.7 महाकाव्य

यद्यपि संसार के प्राचीनतम साहित्य वेदों में भी काव्य के बीज दिखाई देते है। तत्पश्चात् ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों में वर्णित गाथा, दानस्तुति, नाराशंसी आदि में वर्णित प्रसंगों में भी काव्य तत्व की प्रधानता है। तथापित सर्वप्रथम विकसित काव्य कला के दर्शन रामायण एवं महाभारत में ही होते है। इनके कथानक, योजना तथा शैली सभी में उत्कृष्ट काव्य योजना की झलक निकलती है। इस कारण इन्हें महाकाव्य कहा जाता है।

13.7.1–रामायण

भारतीय परम्परा में रामायण को आदिकाव्य तथा इसके रचयिता वाल्मीकि को आदिकवि माना जाता है। रामायण में भारत के आदिकालीन नायक राम की कथा अत्यंत ही आकर्षक एवं नीतिपरक ताने–बाने में प्रस्तुत की गई है। रामायण के रचनाकाल पर विचार करें तो ज्ञात होता है कि वैदिक साहित्य में रामायण का उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि रामायण की रचना वेदों के पश्चात् हुई होगीं लेकिन बौद्ध एवं जैन साहित्य में रामकथा का स्पष्ट उल्लेख है। बौद्ध साहित्य के दशरथ जातक में रामकथा का पूर्ण उल्लेख पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि जातक साहित्य से पूर्व रामायण की रचना हो चुकी थी।

रामायण में भारत के सांस्कृतिक चेतना के प्रतिबिम्ब दिखाई देते है। उसमें भारत के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आदर्शरूप राजनीतिक जीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। पिता–पुत्र, भाई–भाई और पति–पत्नी के जो सामाजिक–नैतिक संबंध है, उनका रामायण में सहज उल्लेख हुआ है। रामायण को राष्ट्रीय महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। इस कारण अत्यंत प्राचीन समय से लेकर वर्तमान समय तक इस ग्रन्थ की लोकप्रियता बनी हुई है।

13.7.2–रामायण की ऐतिहासिक सामग्री

रामायण में वर्णित प्रसंगों से प्रतीत होत है कि पहले भारतीयों ने सप्त सिन्धु क्षेत्र में निवास को प्रधानता दी तथा कालान्तर मे वे मध्य प्रदेश, दक्षिण और पूर्व के सुदूर भू–खण्डों पर अपना निवास बनाया तथा वहाँ कृषि आदि कार्यों में संलग्न हुए। रामायण से तत्कालीन भारत की भौगोलिक स्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। उसमें सर्वप्रथम दक्षिणापथ का उल्लेख हुआ है। उसमें दण्डकवन को उत्तर एवं दक्षिण भारत का विभाजक बताया गया है। दक्षिणापथ में मानव बस्तियों का प्रसार होना भी इस ग्रन्थ से ज्ञात होता है।

रामायणकालीन संस्कृति का मूल आधार धर्म था। तप, दान, पुण्य, सदाचार, सत्य, संयम, शील और मर्यादा आदि धर्माचरण के अंगो को समस्त राष्ट्र में प्रसारित करने का लक्ष्य था। राम व उस युग के अन्य मनीषियों का आदर्श चरित धर्म का मूर्तिमान स्वरूप था। उसमें देवत्व और मानवत्व का अद्भुत समन्वय था। धर्म द्वारा अनुशासित सामाजिक व्यवस्था में वर्णाश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति की मर्यादाओं को सुरक्षित रखे हुई थी। तत्कालीन समाज की आजीविका के साधन मुख्य रूप से कृषि और पशुपालन पर आधारित थे। आवश्यकतानुसार सभी वर्ण आजीविका हेतु इन साधनों का पालन करते थे। इसी प्रकार व्यापार, वाणिज्य आदि के द्वारा भी आजीविका का निर्वहन किया जाता था।

एक आदर्श सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थापना भी रामायण का उद्देय था। रामायण में हमें धर्म द्वारा अनुशासित, नियंत्रित एवं उत्तरोत्तर उत्कृष्ट सामाजिक संगठन दृष्टिगोचर होते है। सभी वर्णों के लोग अपने–अपने कर्त्तव्यों के प्रति निष्ठावान रहकर प्रेम एवं सद्भाव का जीवन व्यतीत करते थे। इस उन्नत व्यवस्था का आधार परिवार था। परिवार का प्रत्येक व्यक्ति व्यक्तिगत दायित्वों एवं पारस्परिक संबंधों के निर्वाह में पूर्णतः उत्तरदायी था। सामाजिक उन्नति और चारित्रिक उत्कृष्टता बनाए रखने हेतु युवावस्था में विवाह एक अनिवार्य कर्त्तव्य था। शिक्षा की अप्रतिम महत्ता को स्वीकार किया जाता था। पुरूष एवं स्त्रियां दोनों को ही शिक्षा के अवसर उपलब्ध थे। स्त्रियों को धर्म तथा साहित्य के साथ–साथ ललित कलाओं की भी विशेष शिक्षा दी जाती थी, क्योंकि कलाएं ऋषियों–मुनियों के आश्रम हुआ करते थे, जिन्हें कि गुरूकुल कहा जाता था। इन गुरूकुलों में अंतेवासी छात्र–छात्राओं का विभिन्न शास्त्रों तथा विधाओं की शिक्षा के साथ ही सदाचार एवं नैतिकता का भी पालन कराया जाता था। स्त्रियाँ शिक्षा के साथ ही धार्मिक–सामाजिक क्रियाकलापों में भी पुरूषों के साथ–साथ भाग लेती थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि रामायण में वर्णित आदर्श व मूल्य भारतीय सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में अप्रतिम रूप से निर्णायक हुए।

रामायण की कथाओं एवं आख्यानों ने भारतीय लोकमानस को अद्वितीय तरीके से प्रभावित किया। अनेक कवियों ने उससे प्रेरणा ग्रहण की तथा परवर्ती युगों में बारम्बार इस कथा को नए रूप में प्रस्तुत किया गया। जैनभिक्षु विमल सूरि (प्रथम शती ई.) ने पउमचरित नाम से प्राकृत में रामचरित लिखा। कालिदास और भवभूति ने भी अपनी काव्य प्रतिभा को रामकथा लिखकर सार्थक किया। कंबन ने तमिल में रामायण की रचना की। 16वीं शती में तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' को अवधी में लिखा जिसमें रामचरित का नए रूप में प्रस्तुत किया गया।

13.7.3–महाभारत

रामायण की ही तरह महाभारत भारतीय साहित्य का अनुपम ग्रन्थ है। इसके रचयिता कृष्णा द्वैपायन व्यास है। इस महाकाव्य का आधार कौरव–पाण्डवों का ऐतिहासिक आख्यान है। किन्तु यह भारतीय संस्कृति का महान विश्वकोष है। इसमें इतिहास, धर्म, नीतिशास्त्र, राजनीति, दर्शन आदि का अद्भुत समन्वय है। वर्तमान में उपलब्ध महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक है। महाभारत के अन्य प्राचीन नाम 'जय', 'भारत', 'शत–साहव्री संहिता' आदि है। अनुश्रुति के अनुसार व्यास जी ऋषि वशिष्ठ के पौत्र एवं पराशर के पुत्र थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के विविध रूपों अर्थात् गाथा, आख्यान, दानस्तुति आदि को लोप होने से बचाने हेतु उनका महाभात के रूप में संकलन किया।

महाभारत 18 पर्वों में विभाजित है। वे क्रम से आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेघ, आश्रमवासिक मौसल, महाप्रस्थानिक और स्वर्गारोहण कहलाते है। महाभारत का ही परिशिष्ट हरिवंश है जिसमें 12 हजार श्लोक है। इसकी रचना मूल रूप से कौरव एवं पांडवों के जीवन और युद्ध का वर्णन था, किन्तु उनके पूर्वजों के इतिहास के अतिरिक्त अन्य अनेक उपाख्यनों और संदर्भ कथाओं का समावेश महाभरत में मिलता है। आदिपर्व में चन्द्रवंश का इतिहास तथा कौरव–पाण्डवों के द्यूत क्रीड़ा, वनपर्व में पाण्डवों के वनवास, विराट पर्व में उनेक अज्ञातवास, उद्योगपर्व में कृष्ण के शक्ति प्रयत्न, भीष्म पर्व में गीता का उपदेश तथा युद्ध में भीष्म का शरश्य्या पर पड़ना, द्रोण पर्व में अभिमन्यु एवं द्रोण वध, कर्ण पर्व में कर्ण वध, शल्य पर्व में शल्य वध, सौपितक पर्व में अश्वत्थामा द्वारा पाण्डव पुत्रों की हत्या, स्त्री पर्व में स्त्रियों का विलाप, शान्ति एवं अनुशासिक पर्व में धर्म–नीति के वचन, अश्वमेघ पर्व में युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेघ यज्ञ करना, आश्रमवासिक पर्व में धृतराष्ट्र–गांधारी–कुंती आदि का वानप्रस्थ एवं मृत्यु, मौसल पर्व में यादव वंश का नाश, महाप्रस्थानिक एवं स्वर्गारोहण पर्व में पाण्डवों की हिमालय यात्रा तथा स्वर्ग गमन आदि कथानक वर्णित है। किन्तु इसके अतिरिक्त महाभारत अनेक वृतान्त कथाओं तथा आख्यान–उपख्यानों का भी संग्रह स्थल है। इसमें शकुन्तलोपाख्यान, मत्स्य–कथा, रामकथा, शिवि, सावित्री तथा नल के उपाख्यान प्राप्त होते है।

भारत के राजनैतिक–सांस्कृतिक परम्पराओं के ज्ञान की दृष्टि से महाभारत एक अद्वितिय ऐतिहासिक श्रोत है। इसमें राजधर्म को सभी वर्णों में श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि वर्णाश्रम धर्म के विविध उपधर्मों सहित जो अन्यान्य धर्म है, वे राजधर्म से ही सुरक्षित रह सकते हैं। राजधर्म को महाभारत में राजशास्त्र, राजनीति, दण्डनीति एवं राजोपनिषद आदि नामों से अभिहित किया गया है। राज्य के सात अंगों के चर्चा भी महाभारत में मिलती है। राजा को चाहिए कि इन सातों की अवश्य रक्षा करें। राज्य के ह्रास, वृद्धि, उन्नति तथा अन्तर्राज्य संबंधों की सफलता इन्हीं की संरक्षा पर आश्रित है। राजा एवं राज्य के विविध उद्देश्यों पर महाभारत में विस्तार से चर्चा मिलती है।

13.8 पुराण

पुराण भारतीय साहित्य की गौरवशाली परम्परा के अप्रतिम कड़ी है। ये भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को जानने के महत्वपूर्ण साधन है। प्रमुख पुराणों की संख्या 18 है – 1. मत्स्य, 2.मार्कण्डेय, 3.भविष्य 4. भागवत, 5.ब्रह्मण्ड, 6. ब्रह्मवैवर्त , 7.ब्रह्मा, 8.वामन, 9.वराह, 10.विष्णु, 11.वायु, 12.अग्नि, 13.नारद, 14.पद्य, 15.लिंग, 16.गरूड़, 17. कूर्म तथा 18.स्कन्द पुराण। इसके साथ ही अनेक उपपुराण भी है। पुराणों के पाँच विषय बताए गए हैं– 1. सर्ग अर्थात् जगत की सृष्टि, 2. प्रतिसर्ग अर्थात् प्रलय के बाद जगत की पुनः सृष्टि 3. वंश अर्थात् ऋषियों एवं देवताओं की वंशावली, 4. मन्वन्तर अर्थात् सृष्टि के विविध काल मान; मन्वन्तर, 4 होते है और प्रत्येक मन्वन्तर के अधिपति एक विशिष्ट मनु हुआ करते है। 5. वंशानुचरित– प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा की दृष्टि से यह अंश अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें वंश खंड में उत्पन्न वंश धरों का तथा मूल पुरूष राजाओं का विवरण वर्णित हैं। यहाँ मनुष्य वंश में जन्म लिए हुए महर्षियों एवं राजाओं का विवरण भी दिया गया है। इन राजनैतिक विवरणों के साथ ही सांस्कृतिक इतिहास से संबंध विविध विवरण की पुराणों में विस्तार से प्राप्त होते है।

पुराणों में राजवंशों की सूची का होना उनकी प्रमुख विशेषता है। जिन पुराणों की राजवंशावलियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है उनमें भविष्य पुराण, मत्स्य पुराण, वायु पुराण एवं ब्रह्माण्ड पुराण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। राजवंश की यह सूचियां व्यास द्वारा की गई भविष्यवाणियों के रूप में है। पुराणों में वर्णित प्रथम चार राजवंश की सूचियाँ हस्तिनापुर व कौशांबी के पौरवों, अयोध्या के इक्ष्वाकुओं, मगध के बृहद्रथों और प्रद्योतों से संबंधित है। इनमें अनुश्रुति पर आधारित तथा ऐतिहासिक दोनो ही प्रकार के तथ्यों का समावेश है। यहाँ मुख्य रूप से जिन राजवंशो की सूचियाँ प्राप्त होती है, उनमें शिशुनाग, नन्द, मौर्य, कण्व व आंध्र प्रमुख है। इनके साथ–साथ आभिरों, शकों, यवनों, नागों, तुषारों, गरूड़ो, पुलिन्दो जैसी अनेक प्रजातियों एवं स्थानीय राजवंशों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ये सूचियां ईसा के बाद चौथी शताब्दी के आरम्भिक दशकों तक के काल के राजवंशों पर प्रकाश डालती है क्योंकि यह उल्लेख प्राप्त होता है कि प्रयाग, साकेत और मगध पर गुप्तों का शासन था। इसमें जिन राजवंशों एवं राजाओं के विवरण उपलब्ध होते है, उनमें से कुछ के विवरण निम्नलिखित है।

शिशुनाग राजवंश : शिशुनाग ने गिरिव्रज पर शासन किया (40 वर्ष)। उसके बाद काकवर्ण (36 वर्ष), बिम्बसार (28 वर्ष), अजातशत्रु (25 वर्ष), उदायनि (40 वर्ष) और महानन्दिन (43 वर्ष) शासन किया। इनके शासन वर्षों के साथ ही उनके शासन काल का विवरण भी पुराणों से प्राप्त होता है। कुणाल (8 वर्ष); दशरथ (8 वर्ष); संप्रति (9 वर्ष); शालिशुक (13 वर्ष) एवं बृहद्रथ (70 वर्ष) ने शासन किया। मौर्य वंश के शासकों ने मगध साम्राज्य को एक विस्तृत क्षेत्र में प्रसारित कर दिया।

नन्द राजवंश : नंद वंश का संस्थापक महापद्मनन्द (88 वर्ष) और बारी–बारी से उसके आठ पुत्र (12 वर्ष) शासन किया।

मौर्य राजवंश : नन्द राजवंश का अन्त कर चन्द्रगुप्त मौर्य (24 वर्ष) ने इस वंश की स्थापना की। उनके पश्चात् बिन्दुसार (25 वर्ष), अशोक (36 वर्ष)

शुंग राजवंश : सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने बृहद्रथ मौर्य को मारकर इस वंश किया एवं 36 वर्ष शासन किया। उनके पश्चात् अग्निमित्र (8 वर्ष); वसुमित्र (10 वर्ष) और देवभूति (10 वर्ष) शासन किया।

कण्व राजवंश :वासुदेव कण्व ने देवभूति का अन्त कर इस वंश की नींव रखी और 45 वर्षों तक इस वंश के शासकों ने पाटलिपुत्र पर शासन किया।

आंध्र राजवंश :पुराणों में इस वंश के तीस राजाओं का उल्लेख प्राप्त होता है जिन्होंने कुल 460 वर्षों तक शासन किया। इस वंश के महत्त्वपूर्ण शासकों में सिमुक (23 वर्ष); शातकर्णी (56 वर्ष); पुलुमावी (36 वर्ष); हाल (5 वर्ष); गौतमीपुत्र शातकर्णी (21 वर्ष) एवं यज्ञश्री शातकर्णी (29 वर्ष) की गणना होती है।

13.8.1- पुराण का ऐतिहासिक महत्व

पुराणों में वर्णित राजकुलों की वंशावलियों से प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा की जानकारी प्राप्त होती है। इस विवरण के बिना महाभारत युद्ध के समय से छठीं शताब्दी ई0पू0 तक सम्पूर्ण कालखण्ड का एक सिलसिलेवार विवरण प्रस्तुत कर पाना सम्भव नहीं था। एफ0ई0 पार्जिटर व हेमचन्द्र रायचौधरी ने अत्यन्त ही श्रमपूर्वक इस कालखण्ड

के इतिहास को व्यवस्थित करने का कार्य किया। ई0पू0 छठीं शताब्दी से लेकर चतुर्थ शती ई0 तक इतिहास के निर्माण में भी पौराणिक सूचियों एवं ज्ञान एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

पुराणों से धार्मिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। विशेष रूप से चतुर्थ शती ई0 से लेकर दसवीं शती ई0 तक के धार्मिक संप्रदायों के अध्ययन की दृष्टि से पुराण अत्यन्त उपयोगी है। इसके अतिरिक्त पुराणों में धर्मशास्त्रों से प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक सामाग्री के दर्शन होते हैं। यह सामग्री मूल रूप से आचार, व्यवहार और प्रायश्चित से संबंधित है। पुराणों में प्राचीन भूगोल से संबंधित जानकारी 'भुवन–कोश' नामक खण्ड से प्राप्त होता है। पुराणों में भूमण्डल की द्विविध कल्पना प्राप्त होती है–चतुर्द्वीपा वसुमती तथा सप्तद्वीपा वसुमती। वसुमती द्वीपमयी है और चारों ओर से समुद्र से घिरी है। भारतवर्ष जम्बूद्वीप के रूप पहचाना जा सकता है। सम्राट भरत के शासन के कारण यह देश भारत कहलाने लगा। इसका प्राचीन नाम अजनाभ था, जिसका शाब्दिक अर्थ है–अज (ब्रह्मा) की नाभि से उत्पन्न होने वाला (नाभ)। पुराणों में भारत के निवासियों पर विस्तार से विचार किया गया है। भारतवर्ष के निवासियों को विशिष्ट सद्गुणों से युक्त बताया गया है। भारतीय पर्वतों एवं नदियों का भी पुराणों में विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। पर्वत के दो प्रकार वर्णित हैं–कुल पर्वत एवं दूसरे अनेक समीपस्थ अपेक्षाकृत छोटे पर्वत। कुल पर्वतों की संख्या सात बताई गई है–महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान, हैमवत, विन्ध्य एवं परिपात्र। हिमालय का वर्णन पुराणों में बड़े ही विस्तार एवं मनमोहक ढंग से किया गया है। यह भारत की प्रमुख नदियों के उद्गम स्थल के रूप में वर्णित है। इसके साथ अनेक देवों एवं ऋषियों का निवास स्थान भी इस पर्वतमाला में बताया गया है।

पुराणों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता है कि कुल पर्वत भारतीय इतिहास के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हें। पुरणों में पर्वतों के बाद नदियों के भौगोलिक विवरण प्राप्त होते हैं। गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, सरयू, कावेरी आदि नदियों की महत्ता पर पुराणों में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। पुराणों के अनुसार ये नदियां संपूर्ण जगत की माता हैं। पौराणिक नदियों में गंगा को सबसे अधिक महत्त्व प्राप्त था। इसका महत्त्व भौगोलिक, आध्यात्मिक एवं आधिदैविक सभी रूप में था। यह नदी अनेक महत्त्वपूर्ण सहायक नदियों एवं संगम स्थलों के लिए भी विख्यात थी। सिन्धु एवं सरस्वती नदी का भी पुराणों में विशद विवरण प्राप्त होता है। पुराणों में प्राचीन भारतीय धर्म एवं सामाजिक व्यवस्था पर भी विस्तार से प्रकाश पड़ता है। इसके साथ विज्ञान के प्राचीन मान्यताओं के स्रोत के रूप में पुराणों का अनुशीलन आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के निर्माण में पुराणों को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है।

13.9 सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के विषय में विद्वानों के एक वर्ग की मान्यता रही है कि प्राचीन भारतीयों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव था, किन्तु वर्तमान में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रियों एवं आधुनिक इतिहासकारों के अनुशीलन के पश्चात् उपर्युक्त दृष्टिकोण को स्वीकार करना संभव नहीं है। हमें वैदिक इतिहास परम्परा में अनेक मानवों एवं शासकों के ऐतिहासिक उपलब्धियों की जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक इतिहास की प्रमुख परम्पराएँ जैसे गाथा, नाराशंसी, दानस्तुति, आख्यान एवं पुराण कालान्तर में ऐतिहासिक साहित्य के निर्माण की आधारभूमि बनी। महाकाव्यों में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं से संबंधित आधारभूत सामाग्री प्राप्त होती है। भारत के नैतिक आधारभूमि के विकास में रामायण की भूमिका केन्द्रीय है। इसी प्रकार प्राचीन भारतीय राजनैतिक आदर्श के विकास में महाभारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुराण तो भारतीय इतिहास निर्माण की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। इनमें सृष्टि, प्रतिसृष्टि, वंश, वंशानुचरित और मनवन्तर के परिधि में सृष्टि से लेकर प्रलय तक के अनुक्रमों पर चर्चा की गई है। आधुनिक वैज्ञानिक विकास के साथ अनेक पौराणिक मान्यताओं का खण्डन हुआ है। इसके बावजूद पुराण प्राचीन भारतीयों के तत्कालीन ज्ञान–विज्ञान की स्थिति के जानने के एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

13.10 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999

- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)
- डॉ. विशुद्धानंद पाठक, उत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन,लखनऊ,2007

13.11 अभ्यास प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की वैदिक परम्परा पर प्रकाश डालिए।
2. प्राचीन भारतीय सांस्कृति इतिहास के निर्माण में महाकाव्यों के महत्त्व को उद्घाटित कीजिए।
3. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में पुराण के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के प्रमुख श्रोतों का वर्णन कीजिए।

इकाई 14 : भारत के प्राचीन इतिहासकार : बाण, विल्हण, जयानक, कल्हण

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 बाणभट्ट

- 14.3.1 जीवनवृत्त
- 14.3.2 बाणभट्ट का इतिहास वर्णन
- 14.3.3 इतिहास के रूप में बाणभट्ट

14.4 विल्हण

- 14.4.1 जीवन–चरित
- 14.4.2 विक्रमांकदेवचरित का विषयवस्तु
- 14.4.3 विल्हण का इतिहास लेखन
- 14.4.4 विल्हण के इतिहास–लेखन की ऐतिहासिकता

14.5 जयानक

- 14.5.1 जीवन–चरित
- 14.5.2 जयानक का इतिहास लेखन

14.6 कल्हण

- 14.6.1 जीवन–चरित
- 14.6.2 कल्हणकृत राजतरंगिणी के स्रोत
- 14.6.3 राजतरंगिणी का विषयवस्तु
- 14.6.4 कल्हण का इतिहास दर्शन

14.7 सारांश

14.8 सन्दर्भ पुस्तकें

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन की वैदिक परम्परा का कालान्तर में परिवर्तन हुआ। इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति बाणभट्ट कृत हर्षचरित में मिलता है। सातवीं सदी एवं उसके बाद ऐसे अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गए, जिन्हें संस्कृत साहित्य के इतिहास में चरित काव्यों की संज्ञाएँ दी गई है। वे दरबार में रहने वाले कृपापात्र, राज्याश्रयी एवं उपकृत कवियों द्वारा समकालीन शासकों के सीमित ऐतिहासिक वृत्तों पर लिखे गए हैं। इन वर्णनों से अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं एवं तथ्यों की जानकारी होती है। हालांकि इन वर्णनों में अलंकारिक वर्णनों एवं अप्रासंगिक तत्वों को भी पर्याप्त स्थान मिला होता है। लेकिन इनमें वर्णित प्रासंगिक घटनाओं एवं तत्वों से उस युग या व्यक्ति के इतिहास निर्माण से सहायता मिलती है। इन वर्णनों में पुष्टि अभिलेखों एवं विदेशी साक्ष्यों से भी होती है। हर्षचरित के अतिरिक्त अन्य चरित काव्यों में वाक्पति रचित गौड़वहो, पद्मगुप्त परिमल रचित नवसाहसांक चरित, विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित, संध्याकरनंदी कृत रामपालचरित और जयानक भट्ट कृत पृथ्वीराजविजय प्रमुख है। प्राचीन भारतीय

ऐतिहासिक काव्य परम्परा में कल्हण रचित राजतरंगिणी सबसे विशिष्ट स्थान रखता है। भारतीय तथा पाश्चात्य इतिहासकारों में इस ग्रन्थ की अत्यधिक प्रशंसा की है। चरित काव्यों में जहाँ केवल एक–एक शासकों के ऐतिहासिक वृन्त वर्णित है, वहीं राजतरंगिणी में पौराणिक इतिवृत्त से 12वीं सदी तक के राजाओं के क्रमवार विवरण उपलब्ध है। इसका लेखक कल्हण न तो किसी शासक की कृपा का आकांक्षी था न किसी राजदरबार में उसका निवास था। उसने ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण यथासम्भव निष्पक्षताके साथ उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। इस इकाई में प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन परम्परा के प्रतिनिधि इतिहासकार के रूप में बाण, विल्हण, जयानक एवं कल्हण के इतिहास लेखन का अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप निम्नलिखित तथ्यों से अवगत होंगे–

- प्राचीन भारतीय चरित इतिहास लेखन की विशेषताएं
- प्राचीन भारतीय चरित इतिहास लेखन के प्रमुख दोष
- प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के प्रमुख विषय वस्तु
- राजतरंगिणी का ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में विशिष्टता

14.3 बाणभट्ट

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में बाणभट्ट का विशिष्ट स्थान है। बाणभट्ट रचित हर्षचरित के साथ भारतीय इतिहास लेखन का एक ऐसा अध्याय प्रारम्भ होता है जिसमें चरित काव्य नामक प्रभूत ऐतिहासिक साहित्य का निर्माण हुआ। ये ग्रन्थ राजदरबारों में निवास करने वाले उन आश्रयगाही कवियों द्वारा लिखे गये जो राजाओं की छत्र छाया में निवास करते थे और स्वाभाविक रूप से उनके प्रशंसक होते थे। इन रचनाओं का उद्देश्य आश्रयदाता राजाओं के राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत क्रियाकलापों का वर्णन करता था।

14.3.1–जीवनवृत्त

हर्षचरित के प्रथम तीन उच्वासों में बाणभट्ट की पारिवारिक पृष्ठभूमि निवास स्थान, भौगोलिक और प्राकृतिक विशेषताओं की जानकारी प्राप्त होती है। बाणभट्ट के पूर्वज मूलरूप से श्रावस्ती प्रदेश के निवासी थे जो कालान्तर में बिहार में सोन नदी के तट पर स्थित प्रीतिकूट में जाकर बस गए। उनका परिवार अग्रहार रूप में संभवतः विशाल भूखण्ड का स्वामी था। उनके घर पर अनेक विद्यार्थियों के निःशुल्क भोजन एवं अध्ययन की व्यवस्था रहती थी। उनके माता–पिता के देहान्त उनके बचपन में ही हो गया। अतः उन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं रहा और उनका संग साथ बुरे मित्रों के साथ हो गया। इस कुसाथ के फलस्वरूप उन्होंने अनेक बुरी लतों को अपना लिया। फलतः उनकी बदनामियाँ बढ़ी। बाणभट्ट की विशिष्टता यह है कि उन्होंने अपने गलतियों का स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। किन्तु उन्हें अपने उच्च पारिवारिक संस्कारों का ख्याल आया। अतः उन्होंने बुरी संगत को त्याग दिया तथा विद्या अध्ययन में लग गए। शीघ्र ही उनकी मेघा और विद्वता की सूचना हर्ष तक पहुँचने लगी। किन्तु उनकी बुरी आदतों की भी सूचना हर्ष को थी। लेकिन बाणभट्ट के पारिवारिक शुभचिन्तक एवं हर्षवर्धन के दरबार में रहने वाले कृष्ण नामक व्यक्ति ने हर्षवर्धन से बाणभट्ट को मिलवाने की व्यवस्था की। हर्षवर्धन प्रारम्भ में बाणभट्ट से बहुत प्रसन्न नहीं था लेकिन बाणभट्ट के कार्य कौशल एवं विद्वता से प्रभावित होकर बाद में वह बाणभट्ट के प्रति सकारात्मक हो गया। बाणभट्ट ने हर्षचरित की रचना अपने छोटे भाईयों विशेषतः श्यामल के आग्रह पर अपने ही समय के शासक हर्ष के चरित को आधार बनाते हुए की थी।

14.3.2

बाणभट्ट का इतिहास वर्णन –हर्षचरित आठ उच्छवासों में लिखी गई है। इसमें हर्षवर्धन के शासन के आरम्भिक समय विवरण दिया गया है। इसके साथ वर्धन वंश के इतिहास की भी जानकारी इस ग्रन्थ से होती है। प्रथम अध्याय में लेखक के वंश का इतिहास है बाण लिखता है कि च्यवनऋषि और क्षत्रीय कुमारी से उत्पन्न दधीची एवं ज्ञान की देवी सरस्वती से शाश्वत का जन्म हुआ, जिसने अपने चचेरे भाई वत्स के लिए ''प्रीतिकूट'' नामक गाँव

च्यवनाश्रम (सोन नदी के तट) पर बसाया था। वत्स से वात्स्यायन वंश हुआ। बाणभट्ट का संबंध इसी वंश से था। अपने पूर्वजों के रूप में वह कुबेर, पाशुपत, अर्थपति एवं चित्रभानु का उल्लेख करता है। द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में हर्षवर्धन के साथ अपने परिचय तथा थानेश्वर का विवरण उपलब्ध कराता है।

शेष पाँच उच्छवासों में वह हर्ष के वंश से संबंधित विवरण उपस्थित करता है। इन घटनाक्रमों में हर्षवर्धन की बहन राजश्री का कन्नौज के मौखरी नरेश गृहवर्मन के साथ विवाह, पिता एवं थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्धन की मृत्यु, गृहवर्मन की मृत्यु और मालवा के राजा द्वारा राजश्री को कैदकर लिया जाना, भाई राज्यवर्धन का शत्रुओं के विरूद्ध अभियान एवं उसकी सफलता, गौड़ शासक शशांक द्वारा राज्यवर्धन की हत्या, राज्यश्री का कैद से निकलकर विंध्य पर्वतों को ओर भाग जाना, हर्ष द्वारा उसे ऐसे समय में खोज निकालना जब वह सती होने की तैयारी कर रही थी तथा राजश्री को लेकर गंगा के किनारे अपनी राजकीय छावनी में वापस लौट आना प्रमुख है। लेकिन अनेक इतिहासकारों का मानना है कि ऐसा मत उचित नहीं है। उनका मानना है कि बाणभट्ट उन अर्थों में इतिहास नहीं लिख रहा था, जिन अर्थों में वर्तमान में इतिहास को लिखा जाता है। वस्तुतः हर्षचरित एक काव्यग्रन्थ है। बाण को हर्षवर्धन के बहन राज्यश्री के मिलन के बाद का इतिहास लिखना ही नही था। उसे इसी सुखद अन्त तथा अपने अभियान में हर्षवर्धन की गौरवपूर्ण सफलता को दिखाना था, जिसके द्वारा उसने राज्य के गौरव को पुर्नस्थापित किया।

14.3.3–इतिहासकार के रूप में बाणभट्ट

यद्यपि हर्षचरित को उन अर्थों में इतिहास ग्रन्थ नहीं माना जा सकता जिन अर्थों में वर्तमान में इतिहास को लिया जाता है। परन्तु यह ग्रन्थ ऐतिहासिक तथ्यों का आधार बनाकर लिखा गया है तथा इसमें वर्णित घटनाक्रमों को अधिकांश इतिहासकारों ने वास्तविक माना है। अतः हम बाणभट्ट का एक इतिहास लेखक के रूप में मूल्यांकन कर सकते है और इस रूप में यह जब मूल्यांकन किया जाता है तो यह प्रतीत होता है कि एक इतिहासकार के रूप में उनमें गुण व दोष दोनों थे। बाण के वणर्नों को देखने से प्रतीत होता है कि उनके द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्य सत्यता से पूर्ण है। वस्तुतः बाण द्वारा वर्णित हर्ष के शासन के प्रारम्भिक घटनाक्रमों की पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है। बाण के वर्णनों से प्राप्त सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के तथ्य तत्कालीन समाज को जानने में महत्वपूर्ण साधन है। उनके ग्रन्थ समाज में सभी वर्गों के स्त्रियों एवं पुरूषों एवं उनके कार्यों का वर्णन है। उनके द्वारा हल जोतने, चावल, गेंहूँ व गन्ने की खेती का विवरण प्राप्त होता है। राज्यश्री द्वारा सती होने का प्रयास इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि तत्कालीन समाज में यह कुप्रथा प्रचलित थी।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि बाणभट्ट न सिर्फ उच्चकोटि के महाकवि और साहित्यकार थे बल्कि उच्चकोटि के इतिहासकार भी थे। उनके हर्षचरित में हर्षवर्धन के काल के राजनैतिक संबंध, विभिन्न शक्तियों का युद्धों के द्वारा एक–दूसरे की सत्ता हस्तगत करने का प्रयास, दरबारी षडयंत्र, हर्ष की राज्यप्राप्ति, राज्यविस्तार, ऐतिहासिक चरित्र–चित्रण, आदि तथ्य तो प्राप्त होते ही है, साथ ही उस युग की सामाजिक व्यवस्था, समाज में व्याप्त सती प्रथा जैसी कुरीतियाँ, आर्थिक जीवन के तत्त्व आदि भी प्राप्त होते है। परन्तु हर्षचरित में राजनीतिक घटनाओं के वर्णन में क्रमबद्धता में कमी तथा ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर गल्प और काल्पनिकता के समावेश से उसकी ऐतिहासिकता प्रभावित होती है। अनेक इतिहासकारों का मानना है कि हर्षचरित एक शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, लेकिन इसमें संदेह नहीं हैं कि बाण का उद्देश्य हर्षवर्धन के राजनैतिक जीवन का वर्णन करना था। अतः हर्षचरित को इतिहासोन्मुख रचना माना जा सकता है। इस प्रकार बाणभट्ट भी प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा में योगदान करने वाले विद्वान माने जा सकते है।

14.4 विल्हण

14.4.1 –जीवन चरित

प्राचीन भारतीय इतिहासकारों में विल्हण अपना विशिष्ट स्थान रखते है। इनका जन्म 1040 ई में कश्मीर के 'खोनमुख' में हुआ था। ये कौशिक गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम ज्येष्ठ क्लश एवं माता का नाम नागदेवी था। उनके पिता मध्यदेशीय ब्राह्मणों के परिवार से सम्बन्धित थे। उनका परिवार कुछ शताब्दियों पूर्व कश्मीर आकर बस गया था। राजतरंगिणी के अनुसार विल्हण के पूर्वज को गोनन्द वंश के गोपादिम ने मध्यदेश से लाकर कश्मीर में बसाया था, जोकि पवित्र अग्निहोत्री थे। विल्हण के पिता व्याकरण के सुप्रसिद्ध विद्वान थे तथा उनके भाई एक श्रेष्ठ कवि थे। विल्हण में स्वयं के बारे में लिखा है कि उसने अपने जन्मभूमि में ही प्राचीन पद्धतियों से सभी

शास्त्रों, व्याकरण–काव्य एवं वेदों का अवधन किया। प्रारम्भ से ही उनकी कविता लेखन में रूचि थी।

ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में कश्मीर राज्य में अशान्ति थी। सत्ता संघर्ष एवं बाह्य आक्रमण के कारण राज्य में अव्यवस्था का वातावरण था। ऐसी स्थिति में विल्हण को अपने राज्य में राजकीय संरक्षण मिलना अत्यन्त कठिन लगा। अतः संरक्षण एवं प्रसिद्धि के अन्वेषण में विल्हण ने अपने मातृभूमि कश्मीर का त्यागकर भारत के अन्य राज्यों में भ्रमण पर निकल पड़े। उन्होंने मथुरा, कान्यकुब्ज, प्रयाग, वाराणसी आदि स्थानों का भ्रमण किया। वाराणसी में उनकी मुलाकात कलचुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण से हुई, जो विल्हण को अपने दरबार में ले गए। वहाँ पर विल्हण ने राजा के राजकवि गंगाधर को शास्त्रार्थ में पराजित किया किन्तु उचित संरक्षण न मिल पाने के कारण 1071 ई में वहाँ से प्रस्थान किया। वहाँ से वे धारा होते हुए सोमनाथ पहुँचे, जहाँ चौलुक्य वंश का शासन था। यहाँ पर भी वे कुछ समय तक राजकवि के रूप में रहे एवं चौलुक्य नरेश कर्ण के कथानक के आधार पर 'कर्णसुन्दरी' नामक ग्रन्थ की रचना की। यहाँ भी उन्हें उचित संरक्षण नहीं प्राप्त हुआ। अतः वे दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल गए और विभिन्न पवित्र स्थलों का दर्शन करते हुए रामेश्वरम् पहुँचे। रामेश्वरम से लौटकर चालुक्यों की राजधानी कल्याणी आए और यहीं चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ ने उनका बहुत सम्मान किया एवं उन्हे 'विद्यापति' की उपधि प्रदान की। इस प्रकार उन्हें उचित राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। यही पर उन्होंने 'विक्रमांकदेव चरित' नामक ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की।

14.4.2 –विक्रमांकदेवचरित का विषयवस्तु

विल्हण की कीर्ति का आधार 'विक्रमांकदेव चरित' चालुक्य शासक विक्रमादित्य षष्ठ की उपलब्धियों का चित्रण है। विक्रमादित्य षष्ठ के सिंहासन प्राप्ति के प्रयास से चक्रवर्ती बनने तक की विभिन्न घटनाओं का चित्रण इस ग्रन्थ में किया गया है। इस प्रयास में विभिन्न प्रतीकों एवं लाक्षणिक संकेतों द्वारा दैवी विधानों एवं आकस्मिक घटनाओं के माध्यम से कथा को संयोजित किया गया है। विल्हण ने चालुक्य वंश की कुलोत्पत्ति का भी उल्लेख किया है। वह चालुक्यों के मूल पुरुष को अयोध्या के मानव (मनु से उद्भूत) राजवंश के सूर्यकुल से जोड़ता है और उन्हें मानव्य कहते हुए सूर्यवंशी और हरितिगोत्री बताता है। वह उनके पूर्व पुरुष का नाम हारीत बताता है। इस प्रकार चालुक्यों का उत्तर भारतीय नगर अयोध्या से ही दक्षिण भारत की ओर जाना संकेतित होता है।

14.4.3–विल्हण का इतिहास लेखन

विल्हण ने अपन इतिहास लेखन में चरित काव्य लेखन परम्परा को अपनाया है। इस काल के इतिहास लेखन में नायकों को प्राचीन महान अवतार पुरुषों के समकक्ष दिखाया जाता था। इस ग्रन्थ में भी विक्रमादित्य षष्ठ को राम का अवतार बताया गया है। विल्हण ने अपने नायक मेंउन सभी गुणों का समावेश किया जो कि एक व्यक्ति के चरित को उदात्त बनाता है। विल्हण ने अपने नायक के जन्म को भी दैवी विधानों के अन्दर नियोजित करने का प्रयत्न किया है। सोमेश्वर प्रथम को एक पुत्र की उत्कट अभिलाषा थी। उन्होंने अपने मंत्रियों को कुछ समय के लिए राज्य का कार्यभार सौंपकर अपनी पत्नी सहित शिव के मंदिर में जाकर, भूमि पर सोकर, शिव की उपासना की। एक दिन जब वह शिव पूजा में तल्लीन थे, तभी उन्होंने एक दैवी आवाज सुनी कि उन्हें तीन पुत्रों की प्राप्ति होगी। प्रथम और तृतीय पुत्र अपने कर्मों के कारण राजपरिवार में जन्म लेंगे किंतु द्वितीय पुत्र मेरी कृपा से राम के समान प्रतापी होगा और राज्यश्री को समुद्र पार से प्राप्त करेगा। कालान्तर में सोमेश्वर प्रथम की तीन पुत्रों की प्राप्ति हुई। प्रथम पुत्र सोमेश्वर द्वितीय के रूप में हुआ। द्वितीय पुत्र विक्रमादित्य तथा तृतीय पुत्र के रूप में जयसिंह का जन्म हुआ। विक्रमादित्य के जन्म के समय अनेक प्रकार के दैवीय शुभ लक्षणों के दर्शन हुआ। इसमें आकाश से पुष्प वर्षा तथा इन्द्र द्वारा दुन्दभी बजाने का उल्लेख विल्हण ने किया है।

सोमेश्वर प्रथम के पश्चात सोमेश्वर द्वितीय शासक बनता है। सोमेश्वर द्वितीय ने तो प्रारम्भ में ठीक से शासन किया किन्तु विल्हण के अनुसार बाद में वह शासन में शिथिलता बरतने लगा। अतः विक्रमादित्य राज्य की जनता के हित एवं भगवान् शिव के अनुदेशों के अनुपालन में भाई सोमेश्वर द्वितीय के विरूद्ध युद्ध करना पड़ा एवं उसे बंदी बनाना पड़ा। विल्हण अपने महाकाव्य में स्थान–स्थान अपर अपने नायक विक्रमादित्य षष्ठ को अतिरिक्त महत्त्व देते हुए दिखाई पड़ता है। अपने संरक्षक नरेश के सिंहासन प्राप्ति एवं चक्रवर्ती बनने की श्रेष्ठता को स्थापित करने हेतु विल्हण ने लाक्षणिक प्रयोगों एवं प्रतीकों द्वारा विक्रमादित्य षष्ठ के चरित्र को महान एवं सामेश्वर द्वितीय के चरित्र को हीन प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। विक्रमादित्य के पिता सोमेश्वर प्रथम ने उनके गुणों एवं पराक्रम से प्रसन्न होकर जब उन्हें युवराज घोषित कर दिया, उस अवसर पर अपने आदर्श चरित्र को दिखाते हुए उत्तराधिकार का पद अस्वीकार कर दिया। विल्हण का यह वर्णन विक्रमादित्य के चरित्र को अतिरिक्त महत्त्व देने का ही परिणाम है। विल्हण

ने विक्रमादित्य के पक्ष में इस प्रकार के वर्णन किए है कि उसमें कोई दुर्गुण ही नहीं है। विल्हण के इस महाकाव्य में तत्कालीन दरबारी जीवन के अन्य पक्षों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इन चित्रणों में प्रकृति चित्रण, मान व स्वभाव की बारीकियों के उद्‌घाटन; राजाओं द्वारा दिग्विजय यात्राए; स्वयंवर चर्चाएँ, उन स्वंयवरों के द्वारा विवाह और उनके माध्यम से राज्यलक्ष्मी की प्राप्ति सहित काव्य की अंतिम परिणति आदि प्रमुख है। उनके ये वर्णन संस्कृत साहित्य के परम्परागत महाकाव्यों के समान है।

14.4.4–विल्हण के इतिहास–लेखन की ऐतिहासिकता

विल्हण ने 'विक्रमाकदेव चरित' के लेखन में अपने नायक विक्रमादित्य के चरित्र को महान सिद्ध करने तथा सोमेश्वर द्वितीय के चरित्र को हीन प्रमाणित करने हेतु अनेक अनैतिहासिक प्रसंगों की सहायता लेकर इस कार्य को पूर्ण किया है। लेकिन उनका यह प्रयास अन्य साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित नहीं होता है। पिता सोमेश्वर द्वारा विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन, सोमेश्वर द्वितीय की दुष्टता, विक्रमादित्य का क्षुब्ध होकर अपने भाई जयसिंह के साथ दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान, जयकेशिन से उपहार प्राप्त करना, चोल कन्या से विवाह, राजिग–सोमेश्वर द्वितीय द्वारा सम्मिलित रूप विक्रमादित्य से युद्ध करना, विक्रमादित्य का विजयी होना और सोमेश्वर का बंदी होना आदि का वर्णन ऐतिहासिक न होकर विल्हण द्वारा रचित है। विल्हण ने विक्रमादित्य की योजनाओं को गुप्त रखकर उसके विरोधी पक्ष को ही ज्यादा उजागर किया है। विल्हण ने इस मत का बार–बार उल्लेख किया है कि सोमेश्वर द्वितीय इस लिए राजा बन गया कि विक्रमादित्य ने राजपद अस्वीकार कर दिया था। किन्तु एक कवि के रूप में विल्हण ने अधिक सफलता प्राप्त की है। वे वैदर्भी शैली का अनुकरण करते है तथा वर्णन में बड़े समासों से बचते है। उनकी भाषा साधारणतया सरल एवं स्पष्ट है। वे अत्यधिक अलंकारों के प्रयोग से बचते है। चतुर्थ सर्ग में आहवमल्ल की मृत्यु का चित्रण स्वाभाविक है। इसमें मरणासन्न नरेश की महत्ता और धैर्य का प्रभावोत्पादक चित्रण किया गया है। उनका शब्द–विन्यास भी अत्यनत शुद्ध है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि विल्हण को घटनाओं का यथारूप अंकन करने वाला इतिहासकार नहीं माना जा सकता। वह एक ऐतिहासिक कवि था, जिनके वर्णन का केंद्र ऐतिहासिक विवरण नहीं, अपितु ऐतिहासिक नायक विक्रमादित्य षष्ठ था। उसके चरित्र का उत्कर्ष और उसके सभी कार्यों को उचित ठहराना ही उसका मुख्य उद्‌देश्य था।

14.5 जयानक

14.5.1–जीवन–चरित–चाहमान इतिहास–लेखन एवं राजपूतकालीन ऐतिहासिक लेखन के अध्ययन के संदर्भ में जयानक का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जयानक ने 1192 ई. के लगभग पृथ्वीराजविजय नामक ग्रन्थ लिखा। यह ग्रन्थ चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय के उपलब्धियों को आधार बनाकर लिखा गया है। इस ग्रन्थ की अपूर्ण पाण्डुलिपि कश्मीर से प्राप्त हुई थी। इसमें जयानक का नाम भी स्पष्ट रूप उल्लिखित नहीं था। किंतु कश्मीर के ही कवि जयरथ ने 1200 ई. में अपने ग्रन्थ 'विर्मार्शणि' में पृथ्वीराजविजय के अंशों को उद्धृत किया है। आधुनिक इतिहासविदों हरविलास शरदा, गौरीशंकर ओझा, गोविन्द चन्द्र पाण्डे, विश्वम्भर शरण पाठक आदि ने पृथ्वीराज विजय को जयानक की कृति स्वीकार किया है।

जयानक कश्मीरी ब्राह्मण थे, जो सम्भवतः भार्गव कुल में उत्पन्न हुए थे। जयानक एक कवि, विद्वान व वैदिक परम्पराओं के ज्ञाता थे। उनका पालन–पोषण देवी शारदा ने किया था। जिसे ज्ञान का देवी कहते है। इससे प्रतीत होता है कि उनके माता–पिता का स्वर्गवास बाल्यकाल में ही हो गया था। पृथ्वीराज तृतीय के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जयानक कश्मीर से चाहमान दरबार में आ गए। यहाँ पर उनका अर्पूव स्वागत हुआ। जयानक को 'पृथ्वीराजविजय' लिखने की प्रेरणा पूर्व रचित 'जाम्बली विजय' 'युधिष्ठिर विजय' 'पाताल विजय' एवं बाल्मीकि से मिली। किन्तु जयानक ने पृथ्वीराज विजय की मूलकथा बाल्मीकि रामायण के आधार पर तैयार की है। इस ग्रन्थ में जयानक ने पृथ्वीराज को राम के रूप में विष्णु का अवतार माना हैं। इस अवतार का उद्‌देश्य म्लेच्छों को भारत भूमि से समाप्त करना है। इस ग्रन्थ में पृथ्वीराज द्वारा गोर शासक मुहम्मद गोरी को 1191 ई. परास्त करते हुए वर्णित किया गया है। इसके साथ ही पृथ्वीराज का विवाह गंगा मैदान की राजकुमारी तिलोत्तमा (संयोगिता) के साथ होने का अलंकारिक वर्णन है।

14.5.2–जयानक का इतिहास लेखन

जयानक ने अपने इतिहास लेखन में वंश परम्परा, चरित परम्परा एवं साम्राज्यवादी ऐतिहासिक लेखन परम्परा

का समन्वित प्रयोग किया है। जयानक ने चाहमान वंश का इतिहास विशेषकर पृथ्वीराज तृतीय के व्यक्तित्व और कृतित्व का ओजस्वी तरीके वर्णन किया है। अपने कृति में जयानक ने पृथ्वीराज तृतीय को अवतारी पुरुष के रूप में वर्णित किया है जिनके अवतरण का उद्देश्य तुर्कों का विनाश करना था। जयानक ने अपने कृति में पृथ्वीराज की तुर्कों पर विजय (तराइन का प्रथम युद्ध 1191 ई.) का विवरण इस रूप में उपस्थित किया है, मानो वह निर्णायक युद्ध रहा हो। जबकि हम जानते है कि वह युद्ध निर्णायक नहीं था, क्योंकि अगले वर्ष ही तुर्कों ने पृथ्वीराज तृतीय के साथ पुनः युद्ध किया जिसमें उनकी हार हुई। इतिहासकारों का मानना है कि जयानक अपने अपूर्ण काव्य को लेकर कश्मीर चला गया।

जयानक ने अपने ग्रन्थ में भारत पर तुर्कों के पूर्ववर्ती आक्रमणों का भी विवरण प्रस्तुत किया है। चाहमानों के साथ तुर्क आक्रमणकारियों का प्रथम संघर्ष विग्रहराज प्रथम के पुत्र गोपन्द्रराज के समय में हुआ था। तत्पश्चात् गूवक प्रथम अथवा गोविन्द राज, सिंहराज, दुर्लभ राज द्वितीय, गोविन्दराज द्वितीय, चामुण्डराज, पृथ्वीराज द्वितीय आदि शासकों के समय भी यह संघर्ष चलता रहा। चाहमान पश्चिमोत्तर भारत के सजग प्रहरी थे और उन्होंने अपने कर्तव्य का लगभग तीन सौ वर्षों तक निर्वहन किया।

जयानक ने अपने इतिहास लेखन में सांस्कृतिक इतिहास के तत्वों को भी पर्याप्त स्थान दिया है। चाहमान वंशावली का विवरण प्रस्तुत करते हुए उसमें उनके उत्पत्ति एवं जाति पर भी विचार किया गया है। प्रशासनिक विवरण उपस्थित करते समय शासन की प्रवृत्ति एवं उसके क्रिया–कलापों पर विचार किया गया है। तत्कालीन शासन पद्धति सामंती तत्वों पर आधारित थी। राजा निरंकुश हुआ करता था। लेकिन कर्त्तव्यों के निर्वहन में वह अनेक लोककल्याणकारी कार्यों को भी निरन्तर क्रियान्वित करता था। जयानक यह उल्लेख करता है कि राजा सुयोग्य व्यक्तियों को मंत्री, राजदूत एवं उच्च पदाधिकारियों के रूप में नियुक्त करता था। प्रशासन की सुविधा हेतु संपूर्ण प्रशासन को केंद्रीय प्रशासन एवं प्रांतीय प्रशासन में विभक्त किया जाता था। चाहमन शासकों ने न्याय प्रशासन को भी व्यवस्थित कर रखा था। अपराध की प्रकृति के अनुसार दण्ड देने की व्यवस्था थी। चेतावनी, अर्थदण्ड, शरीरिक दण्ड, कारावास और मृत्यु दण्ड देने की व्यवस्था थी।

जयानक ने तत्कालीन समय में सैन्य क्षमता के महत्त्व एवं भारतीय सैन्य अवस्था के प्रमुख तत्वों पर भी प्रकाश डाला है। जयानक के अनुसार पृथ्वीराज तृतीय ने शक्तिशाली सैन्य बल पर विशेष ध्यान दिया, जो आक्रमणात्मक और रक्षात्मक दोनों प्रकार के युद्धों के लिए पूर्ण प्रशिक्षित थे। उनकी सेना में पैदल, अश्व, हस्ति, रथ, ऊट, बैलगाड़ी आदि सम्मिलित थे। पृथ्वीराज तृतीय सेना का सर्वोच्च सेनापति होते हुए भी स्वयं रणक्षेत्र में हाथी अथवा घोड़ा पर सवार होकर युद्ध का संचालन करते हुए अपने सैनिकों के सम्मुख आदर्श प्रस्तुत करता था। उनकी सैन्य एवं प्रशासनिक योग्यता को देखते हुए जयानके ने 'भारतेश्वर' की उपाधि से संबोधित करता है।

जयानक ने तत्कालीन समय में शिक्षा एवं मंदिरों की व्यवस्था का भी विवरण उपस्थित किया है। शिक्षा के प्रचार प्रसार के प्रशासन पर्याप्त व्यवस्था करता था। मंदिरों की देखभाल के लिए अनुदान दिया जाता था। ये मंदिर निःशुल्क शिक्षा देते थे। पृथ्वीराज तृतीय के दरबार में कवियों और विद्वानों को राज्याश्रय प्रदान किया गया था। यही कारण है कि देश के विभिन्न भागों से विद्वान और कवि पृथ्वीराज के दरबार में आए एवं उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की। उनके दरबार से संरक्षण प्राप्त विद्वानों में जयानक, चन्द्रबरदाई, बागीश्वर, जनार्दन जिनपाल सूरी, पद्मप्रभा सूरी आदि प्रमुख है।

जयानक ने अपने इतिहास लेखन की शैली में वर्णनात्मक पद्धति का विशेष उपयोग किया है। व्यक्तियों एवं घटनाओं के विवरण में कवि सुलभ कल्पनाओं और अतिमानवीय घटनाओं को पर्याप्त स्थान मिला है। चाहमानों की वंश परम्परा के लिए बिजैलिया अभिलेख का विवरण महत्त्वपूर्ण माना जाता है। लेकिन पृथ्वीराज विजय में चाहमानों का और विस्तृत विवरण प्राप्त होता है, जो राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जयानक नें राजाओं के युद्धों के साथ ही सांस्कृतिक कार्यों का भी विवरण उपस्थित करता है जैसे अजयराज द्वारा अजमेर को बसाना और अर्णोराज द्वारा पुष्कर का दुर्गीकरण इत्यादि। इस प्रकार जयानक का पृथ्वीराज विजय ग्रन्थ एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ में अनेक मानवीय घटनाओं के घटने के कारण के रूप में दैवीय हस्तक्षेप का योगदान माना गया है और इसमें चरित इतिहास परम्परा की सामान्य कमजोरियाँ निहित है फिर भी चाहमान वंश के इतिहास एवं भारत पर तुर्कों के आक्रमण का घटनाक्रम जानने का यह एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

14.6 कल्हण

14.6.1–जीवन–चरित–

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट लेखक का पद कल्हण को प्राप्त है। इनका जन्म 1100 ई. के लगभग प्रवरपुर (परिहासपुर) में हुआ था। ऐतिहासिक स्रोतों से जो विवरण प्राप्त होता है उसमें प्रतीत होता है कि इनका जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। कल्हण के पिता का नाम चंपक या चपणक था। ये कश्मीर के राजा हर्ष के मंत्री थे। हर्ष की मृत्यु के बाद कल्हण के पिता अपने पदभार से अलग हो गए। कल्हण ने स्वयं कभी किसी शासक के अधीन कोई मंत्री अथवा वैसा बड़ा पद प्राप्त किया हो, इसका भी काई प्रमाण नहीं प्राप्त होता। उसने अपने समकालिक शासक जयसिंह का जिस प्रकार से विवरण किया है, उससे भी यही प्रतीत होता है कि उसने किसी राजा के संरक्षण में कार्य नहीं किया था। कल्हण की कीर्ति का आधार उसकी ऐतिहासिक रचना *राजतरंगिणी* है। इसकी रचना उसने 1148 ई. में आरम्भ की थी और 1149 ई0 में उसने उसे समाप्त किया। आठवें तरंग के अन्त में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय जयसिंह कश्मीर का शासक था। कल्हण एक उच्चकोटि का कवि था और कवियों के लिए उसके मन में बहुत ही अधिक सम्मान एवं गौरवभाव था। कल्हण घटनाओं के विवरण में अच्छे–बुरें, नैतिक–अनैतिक, सही–गलत तथा गर्हित और उत्तम को वैसे ही तौलने का दावा करता है जैसे न्यायालय में बैठा हुआ एक न्यायाधीश अपने विवेक का प्रयोग करके निर्णय सुनाता है और सत्यवचन में सरस्वती जैसा आचरण करता है।

14.6.2–कल्हणकृत राजतरंगिणी के स्रोत

कल्हणकृत राजतरंगिणी से ज्ञात इतिहास के दो भाग है – एक तो इतिहास का वह परंपरागत भाग है, जो ग्रंथ के प्रथम तीन तरंगों में प्राप्त होता है, जिसें प्राचीन कहा गया है। दूसरा भाग चतुर्थ से आरम्भ होकर आठवें तरंग तक का है, जिसे कश्मीर के 'आधुनिक' रूप में इंगित किया गया है। प्राचीन इतिहास के स्रोत के रूप में ग्यारह लिखित इतिहासकृतियों का उल्लेख करता है। इसमें नीलमत पुराण का विशेष रूप से उल्लेख करता है। अन्य ग्रन्थों में क्षेमेन्द्र की नृपावली तथा हेलाराज की पार्थिवावली को उल्लेखनीय मानता है। राजतरंगिणी में उपलब्ध विवरणों से यह भी प्रतीत होता है कि उन्होंने रामायण, महाभारत, रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों का भी अध्ययन किया था। इसके साथ ही बाणभट्ट के हर्षचरित से भी वे परिचित थे। अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों और पुराणों के अतिरिक्त उन्होंने प्राचीन राजाओं के प्रशस्तिलेख, शिलालेख, सिक्कों आदि का भी प्रयोग अपने लेखन में किया है। कल्हण ने इन अभिलेखों का उपयोग राजाओं, रानियों, मंत्रियों तथा सेनापतियों द्वारा विभिन्न मतों जैसे बौद्ध, शैव, वैष्णव और सौर संप्रदाय से संबंध रखने वाले धार्मिक संस्थानों को दिए गए दानों एवं उपहारों को लेखबद्ध करने के लिए किया है।

14.6.3–राजतरंगिणी का विषयवस्तु

कल्हण को एक इतिहासकार के रूप में प्रतिष्ठित करने वाला ग्रन्थ राजतरंगिणी है। राजतरंगिणी का अर्थ है 'राजाओं की नदी'। यह एक लम्बा वर्णनात्मक काव्य है जिसमें आठ हजार संस्कृत श्लोक है। यह आठ तरंगों में विभाजित है। जिनके आकर–प्रकार परस्पर बहुत ही भिन्न है। कुछ अपेक्षाकृत छोटे है तो कुछ (जैसे सातवें और आठवें) बहुत ही विशालकाय हैं। प्रथम तीन तरंगों में कश्मीर के प्राचीन एवं परंपरागत इतिहास के विवरण है। उनमें प्राचीन परंपराओं, पुराकथाओं और पूर्वतिहास की अनुश्रुतिमूलक कथाओं के संग्रह है। ये कथाएँ जनमानस में रची–बसी थी और जिन्हें यहाँ के विद्वानों और लेखकों ने भी यथावत स्वीकार कर लिया था। वे जिन स्रोतों पर आधारित थे, वे न तो जाँचे–परखे गये थे और न कल्हण ने ही उनकी कोई गवेषणा की है। चौथे से छठे तरंग में कार्कोट एवं उत्पन्न वंश के इतिहास दिये गये है, जिनकी संरचना में कल्हण ने उन सभी स्रोतों का सहारा लिया है, जो शोध परक इतिहास लेखन हेतु आवश्यक है। सातवें और आठवें तरंग में प्रथम एवं द्वितीय लोहर वंश का इतिहास है। इनकी जानकारी के साधन कल्हण के पास इतने अधिक थे कि इन दोनों तरंगों का आकार पहले की तरंगों की काफी बड़ा हो गया है।कल्हण ने इस ग्रन्थ की रचना 1148 ई. में आरम्भ की तथा लगभग दो वर्षों में इसे पूर्ण किया। इसमें कश्मीर के आदिकाल से लेकर ग्रन्थ के रचना के समय तक के कश्मीर का इतिहास। संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में राजतरंगिणी एक मात्र ऐसा ग्रन्थ है जिसे स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक कृति माना जा सकता है। राजतरंगिणी कश्मीर के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक सूचनाओं का भंडार है। इसमें ब्राह्मण से लेकर अस्पृश्य चंडाल तक सभी वर्गों एवं वर्णों का उल्लेख प्राप्त हो जाता है। इसमें समकालीन स्त्रीं एवं पुरुषों के परिधान, खान–पान, उनके विश्वास एवं आस्था के विषय आदि विस्तार से प्रकाश डाला गया है। शहरों की स्थापना, पवित्र स्थलों एवं मठों का निर्माण, नास्तिकों एवं

मूर्तिभंजकों द्वारा उनका अपवित्रीकरण, युद्ध–नेताओं द्वारा युद्ध अभियानों के माध्यम से डर और आतंक पैदा करना, सूखा–बाढ़ और आगजनी आदि का विवरण भी इस ग्रन्थ में उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में ललितादित्य जैसे महत्त्वाकांक्षी योद्धा राजाओं का उल्लेख प्राप्त होता है तो साथ ही चंद्रापीड जैसे लोकोपकारी शासकों का भी उल्लेख तांत्रिकों एवं ब्राह्मणों के षड्यंत्र व विद्रोहों ने कश्मीर के शासकों शक्ति एवं मर्यादा को कम करके उन्हें राजनैतिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया। यद्यपि राजतरंगिणी में आर्थिक विषय सीमित रूप से उल्लिखित है किंतु दुर्भिक्ष, खाद्यवस्तुओं के मूल्य, करों की दर, मुद्रा और अनेक ऐसे आर्थिक विषय वर्णित है जिससे तत्कालीन आर्थिक जीवन की रूपरेखा पर प्रकाश पड़ता है। राजतरंगिणी में सामाजिक जीवन के विविध चित्र प्राप्त होते है। इस ग्रन्थ में प्राप्त विवरण से प्रतीत होता है कि कश्मीर का सामाजिक संगठन अपेक्षाकृत उदार था और जाति किसी असैनिक या सैनिक पद पर आसीन होने में बाधक नहीं था। डोम और ब्राह्मण दोनों एकसमान तरीके से सैनिक बन सकते थे। इसी प्रकार अन्तर्जातीय विवाह के उल्लेख भी राजतरंगिणी से प्राप्त होते है। योद्धा शंकरवर्मन की माता सामाजिक संगठन में निम्न स्थिति रखने वाले मद्य निर्माता की पुत्री थी। राजा चक्रवर्मन ने हांसी नामक एक डोम स्त्री से विवाह किया और उसे पररानी बनाया। स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर थी। स्त्रियों में परदा प्रथा का प्रचलन नहीं था, उनकी निजी अचल संपत्ति थी और वे अपने जमीन–जायदाद की देखभाल स्वयं करती थी। उनमें से कुछ ने सैनिक टुकड़ियों का नेतृत्व भी किया था। लेकिन सती प्रथा का प्रचलन कश्मीर में रही थी।

उसे कश्मीर के भौगोलिक स्थिति का भी अच्छा ज्ञान था। वह कश्मीर की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, ऋतुओं, वनस्पतियों, फसलों आदि का उल्लेख करता है। मेघवाहन, ललितादित्य, प्रवरसेन आदि राजाओं के दिग्विजय अभियान के संदर्भ में कल्हण ने भारत के भूगोल का परिचय प्रस्तुत किया है। उनके राजतरंगिणी में काशी, कन्नौज, अवन्ति, मथुरा, सौराष्ट्र, पुरी आदि नगरों का विवरण प्राप्त होता है। इसके साथ ही सिंधु, विवस्ता, काली, रेवा, गंगा, चन्द्रभागा नदियों की स्थिति एवं महात्म्य का उल्लेख भी कल्हण ने किया है। कल्हण ने कश्मीर की धार्मिक स्थिति का भी विवरण उपस्थित किया है। कश्मीर के प्रारम्भिक समय से लेकर 12 वीं शताब्दी तक कश्मीर में हुए धार्मिक परिवर्तन के विषय में कल्हण प्रभूत सूचनाएं उपलब्ध कराता है। वह सभी संप्रदायों के प्रति आदर एवं श्रद्धा प्रकट करता है। वह स्वयं शैव था लेकिन अन्य संप्रदायों के प्रति कहीं भी कट्टरता नहीं प्रदर्शित किया है।

14.6.4–कल्हण का इतिहास दर्शन

राजतरंगिणी के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि कल्हण ने इस ग्रन्थ के लेखन में अपने पूर्व के एवं समकालीन स्रोतों जैसे– पत्रों, शासनादेशों, अभिलेखों, मुद्राओं, प्राचीन स्मारकों तथा राजकीय अभिलेखों में सुरक्षित राजावलियों एवं वंशावलियों का उपयोग किया है। कल्हण ने इन स्रोतों का उल्लेख अपने ग्रन्थ के आरम्भ में किया है। कुछ श्रोतों की वह आलोचना भी करता है, जैसे सुव्रत एवं क्षेमेन्द्र की नृपावली। उसने केवल तथ्यों के संग्रह और तिथिक्रमों को ही विवरण का आधार नहीं बनाया, बल्कि मंदिरों एवं मठों में रखे गए संलेखों, अभिलेखों एवं प्रशस्तियों को भी उपयोग किया है। कल्हण का उद्देश्य आदिकालीन दंतकथाओं से लेकर अपने समय तक के कश्मीर का एक विस्तृत इतिहास लिखने का था। वह अपने लेखन में साहित्यिक सौन्दर्य एवं ऐतिहासिक सत्य का समन्वय करना चाहता था। उसने सरल संस्कृत का प्रयोग करते हुए घटनाओं का विस्तृत एवं सूक्ष्म विश्लेषण किया है। और कश्मीर के प्रत्येक शासक के राज्यारोहण की तिथियों को दिया है। पर वह सभी घटनाओं की तिथि नहीं दे पाया है। इतिहास के विषय में उसकी मान्यता थी कि इतिहास से अधिकाधिक व्यवहारिक शिक्षा प्राप्त हो सकती है। इतिहास लेखन के दर्शन के संबंध में कल्हण कहता है कि 'मोह तथा विमोह' दोनों का त्याग करते हुए अतीत का वर्णन करने में कवि की वाणी अविचलित रहनी चाहिए। निश्चय ही इतिहाकार की योग्यता का यह पैमाना वर्तमान में अनुकरणीय है।

कल्हण के राजरंगिणी के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि युगीन संदर्भो की दृष्टि से कल्हण की इतिहास लेखन शैली में एक नवीन प्रवृत्ति प्राप्त होती है जो अनेक दृष्टियों से इतिहास के आधुनिक मानकों एवं तत्त्वों को अपने में समेटे हुए है। कल्हण के पास समय और कालक्रम का अपना एक स्पष्ट विचार था। उसने तत्कालीन ताम्रपत्रों एवं मुद्राओं से संबंधित जानकारी का भी अपने ग्रन्थों में प्रयोग करता है। उसने पूर्ववर्ती साहित्यिक ग्रन्थों का भी समुचित अध्ययन किया था तथा घटनाओं को कारण–प्रभाव के रूप में देखता था। वह राजाओं के अच्छे–बुरे, दोनों कर्मों को तटस्थता के साथ प्रस्तुत करता था। उसके ग्रन्थ में केवल कुलीन ही नहीं सामान्य जन भी स्थान पाते है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि कल्हण के रूप, प्राचीन भारतीयों के मध्य एक आधुनिक दृष्टि का इतिहासकार बारहवीं सदी ई. में निवास करता था।

14.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने एक विशिष्ट परंपरा में अपने अतीत को सँजोये रखने का प्रयत्न किया है। यह परंपरा मिथक, साहित्य, लोकपरंपरा, लोकज्ञान एवं इतिहास के अनन्य संबंध पर आधारित है। यह समकालीन समय में अन्य देशों में प्रचलित ऐतिहासिक परम्पराओं से अनेक अर्थों में भिन्नता रखती है। प्राचीन भारत के विशिष्ट चरित लेखक बाणभट्ट ने अपने लेखन में राजनैतिक इतिहास के साथ ही सांस्कृतिक इतिहास के अनेक तत्वों को स्थान दिया है। इनके वर्णन में ऐतिहासिक यथार्थता का पर्याप्त ध्यान रखा गया है। दूसरे चरित लेखक विल्हण का इतिहास लेखन ऐतिहासिक नाटकीयता एवं अलंकारिक वर्णनों से पूर्ण है। इन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को पर्याप्त मनचाहा रूप दिया है। तीसरे इतिहासकार जयानक ने अपेक्षाकृत संतुलित तरीके से अपने नायक पृथ्वीराज चौहान का चरित लेखन करने का प्रयास किया है। लेकिन इनके वर्णन में भी ऐतिहासिक तथ्यों के साथ तोड़–मरोड़ दिखाई देता है। प्राचीन भारतीय इतिहासकार कल्हण का वर्णन समकालीन दृष्टि से एक आदर्श वर्णन कहा जा सकता है। उसने यथासंभव तथ्यपरक इतिहास प्रस्तुत किया है तथा उनके विश्लेषण में भी पर्याप्त सावधानी बरती है।

14.8 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)
- डॉ. विशुद्धानंद पाठक, उत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन,लखनऊ,2007

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. इतिहासकार के रूप में बाणभट्ट का मूल्यांकन कीजिए।
2. एक इतिहासकार के रूप में विल्हण का मूल्यांकन कीजिए।
3. चाहमान इतिहास के संग्रहकर्त्ताएवं पृथ्वीराज चौहान के जीवनीकार के रूप में जयानक के वर्णन के महत्त्व का विश्लेषण कीजिए।
4. प्राचीन भारत के सर्वोत्कृष्ट इतिहासकार के रूप में कल्हण के रचना शैली पर प्रकाश डालिए।

इकाई–15 : प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकार : आर.जी. भंडारकर, के. पी. जायसवाल, आर.सी.मजुमदार, ए.के. कुमारस्वामी, डी. डी. कोसाम्बी

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर

15.3.1 भण्डारकर के ऐतिहासिक कार्य

15.3.2 ऐतिहासिक पद्धति

15.4 काशी प्रसाद जायसवाल

15.4.1 इतिहास दृष्टि

15.4.2 प्रमुख कृतित्व

15.5 आर. सी. मजुमदार

15.5.1 शोध पद्धति

15.5.2 प्रमुख अवदान

15.6 आनन्द केंतिश कुमारस्वामी

15.6.1 शोध पद्धति

15.6.2 प्रमुख कार्य

15.6.3 कला संबंधी विचार

15.7 डी. डी. कोसांबी

15.7.1 इतिहास की परिभाषा

15.7.2 प्रमुख अवधारणाएँ

15.8 सारांश

15.9 सन्दर्भ पुस्तकें

15.10 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

आधुनिक काल में भारत में इतिहास लेखन का प्रारम्भ उपनिवेशवादी बोध के अन्तर्गत आरम्भ हुआ। इसी बोध ने भारत में परवर्ती इतिहास लेखन की पृष्ठभूमि तैयार की। अठारहवीं शताब्दी के उतरार्द्ध में ब्रिटिश सत्ता का औपनिवेशिक ढांचा भारत में स्थापित होने की प्रक्रिया के क्रम में यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय इतिहास की मीमांसा की। लेकिन इनकी दृष्टि साम्राज्यवादी दृष्टि से प्रभावित थी। इसके प्रतिरोध में अनेक भारतीय इतिहासकारों ने इतिहास को नवीन दृष्टि से देखना आरम्भ किया। इन लोगों ने यूरोपीय इतिहास जगत में इतिहास लेखन के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों से प्रभावित होकर इतिहास लेखन का कार्य किया। इसके साथ ही भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के बारे में उनकी दृष्टि सहानुभूति पूर्ण थी। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के उज्ज्वल पक्षों को सामने लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। कालान्तर में मार्क्सवादी परम्परा से प्रभावित होकर इतिहास लेखन कार्य किया। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के इतिहास लेखन के सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण पर विशेष बल दिया गया। इस खण्ड में सम्मिलित इतिहासकार आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन की प्रमुख विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात विद्यार्थी निम्नलिखित विषयों के बारें मे जानने के योग्य हो जाएंगे –

- इतिहास लेखन की विधा में आधुनिक भारतीय इतिहासकारों की भूमिका
- आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन में विविध ऐतिहासिक विचारधाराओं की भूमिका
- प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहास लेखन में नवीन प्रविधियों के प्रयोग का प्रभाव
- राष्ट्रवादी इतिहासकारों के प्रमुख विश्लेषण बिन्दु
- भारत में मार्क्सवादी इतिहासकारों के प्रमुख विश्लेषण बिन्दु।

15.3 रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर (1837–1925)

प्राचीन भारतीय इतिहासकार एवं पुरातत्व शास्त्री आर.जी. भण्डारकर ने प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने साम्राज्यवादी विचारधारा के प्रतिरोध में भारतीय भूमि के सांस्कृतिक दृष्टिकोण को उजागर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास के साहित्य एवं पुरातत्व संबंधी साक्ष्यों का गहन विश्लेषण कर इतिहास लिखने की परम्परा का सूत्रपात किया।

रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का जन्म 1837 में महाराष्ट्र प्रान्त के रत्नागिरि जिले में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा एल्फिस्टन कालेज, बम्बई में हुई थी। बम्बई विश्वविद्यालय से स्नातक एवं परास्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। शिक्षक एवं प्रशासक के रूप में भण्डारकर ने एल्फिस्टन कालेज, बम्बई, डेकन कालेज, पूना एवं बम्बई विश्वविद्यालय में सेवाएं दी।

15.3.1–भण्डारकर के ऐतिहासिक कार्य

भण्डारकर की समस्त कृतियों–महत्वपूर्ण पुस्तकों, लेखों एवं व्याख्यानों का संग्रह 2482 पृष्ठों में *कलेक्टेड वर्क्स ऑफ सर आर.जी. भण्डारकर* शीर्षक से भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना द्वारा प्रकाशित हुआ है। जिन ऐतिहासिक कृतियों से भण्डारकर को प्रसिद्धि मिली उनमें *'अर्ली हिस्ट्री ऑफ डेकन'* अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ये पुस्तक 1884 ई0 में प्रकाशित हुई थी। इस ग्रन्थ में प्रारम्भिक काल से लेकर मुस्लिम आक्रमण तक दक्कन का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रन्थ की रचना में उस समय तक उपलब्ध सभी प्रकार के ऐतिहासिक तथ्यों का उपयोग किया गया है। मौर्यों से लेकर सातवाहन वंश, प्रारम्भिक चालुक्य, राष्ट्रकूट, परवर्ती चालुक्य, कलचुरियों, प्रारम्भिक एवं परवर्ती यादवों और शिलाहारों के इतिहास का महत्वपूर्ण तरीके से विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ राजनीतिक इतिहास के साथ ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सांस्कृतिक पक्षों पर गहनता से पड़ताल प्रस्तुत किया गया है।

इतिहास से संबंधी उनकी दूसरी महत्वपूर्ण कृति *'ए पीप इन दि अर्ली हिस्ट्र ऑफ इण्डिया'* है। यह पुस्तक 1890 में प्रकाशित हुई। यह पुस्तक उत्तर भारत के इतिहास का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करता है। इसमें आर्यों, शुंगों, इण्डो–बैक्ट्रियन यूनानी, शको, क्षत्रपों तथा गुप्तों के इतिहास का विवेचन किया गया है। इस विवेचन में गुप्तों के इतिहास को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। भण्डारकर की इतिहास पर एक अन्य महत्वपूर्ण कृति *'वैष्णविज्य, शैविज्य एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम'* है। इसका प्रकाशन 1913 में हुआ था। इस ग्रन्थ में भण्डारकर में वैष्णव, शैव एवं कतिपय अन्य लघु धार्मिक संप्रदायों का क्रमबद्ध इतिहास सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया। इसकी रचना में उन्होंने साहित्य, अभिलेख, मुद्रा तथा शिल्प संबंधी सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग किया। उनकी यह कृति भारतविद्या (Indology) की अप्रतिम रचना मानी जाती है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त उनके लेख व भाषण तत्कालीन भारत तथा विदेशों के शीर्ष शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे जो कि प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के विविध पक्षों से होते थे।

15.3.2–ऐतिहासिक पद्धति

भण्डारकर की ऐतिहासिक कृतियों एवं भाषणों से उनकी इतिहास पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। उनकी ऐतिहासिक कृतियों से स्पष्ट होता है कि वे वास्तविक एवं तथ्यपरक इतिहास के समर्थक थे। अपने इतिहास दृष्टि को स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि ''इतिहासकार को सर्वप्रथम निष्पक्ष होना चाहिए। उसका लक्ष्य शुद्ध

सत्य के अतिरिक्त कुछ नहीं होना चाहिए। उसे हर मामले में प्रस्तुत साक्ष्य की विश्वसनीयता जाँचनी चाहिए एवं देखना चाहिए कि वह जो कुछ कह रहा है यह सम्भवतः है या नहीं''। इस विषय में भण्डारकर रांके के समर्थक थे कि इतिहासकार का कार्य भूतकाल का उस रूप में वर्णन करना है जैसा की वह था। उनके विचार से प्राचीन भारतीय इतिहास के विद्यार्थी का प्रमुख दायित्व यही हैं कि वह इस बात का अन्वेषण करे कि कोई ऐतिहासिक घटना कब और क्यों घटित हुई है।

इतिहास संबंधी अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण भण्डारकर किसी भी ऐतिहासिक विषय पर लिखने के पूर्व इस विषय पर उपलब्ध समस्त ऐतिहासिक तथ्यों की परीक्षा एवं उनके तुलनात्मक महत्व का विश्लेषण करते थे। वह अपने ऐतिहासिक तथ्यों के अधिवक्ता न होकर एक न्यायधीश के रूप में व्यवहार करते थे। भण्डारकर का यह भी मानना था कि इतिहास में केवल राजनीतिक इतिहास को ज्यादा महत्व नहीं मिलना चाहिए वरन् समस्त मानव गतिविधियों को इसमें समाहित करना चाहिए। अपनी इसी मान्यता के कारण भण्डारकर ने जिस काल का इतिहास लिखा उस काल के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि स्थितियों पर भी प्रकाश डाला। वे इतिहास में अलौकिक हस्तक्षेपों का यथासम्भव दूर रखना चाहते थे। उनका इतिहास लेखन अनुभवजन्य ऐतिहासिक विवरणों पर ही आधारित था।

15.4 काशी प्रसाद जायसवाल

काशी प्रसाद जायसवाल का जन्म 1881 ई0 में हुआ था। उनका परिवार उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले का एक सम्पन्न परिवार था। जायसवाल की प्रारम्भिक शिक्षा मिर्जापुर के लन्दन मिशन स्कूल में हुई। आगे की पढ़ाई उन्होंने बनारस के क्वीन्स कालेज में की। इसके पश्चात् वे इंग्लैण्ड चले गए और वहाँ पर इतिहास विषय में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की और वहीं से बार–एट–ला भी किया। 1909 में भारत लौटकर इतिहास विषय के प्रवक्ता के रूप में कार्य करना आरम्भ किया किन्तु राष्ट्रवादी गतिविधियों में लगे होने के कारण अंग्रेजी सरकार के कोप का भोजन बनाना पड़ा और इन्हें अध्यापन करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सका। सरकार ने उन्हें एक 'खतरनाक क्रान्तिकारी' घोषित कर दिया था, क्योंकि वह मानती थी कि जब जायसवाल इंग्लैण्ड में कानून की पढ़ाई कर रहे थे, तब वे वहाँ भारत में ब्रिटिश शासन का विरोध करने वाले इण्डिया हाउस के क्रान्तिकारियों के गैंग में सम्मिलित हो गए थे। इसके पश्चात् उन्होंने कलकत्ता हाइकोर्ट में एडवोकेट के रूप में कार्य करने लगे। किन्तु यहाँ भी राजनीतिक क्रियाकलापों से सम्बद्ध बताकर सरकार द्वार प्रताडित किया जाने लगा। अतः वे पटना आ गए और यहाँ उन्होंने वकालत आरम्भ किया तथा इसके साथ ही उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित शोधों में अपने को संलग्न कर लिया।

15.4.1–इतिहास दृष्टि

अपने तथ्यों एवं धारणाओं को लेकर काशी प्रसाद जायसवाल अत्यन्त सचेत रहते थे तथा उन्हे सत्य सिद्ध करने का भरपूर प्रयत्न करते थे। अनेक बार वे किसी समस्या को स्वयं एक प्रश्न के रूप उठाते थे और तदन्तर अपने पक्ष में उसका समाधान समस्त सशक्त–अशक्त प्रमाणों द्वारा करते थे। जायसवाल अपनी समस्त कृतियों का प्रारम्भ लम्बी ऐतिहासिक भूमिका के द्वारा करते थे। इसके बाद विषय के मुख्य भाग पर पहुँचकर निष्कर्ष निकालते है। जायसवाल ने अपने इतिहास लेखन में तुलनात्मक पद्धति का भी यथास्थान प्रयोग करते थे। उनका इतिहास लेखन राष्ट्रवादी परम्परा की उत्कट अभिव्यक्ति माना जाता है। जायसवाल को भारतीय संस्कृति की परंपराओं एवं सगठनों के प्रति अगाध स्वाभिमान था। वे विदेशी शासन को थोड़ा भी नहीं पसंद करते थे, इसी कारण प्राचीन भारत इतिहास लेखन करते हुए उन्होंने विदेशी शासन की निन्दा की है। प्राचीन भारत के साम्राज्यवादी इतिहासकारों (वी. ए. स्मिथ आदि) के विचारों का खण्डन करते हुए जायसवाल ने मत दिया है कि भारत में किसी भी विदेशी शासन का कोई भी योगदान नहीं रहा है।

15.4.2–प्रमुख कृतित्व

के. पी. जायसवालकी सबसे महत्वपूर्ण कृतियाँ *हिंदू पॉलिटी* और *'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (AD. 150-350)'* है। इन दोनों कृतियों में जायसवाल की महत्वपूर्ण अवधारणाओं के सार अन्तर्मिहित है। उनकी पुस्तक *'हिंदू पॉलिटी'* को अपने समय में अभूतपूर्व सफलता मिली। प्राच्य निरंकुशता की साम्राज्यवादी धारणा का खण्डन करते हुए जायसवाल इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत में प्राचीनतम और सफलतम गणतंत्रों अस्तित्व रहा है और यहाँ का राजतंत्र 'सीमित' एवं 'प्रबुद्ध' प्रकार का था। भारत में रीज डेविड्स ने बुद्ध के समय गणतंत्राों के अस्तित्व का उल्लेख किया था।

जायसवाल ने उनके अस्तित्व को और पूर्व में लेकर गए। उनके अनुसार वैदिक काल की 'समिति' एक संप्रभु प्रतिनिधि सभा थी जो राज्यों से सम्बद्ध सभी विषयों पर विमर्श करती थी और निर्णय लेती थी। 'सभा' कुछ चुने हुए लोगों का एक निकाय थी जो समिति के अधीन कार्य करती थी। उत्तर–वैदिक युग के गण और संघ गणतंत्रीय संगठन थे जहाँ बहुमत के आधार पर निर्वाचित एक निकाय द्वार निर्णय लिए जाते थे। बौद्ध संघ में लागू लोकतांत्रिक संचालन व्यवस्था के आधार पर जायसवाल ने प्राचीन भारतीय गणतंत्रों की शासन व्यवस्था प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। उनका मानना था कि प्रचीन भारतीय गणतंत्रों में प्रस्ताव पेश किया जाता था, उन पर वाद–विवाद किया जाता तथा बहुमत के आधार पर निर्णय लिया जाता था। उन्होंने एक 'न्यूनतम उपस्थित अर्थात् कोरम' के प्रावधान एवं जनमतसंग्रह के कार्यप्रणाली का भी प्रतिरूप प्रस्तुत किया है। प्राचीन भारत में सीमित राजतंत्र के अस्तित्व पर चर्चा करते है वे कहते है कि 'यह सिद्धान्त नहीं भी हो, किन्तु तथ्य के रूप में स्पष्ट है कि राजा का पद जनता–जनार्दन द्वारा ही सृजित था और इस पर आसीन होने वाले व्यक्ति को कुछ शर्तों का पालन करना होता था। उसके ऊपर हमेशा राष्ट्रीय सभा अर्थात् समिति होती थी जो वास्तविक संप्रभु शासक थी।

जायसवाल के अनुसार पौर और जनपद नगर तथा देश की दो राजनैतिक संस्थाएं थी जो राजसत्ता के लिए सशक्त अंकुश का काम करती थी। महाभारत के एक अनुच्छेद को राजसत्ता के सन्दर्भ में उद्धत किया गया है जिसमें पौर–जनपद से अतिरिक्त करों का अनुरोध किया गया है। प्रधानमंत्री के नेतृत्व में मंत्रिपरिषद राजसी स्वेच्छाचारिता पर एक अन्य नियंत्रक अभिकरण थी।

अपनी पुस्तक *'हिस्ट्री ऑफ इंडिया'* में राष्ट्रवाद के अग्रदूत जायसवाल के भारशिव–नागों द्वारा शक–कुषाणों को भारत से बाहर करने का उल्लेख किया है। हालांकि उनकी इस स्थापना को अनेक राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने भी स्वीकार नहीं किया है क्योंकि इस विश्लेषण के संदर्भ में उन्होंने जिन तर्कों एवं तथ्यों का प्रयोग किया है वे काफी संदिग्ध है। किंतु प्राचीन भारतीय गणतंत्रों की उनकी व्यवस्थित प्रस्तुति ने परवर्ती शोधकर्त्ताओं के लिए एक आधार का काम किया।

बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी की स्थापना काशी प्रसाद जायसवाल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस संस्था की स्थापना 1914 ई0 में हुई। यह प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति से संबंधी महत्वपूर्ण अनुसंधानों को प्रोत्साहित किया तथा 1915 से 'जर्नल ऑफ दि बिहार एण्ड ओड़ीसा रिसर्च सोसायटी' नामक शोध पत्रिका को भी प्रारम्भ किया। जायसवाल ने अनेक वर्षों तक नइसका सम्पादन किया बल्कि अपने अधिकांश लेख भी इसी में प्रकाशित कराए।पटना संग्रहालय की स्थापना भी उनका अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। प्रारम्भ में कुछ पुरावशेषों के साथ इसकी स्थापना गर्वनमेंट हाउस के एक कमरे में हुई जो बाद में हाइकोर्ट में स्थानान्तरित हो गया। जायसवाल के प्रयासों से बाद में इसे स्वतंत्र भवन प्राप्त हुआ। वर्तमान में यह एक नवीन रूप में अत्यन्त समृद्ध संग्रहालय का रूप ले चुका है।

15.5 आर. सी. मजुमदार

प्रख्यात राष्ट्रवादी इतिहासकार आर. सी. मजुदमदार का जन्म ब्रिटिश राज में 4 दिसम्बर 1888 ई0 में बांग्लादेश के फरीदपुर जिले में हुआ था। उनके पिता हलधर मजुमदार एक सम्पन्न मध्यमवर्गीय परिवार से थे अतः मजुमदार की शिक्षा उत्कृष्ट शैक्षणिक संस्थाओं में पूरी हुई। उन्होंने 1905 में रेवान्स कॉलेज कटक, उडीसा में इन्ट्रेंस की परीक्षा उत्तीर्ण की, रिपन कालेज कलकत्ता से उन्होंने स्नातक (बी.ए.) की परीक्षा उत्तीर्ण की और कलकत्ता प्रेसीडेंसी कालेज से इतिहास विषय में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। आर. सी. मजुमदार का रूझान आरंभ से ही शिक्षण कार्य की ओर था। इसीलिए उन्होंने 1912 में आन्ध्र कुषाण पर डिज़र्टेशन किया। आर. सी. मजुमदार के जीवन का दूसरा चरण शिक्षण कार्य से प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम वे ढाका के एक ट्रेनिंग कॉलेज में प्रवक्ता बने। यहीं से उन्होंने *'कारपोरेट लाइफ इन एशिएन्ट इण्डिया'* पर शोध किया। 1921 में ढाका विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफेसर बने लेकिन शैक्षणिक जीवन में एक महत्वपूर्ण समय भी आया जब ढाका विश्वविद्यालय में ही उन्हें वाइस चांसलर के पद पर नियुक्त किया गया। 1937 में 1942 तक वे इसी पद पर रहे। शैक्षणिक अवधि में आर. सी. मजुमदार ने जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि पश्चिमी देशों की यात्रा की। इसके बाद भारत के पड़ोसी देशों की संस्कृति का अध्ययन करने के लिए वृहतर भारत के देशों कम्बोडिया, सुमात्रा, अनाम, श्याम मलाया का भ्रमण किया। इस के माध्यम से उन्होंने वृहतर भारत एवं भारत के मध्य सांस्कृतिक अर्न्तसम्बन्धों का भी पहचान सुनिश्चित की। उनका यह अध्ययन निश्चित रूप से दक्षिण एशियाई सम्बंधों के लिए महत्वपूर्ण है। आर. सी. मजुमदार ने अपनी योग्यता के अनुरूप देश के कोने–कोने में स्थित शैक्षणिक संस्थाओं के बौद्धिक निर्माण में योगदान दिया इसी संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने 1950 में

बनारस कॉलेज ऑफ इन्डोलॉजी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राचार्य पद पर नियुक्त किए गये। 1953 में आर. सी. मजुमदार को सरकार की ओर से भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास लेखन की बहुत बड़ी जिम्मेदारी मिली। उन्होंने स्वतंत्रता का इतिहास लेखन समिति का निर्देशन किया। 1955 से 1959 तक वे नागपुर विश्वविद्यालय में इतिहास के प्रोफ्रेसर के पद पर नियुक्त किए गये। अपनी योग्यता से उन्होंने नागपुर को इतिहास विभाग को समृद्ध बनाया।

आर. सी. मजुमदार का प्रसिद्ध कार्य है *''हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल'* ।इसका संपादन ग्यारह खण्डों में किया गया। यह पुस्तक भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के ज्ञान का आधार बनी। इसके अतिरिक्त *कारपोरेट लाइफ इन एशिएंट इण्डिया, ऐन्शिएन्ट इण्डिया, दि वाकाटक गुप्त एज, दि क्लासिकल अकाउन्टस ऑफ इण्डिया,एशिएंट इण्डियन कालोनीज इन दि फार ईस्ट, हिन्दू कालोनीज इन दी फार ईस्ट, एंशियन्ट साउथ ईस्ट एशिया, इन्सक्रिप्सन ऑफ कम्बुज देश, हिस्ट्री ऑफ एशिएंट बंगाल एण्ड ऑफ मिडिवल बंगाल, दि अरब इनवेजन ऑफ इण्डिया, एक्सेसन ऑफ आर्यन कल्चर इन ईस्टर्न इण्डिया, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट, दि फेसेज ऑफ इण्डियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम* आदि पुस्तके उन्होंने लिखी।

15.5.1–शोध पद्धति

मजूमदार इतिहास को तथ्यपरक बनाने में विश्वास रखते हैं। साक्ष्यों पर सूक्ष्म दृष्टि एवं उनके सापेक्षिक महत्व पर उन्होंने ध्यान दिया है। मजूमदार ने *'हेरास मेमोरियल लेक्चर्स* तथा *'इण्डियन हिस्टोरियोग्राफी : सम रीसेन्ट ट्रेंडस* शीर्षक लेख से अपने इतिहास से संबंधित दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है। इतिहास से संबंधित अपने विचारों को उजागर करते हुए उन्होंने कहा है कि, ''इतिहास का संबंध सत्य के प्रति आन्तरिक जिज्ञासा से है। यह इतिहास के अध्ययन का मौलिक आधार है। इतिहास की उनकी यह अवधारणा इतिहास लेखन के दो महान दार्शनिकों– नीबूर और रांके के विचारों से प्रभावित है। मजूमदार इतिहास की सैद्धान्तिक व्याख्या करते हुए कहते है कि, ''सत्य, केवल सत्य और पूर्ण सत्य ही इतिहास का लौह–कवच होना चाहिए तथा इसी के आधार पर विभिन्न योजनाओं या प्रतिमानों के विन्यास निर्मित किये जा सकते है।

इस दृष्टिकोण के पोषक प्राचीन भारत के इतिहासकार कल्हण को वे अपना आदर्श मानते है। इसी प्रकार आधुनिक युग को इतिहासकार यदुनाथ सरकार में भी दे तथ्यपरक इतिहासों की प्रमुखता पाते हैं। यदुनाथ सरकार के विचार को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है कि ''मैं इस बात की चिंता नहीं करता कि सत्य प्रिय है या अप्रिय और आधुनिक घटनाचक्र से सामंजस्य रखता है या नहीं। मैं इस बात की चिंता नहीं करता कि सत्य मेरे देश के यश के लिए आघात है या नहीं। यदि आवश्यकता हुई तो मैं अपने मित्रों और समाज के उपहास एवं आक्षेप को सत्य का उपदेश देने के लिए धैयपूर्वक सहन करुँगा। लेकिन फिर भी मैं सत्य का अन्वेषण करूँगा, सत्य को समझूँगा और सत्य को स्वीकार करुँगा। यही एक इतिहासकार का दृढ़ संकल्प होना चाहिए।''

डा. मजूमदार के इतिहास लेखन का क्षेत्र अतिविस्तृत है। उन्होंने न केवल प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन किया है अपितु मध्यकालीन, आधुनिक भारत तथा स्वतंत्रता आंदोलन का भी विस्तृत इतिहास लेखन किया है।

15.5.2–प्रमुख अवदान

1–दक्षिण–पूर्व एशिया की इतिहास एवं संस्कृति को प्रकाशित करना

दक्षिण पूर्व एशिया की संस्कृति को प्रकाशित करने वाले विद्वानों में रमेश चन्द्र मजूमदार अग्रणी है। इस विषय पर उनकी एक महत्वपूर्ण कृति *एंशियंट इंडियन कॉलोनीज इन द फार ईस्ट* के रूप में है। यह कृति इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें फ्रेंच या डच उपनिवेशवादियों से अनभिज्ञ पाठकों को दक्षिणी पूर्वी एशिया के एक हजार वर्ष के इतिहास तथा प्राचीन भारतीय प्रयत्नों का एक व्यवस्थित विवरण प्रदान किया।

2–प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति की व्याख्या

मजूमदार ने प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति की विस्तार से व्याख्या अपने ग्रन्थ *कारपोरेट लाइफ इन एशिएंट इण्डिया* में किया है। उनका मानना है कि प्राचीन भारतीयों में सहकारिता की भावना अत्यन्त प्रबल थी। इस कारण ही सांस्कृतिक क्षेत्र में हम अत्यन्त उत्कृष्ट कार्य कर पाए। प्राचीन भारत में विविध प्रकार की राजनैतिक प्रणालियों एवं संस्थाओं का संतुलन बनाकर एक स्वस्थ राजनैतिक जीवन को संभव बनाया, जहाँ शासक अत्यन्त शक्तिशाली होते

हुए भी विविध प्रकार के कर्त्तव्यों को निभाने के लिए उत्तरदायी था। इसी प्रकार सामाजिक जीवन में शिक्षण संस्थाए, गोष्ठी गृह, सामाजिक उत्सव आदि सहकारी जीवन के महत्वपूर्ण बिन्दु थे। आर्थिक जीवन में व्यापारिक श्रेणियाँ और संगठन सहकारी जीवन को विकसित करने में सहायता करते थे। इन सबने मिलकर प्राचीन भारतीय जीवन पद्धति में सहयोग एवं समर्थन संबंधी मूल्यों को विकसित करने में सहायता प्रदान की।

3–हिन्दू मुस्लिम संबंधों का अध्ययन

हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दी इंडियन पीपुल के षष्ठ खण्ड में दिल्ली सल्तनत में काल में हिन्दू–मुस्लिम संबंधों का विश्लेषण करते हुए मजूमदार लिखते हैं कि दोनों समुदायों में एक समाप्त न होने वाला वैमनस्य प्रारम्भ से ही विकसित होने लगा। पीढ़ी–दर–पीढी नजदीकी पड़ोसियों के रूप में रहते हुए दोनों समुदायों के आपसी संबंध अत्यन्त ही सतही स्तर के थे। दोनों ही समुदाय अपनी मौलिक सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में कमी भी एक नहीं हो पाए। मुसलमानों की समानता और बंधुत्व की भावना ने हिन्दू धर्म की जाति व्यवस्था को प्रभावित नहीं किया। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति की सहिष्णुता और सभी धर्मों के सम्मान की भावना को मुसलमान नहीं अपना सके। इस प्रकार दोनों ही समुदाय अपने–अपने सांस्कृतिक घेरे में बने रहे और उनके संबंध सामान्य तौर पर सहयोगात्मक नहीं रहे।

15.6 आनन्द केंतिश कुमारस्वामी (1877–1941)

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के इतिहास लेखन में ए. के. कुमारस्वामी का अद्वितीय स्थान है। पूर्व और पश्चिम के कला विषयक तुलनात्मक अध्ययन को उन्होंने विलक्षणता प्रदान की तथा अपनी अन्तर्दृष्टि के आधार पर मौलिक स्थापनाओं को प्रस्तावित किया। सम्पूर्ण विश्व के समक्ष उन्होंने भारतीय कला की मूलभूत विशेषताओं को उद्घाटित किया तथा भारतीय सांस्कृतिक निधि की गरिमा का भी अध्ययन किया।

आनन्द केंतिश कुमारस्वामी का जन्म कोलम्बो (श्रीलंका) में 1877 में हुआ था। इनके पिता श्री मुन्तुकुमारस्वामी भारतीय मूल के तमिल और माता एलिजाबेथ क्ले बीबी अंग्रेज थी। जन्म के मात्र दो वर्ष बाद ही पिता की मृत्यु हो जाने पर उनकी माँ उनको लेकर इंग्लैण्ड चली गयी। इंग्लैण्ड में ही प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर कुमारस्वामी ने लन्दन विश्वविद्यालय में भूगर्भ विज्ञान और वनस्पति विज्ञान से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् उन्होंने भू गर्भ विज्ञान में अध्ययन जारी रखा। उन्होंने अपनी नौकरी की शुरूआत एक भूगर्भशास्त्री के रूप में की। कालान्तर में वे राजनीतिक विचारक, कलाविद और कला के शाश्वत दर्शन के व्याख्याकार बने।

15.6.1–शोध पद्धति

आनन्द कुमार स्वामी की शोध पद्धति अत्यन्त विशिष्ट थी। उनका तुलनात्मक विधि से अध्ययन करने में विशेष रूचि थी। विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों और उस समयावधि के दौरान ग्रन्थों और प्रतीकों दोनों के सावधानीपूर्ण विश्लेषण उनकी मुख्य विशेषता थी। वे परंपरा को अत्यन्त गहनता के साथ समझने का प्रयत्न करते है। उन्होंने प्राचीन भाषाओं के बारे में व्यापक ज्ञान के आधार पर प्राथमिक स्रोतों तक पहुँचाने का कार्य किया तथा उनके तत्वमीमांसीय संदर्भों को भी उद्घाटित करने का प्रयत्न किया। पश्चिम की बौद्धिक परम्परा का भी उन्हें गहन ज्ञान था। उन्होंने यह नहीं माना कि विज्ञान और तत्वमीमांसा आपस में विरोधी है, बल्कि संसार को देखने के दो अलग–अलग तरीके थे।

कुमारस्वामी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह माना जाता है कि उन्होंने यह समझने का प्रयत्न किया कि शुरूआती समय में लोगों ने कैसे संवाद किया और लेखन के अभाव में उनके विचारों को कैसे प्रसारित एवं संरक्षित किया गया। इस संबंध में उनका मानना है कि पारंपरिक प्रतीकों को चित्रों के माध्यम से अच्छी तरह से समझा जा सकता है। उनका यह भी मानना था कि धर्मशास्त्र व ब्रह्माण्ड विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान ही कला को ठीक से समझने की शक्ति प्रदान कर सकता है।

15.6.2–प्रमुख कार्य

आनन्द कुमारस्वामी ने 1904 में लिखना प्रारम्भ किया और जीवन पर्यन्त लेखन कार्य करते रहे। उनकी प्रारम्भिक कृतियाँ भूगर्भ शास्त्र और वनस्पतिशास्त्र से संबंधित थी। किन्तु इनके बाद उनकी कृतियाँ मुख्यतः कला संबंधी है। उन्होंने तीन सौ से ज्यादा लेखों एवं पुस्तकों का लेखन किया है जिनमें से कुछ प्रमुख कार्यों का विवरण निम्नलिखित है। *'हिस्ट्री ऑफ इंडियन एण्ड इंडोनेशियन आर्ट'* उनकी एक प्रसिद्ध कृति है। 1927 में लिखी गई इस पुस्तक दक्षिणी पूर्व एशियाई देशों की कला पर भारतीय कला के प्रभावों का आकलन किया है। उनका मानना था कि

इन देशों की कला के विकास पर भारतीय कला आदर्शों का बहुत अधिक प्रभाव रहा है। भारत एवं इण्डोनेशिया की कला के इतिहास में यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रमाणिक श्रोत माना जाता है। उनकी दूसरी महत्वपूर्ण रचना *'डान्स ऑफ शिवा* है। यह ग्रन्थ 1924 में प्रकाशित हुआ। यह उनके कला संबंधी लेखों का संग्रह है। इसमें उन्होंने शिव के ताण्डव नृत्य की अवधारणा तथा शिव से संबंधित मूर्तिकला एवं चित्रकला पर विस्तार से विमर्श किया है। नटराज मूर्ति के विभिन्न अवयवों का विश्लेषण भी अत्यन्त सारगर्भित तरीके से किया गया है। उनकी एक अन्य महत्वपूर्ण रचना *ट्रान्सफार्मेशन ऑफ नेचर इन इण्डियन आर्ट* है। यह उनके कला संबंधी व्याख्यानों का संकलन है। इनमें कुमारस्वामी ने भारतीय कला संबंधी महत्वपूर्ण विचारों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। भारतीय कला सिद्धान्तों से समानता रखने वाले जर्मन विद्वान एकार्ट के चित्रकला संबंधी विचार, भारतीय चित्रकला का विवेचन, शुक्रनीति के कला संबंधी सिद्धान्त, भारतीय मूर्तिकला की उत्पत्ति और कला के स्रोत का इतिहास आदि विषय इस ग्रन्थ में विश्लेषित किए गए है। कुमारस्वामी की यह कृति तुलनात्मक सौन्दर्यशास्त्र की श्रेष्ठ रचना है। इसमें उन्होंने पाश्चात्य कला सिद्धान्तों के साथ ही भारतीय, चीनी और जापानी कला सिद्धान्तों की समानताओं और असमानताओं का निर्देश करते हुए कला विषयक सार्वभौमिक चिन्तन–पद्धति की रूपरेखा प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने *'एलिमेंट्स ऑफ बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी', राजूपत पेंटिंग, बंगाल स्कूल ऑफ पेंटिंग* आदि पुस्तकों की रचना की।

15.6.3–कला संबंधी विचार

आनन्द कुमारस्वामी ने सूत्रात्मक वाक्यों में कला की परिभाषा दी है। उनका कहना है कि जैसे जीवन में कार्य करने के लिए, इस संसार में रहने के लिए और काम करने के लिए नियम, नीति और शास्त्र को ध्यान में रखना होता है। उसी प्रकार कला के नियम और सिद्धान्त होते है। इनका अनुकरण करके ही मूर्ति या चित्र का निर्माण किया जा सकता है। कला प्रत्येक वस्तु के अन्दर निहित है। कलाकार उस वस्तु के माध्यम से कला को प्रदर्शित करता है। वस्तुतः कला ईश्वर या परम लक्ष्य को प्राप्त करने का माध्यम है। इसके साथ ही वह परम आनन्द का स्रोत है। जर्मन कलाविद् गोयट्स का मानना है कि ''प्रत्येक कला देश व जाति–विशेष के जीवन–आदर्श, ध्येय आकांक्षा, उद्देश्य तथा अपने समय के विचारों के प्रतीक है। आस्ट्रियन कलाविद् स्ट्रैला क्रेमरिश का मानना है कि भारतीय कला भारतवर्ष के इतिहास, संस्कृति, सभ्यता और विश्वासों का संकलन है। आनन्द कुमारस्वामी का मानना है कि कला जीवन की एक प्रक्रिया अर्थात् जीवन के रहन–सहन का तरीका है, आनन्द की अनुभूति है। कला मनुष्य के सौंदर्यानुभूति में वृद्धि करता है। आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय चित्रकला की विभिन्न शैलियों यथा राजपूत, मुगल और पहाड़ी शैलियों की विवेचना की है। राजूपत चित्रकला विशुद्धभारतीय कला है, जिसका मूलस्वरूप आध्यात्मिक है। इस कला की मूलप्रवृत्ति को जानने हेतु *शुक्रनीति* नामक ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है जिसमें आदर्श चित्र बनाने की सभी दृष्टियाँ निर्दिष्ट है। मुगल कला का धर्म से कोई सम्बन्ध न होने के कारण शासकों के जीवन और मनोरंजन से संबंध रखना वाले चित्रों के व्यापक निर्माण कराए गए। कालान्तर में मुगल दरबार में चित्रकला के प्रतिबंधित होने के कारण पहाड़ी रियासतों में कलाकारों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ तो पुनः घरेलू जीवन–व्यवहार, कृष्ण–राधा एवं अन्य देवी–देवताओं तथा सामाजिक जीवन के चित्र बने जो एक प्रकार से लोक कला के प्रतिनिधि थे।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में कुमार स्वामी कला, संस्कृति एवं इतिहास पर कम ध्यान देते हुए मुख्य रूप से वैदिक दर्शनशास्त्र और अध्यात्म–विद्या पर अपने को केंद्रित किया। कुमारस्वामी का मानना है कि जब कलाकार सर्वोत्तम दैवी चित्र तैयार करता है तब उसके जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

कुमारस्वामी एक महत्वपूर्ण अवदान भारतबोध के मूल प्रवृत्ति को समझना है। उनका मानना है कि परम्परागत भारतीय चिन्तन में कुछ ऐसे तत्व है जो मनुष्य के नैसर्गिक वृत्तियों को संतुलित विकास हेतु आवश्यक है। उन्होंने सनातन दर्शन को प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, चिंतन, कला, सामाजिक संरचना और राजनीतिक संरचना का आधार माना है। वे विभिन्न परम्पराओं के मूलभूत दृष्टि को समझने की अद्भुत क्षमता रखते थे। अपनी इसी विशिष्टता के आधार पर उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की विशेषताओं को प्रस्तुत किया। कुमारस्वामी का मानना था कि आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता व्यक्ति के मांसल पक्ष को महत्व देती है। इसके साथ ही पाश्चात्य सभ्यता में इहलौकिकता केंद्र में है। तुलनात्मक रूप जब वे भारतीय सभ्यता के मूल प्रवृत्ति का विश्लेषण करते है तो पाते है कि भारतीय सभ्यता की मूल प्रवृत्ति में लोक जीवन व आध्यात्मिक उत्कर्ष दोनों का ही अद्भुत समन्वय है।

15.7 डी. डी. कोसांबी

आधुनिक भारत में इतिहास को वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने वाले इतिहासकारों में डी.डी. कोसांबी का

नाम अग्रणी है। इनका जन्म 1907 ई. में गोवा में हुआ था। इसके घर का वातावरण, शैक्षिक, प्रवृत्तियों से भरा हुआ था। इनके पिता धर्मानन्द कोसांबी बौद्ध धर्म के प्रतिष्ठित विद्वान थे। उन्होंने अनेक वर्षों तक हार्वड विश्वविद्यालय में अध्ययन कार्य किया था। डी. डी. कोसांबी की शिक्षा पूणे और हावर्ड विश्वविद्यालय से पूर्ण हुई थी। इनके अध्ययन का मुख्य क्षेत्र गणित था। कालान्तर में उन्होंने विभिन्न भाषाओं, मुद्राशास्त्र, प्राचीन इतिहास एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन किया।

कोसांबी जब भारत लौटकर आए तो उन्होंने अध्ययन कार्य करने का निर्णय लिया। वे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में गणित के विषय में प्राध्यापक के रूप में कार्य करना आरम्भ किया। गणित के क्षेत्र में उनका अध्यापन एवं शोध दोनों ही अत्यन्त उत्कृष्ट रहा। कालान्तर में वे अलीगढ विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य करना आरम्भ कर दिया लेकिन एक वर्ष बाद ही पूना के प्रतिष्ठित फर्ग्यूसन कालेज में गणित के प्रोफेसर के रूप में नियुक्त हुए। लेकिन वे केवल गणित के क्षेत्र में कार्य करने से संतुष्ट नहीं थे। अतः वे अन्य विषयों का भी अध्ययन करते रहते थे। कालान्तर में इन्हें 'टाटा इंस्टिअ्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, बंबई के गणित विभाग का प्रमुख नियुक्त किया गया लेकिन कोसंबी का प्राचीन भारतीय इतिहास विधा में प्रारम्भ से ही विशेष रूचि था। वे इस क्षेत्र मे नवीन विचारों एवं प्रविधियों का प्रयोग करने हेतु दृढ संकल्प थे।

'एन इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' (1956), *'द कल्चर एंड सिविलाइजेशन ऑफ एंशियंट इण्डिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन* (1965), *'एक्जेस्परेटिंग एसेज : एक्सरसाइज इन द डायलेक्टिकल मेथडऔर 'मिथ एंड रियल्टि : स्टडीज इन द फार्मेशन ऑफ इंडियन कल्चर*।

15.7.1–इतिहास की परिभाषा

कोसांबी का इतिहास लेखन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अध्ययन उनके द्वारा इतिहास को परिभाषित करना और इतिहास की एक नवीन अध्ययन प्रणाली विकसित करना था। प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में सबसे बड़ी बाधा वे विश्वसनीय तथ्यों और सटीक कालक्रम के अभाव को मानते है। वे प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण हेतु पुरातात्विक साक्ष्यों पर ज्यादा निर्भर रहने हेतु जोर देते है। प्रागैतिहासिक उत्पादन प्रणाली पर विचार करते हए कोसंबी कहते है कि जब कभी मानव द्वारा प्रयुक्त उपकरणों या भौतिक उत्पादन के साधनों की मात्रा और गुणवत्ता में परिवर्तन हुआ होगा तो निसंदेह उसकी जीवन शैली में भी बदलाव आया होगा। यह परिवर्तन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमाणिक है, उदाहरण के लिए यह तथ्य उत्पादन के साधनों में प्रत्येक महत्वपूर्ण आधारभूत खोज के साथ मानव–आबादी में तुलनात्मक रूप से आकस्मिक वृद्धि के रूप में दिखाई देता है। भौतिक उत्पादन के साधन सामाजिक संगठन को निर्धारित करते है, जो उनसे अधिक उन्नत नहीं हो सकते है। मानव–जीवन का यह तथ्य अर्थात् जीवन और उपलब्ध उत्पादन के साधनों के बीच यह आन्तरिक संबंध, जिसके अंतर्गत जीवन साधनों के गति के अनुरूप विकसित होता है, इतिहास की विषयवस्तु और पद्धति की आधारशिला है। तदन्तर कोसंबी इतिहास को परिभाषित करते हुए कहते है कि उत्पादन के साधनों और संबंधों में क्रमिक विकास की कालक्रम व्यवस्था के अनुसार प्रस्तुति ही इतिहास है। इस परिभाषा में इतिहास के एक निश्चित सिद्धान्त का संकेत मिलता है जिसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के रूप में जाना जाता है।

15.7.2–प्रमुख अवधारणाएँ

1–जनजाति से जाति की ओर –कोसांबी का मानना था कि भारत के अतीत को समझने का एक महत्वपूर्ण सूत्र जनजाति से जाति की ओर संक्रमण में अन्तर्निहित है। इसके अन्तर्गत लघु स्थानीय समूह एक सामान्यीकृत समाज में परिणत हो गए। यह संक्रमण मुख्य रूप से विभिन्न क्षेत्रों में हल से खेती के आरम्भ के परिणामस्वरूप हुआ जिसने पूरी उत्पादन प्रणाली को बदल दिया। इसने जनजातियों और कुलों के ढांचे को तोड़ दिया ओर जाति को सामाजिक संगठन का एक वैकल्पिक रूप बना दिया। इस परिवर्तन के अन्तर्गत कुल चिन्हों का कुल नामों फिर विभिन्न जातियों के नामों में चरणबद्ध विकास देश के विभिन्न भागों में स्थापित ब्राह्मण बस्ती की एक ऐसे अभिकरण का मात्रक थी जिसके माध्यम से हल द्वारा खेती का प्रारम्भ हुआ। इससे स्थानीय समुदायों या पथों की ब्राह्मणवादी परंपरा में आत्मसातीकरण की स्थिति उत्पन्न हुई जिसके फलस्वरूप अतंतः स्थानीय लोक समूहों का संस्कृतिकरण हुआ।

2–मिथकों की व्याख्या–प्राचीन संस्कृति के किसी भी अध्ययन के लिए मिथकों की व्याख्या अनिवार्य है। परूरवा और उर्वशी की कथा के संबंध में कोसंबी का मानना है कि इससे प्रागैतिहासिक समाजों में विवाह की संस्था

और मातृदेवी द्वारा नायक की बलि का संकेत मिलता है। उनका यह विश्वास था कि अधिकांश समाज अपनी उत्पत्ति में बहुत हद तक मातृसत्तात्मक थे किन्तु उनमें से अनेक ने पितृवंशीय प्रणाली को अपना लिया और इसलिए कई मिथक एक प्रणाली से दूसरी प्रणाली की ओर संक्रमण की स्थिति की ओर संकेत करते है। उनका मानना था कि वधु मूल्य मातृवंशीय परंपरा के जीवित बचे रहने का प्रतीक है। किन्तु वे यह भी स्वीकार करते है कि मातृसत्तात्मक परंपरा से पितृसत्तात्मक परंपरा पर आधारित अवस्था की ओर संक्रमण समरूप नहीं था क्योंकि अनेक समाज आरम्भ से ही पितृसत्तात्मक थे।

3–मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में नवीन प्रयोग–डी. डी. कोसांबी नए प्रयोग करने में बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे गणित के सिद्धान्तों के माध्यम से सामाजिक विज्ञान एवं इतिहास की समस्याओं का निराकरण करने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने सांख्यिकी के सिद्धान्तों की मदद से प्रतीकों वाले (आहत सिक्कों) पर शोध किया। इस हेतु उन्होंने 12 हजार सिक्कों को तौलकर भारत में सिक्कों के वैज्ञानिक शोध की नीवं रखी। डी.डी. कोसंबी ने सिक्कों के विज्ञान (मुद्राशास्त्र) को सिक्कों के व्यवसाय करने वाले एवं उसका संग्रह करने वालों से स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया। उनके प्रयासों का परिणाम थे कि इतिहास में सिक्कों के ज्ञान को सामाजिक–आर्थिक इतिहास को समझने का प्रमुख माध्यम माना गया। कोसंबी ने इस बात की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया कि गुप्तवंश के बाद के समय में सिक्कों की जो कमी देखी गई, उसका प्रभाव व्यापार–वाणिज्य के ह्रास के रूप में सामने आया।

4–पुरातत्वशास्त्र के क्षेत्र में योगदान– डी. डी. कोसांबी भारत के इतिहास को नवीन रूप देने में पुरातत्व विज्ञान की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने पुणें में प्रागैतिहासिक प्रस्तर उपकरणों का एक बड़ा संग्रह तैयार किया। इन उपकरणों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने प्रागैतिहासिक भारतीय संस्कृतियों के विविध पक्षों को उजागर किया। उनके प्रयत्नों का परिणाम था कि हम मध्य भारत एवं दक्कन के मध्य के प्रागैतिहासिक काल से बन रहे संबंधो के बारे में जान पाए। उन्होंने अपने शोधों द्वारा प्राचीन काल के व्यवसायिक मार्गों का भी पता लगाने का प्रयत्न किया।

5–भारतीय सामंतवाद–डी. डी. कोसांबी का मानना था कि एक तरीके के रूप में सामंतवाद की मार्क्सवादी धारणा के लिए भूमि–कृषि व दास प्रथा भारत में नहीं थी, लेकिन इसके साथ ही उनका मानना था कि भारतीय एवं यूरोपिय प्रतिरूपों के मध्य अन्य समानताएं थी जैसे उत्पादन तकनीकों का निम्नस्तर, ग्रामिणीकरण में वृद्धि और नगरीय जीवन में गिरावट, राजनीतिक विकेंद्रीकरण और परंपरागत श्रमिक संबंध और ये सभी तत्व सामंती समाज को बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है और इसी कारण भारतीय समाज हजारवर्षों से ज्यादा समय तक सामंती उत्पादन पद्धति का अंग रहा है।

राजनीतिक और मौद्रिक क्षेत्र में उन्होंने सामंतीकरण दो भिन्न प्रवृत्तियों को अनुभव किया। प्रथम 'ऊपर से' जब केंद्रीकृत राज्यों ने अनुदानों एवं रियासतों द्वारा स्थानीय अधिकार बनाए और दूसरा 'नीचे से' जब 'जमींदार गांव के भीतर से विकसित हुए (राज्य व किसान के बीच मध्यवर्ती की भूमिका निभाने के लिए)। यहाँ ऊपर (व्यापारियों) तथा नीचे (कारगरों) से उभरने वाले मार्क्सवादी संबंधों के बारे में तत्व दिखाई पड़ते है।

15.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से स्पष्ट है कि आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को एक नवीन दृ ष्टि से देखना और लिखना आरंभ किया। उनके इतिहास लेखन में तथ्यपरक इतिहास लिखने का प्रयास दिखाई देता है। साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने भारतीय ऐतिहासिक तथ्यों को काफी तोड़–मरोड़ के प्रस्तुत किया था। इसके प्रतिक्रिया में काशी प्रसाद जायसवाल, आर.सी.मजूमदार, आर.जी. भंडारकर आदि इतिहासकारों तथ्यपरक एवं भारतीय सांस्कृतिक ऐतिहासिक परम्पराओं को समेटे हुए एक समग्र इतिहास लिखने की प्रथा का आरंभ किया। इन इतिहासकारों ने भारत की राष्ट्रीयता पर बल देते हुए अपने ग्रन्थ में राष्ट्रीय भावना को प्रमुखता दी और भारत की एकता और अखंडता पर दृढ़ रहते हुए लेखन किया। यद्यपि कालांतर में मार्क्सवादी ऐतिहासिक सिद्धांतों से प्रभावित होकर डी. डी. कोसांबी जैसे इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास का सामाजिक–आर्थिक विश्लेषण प्रस्तुत किया। आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन में सांस्कृतिक इतिहास लेखन को भी काफी महत्व मिला तथा ए.के. कुमारस्वामी जैसे कलाविदों ने भारतीय कला के तत्वों से सम्पूर्ण विश्व को परिचित कराया।

15.9 सन्दर्भ पुस्तकें

- ई. श्रीधरन, इतिहास–लेख (हिन्दी अनुवाद, मनजीत सिंह सलूजा) हैदराबाद, 2020
- झारखण्डे चौबे, इतिहास–दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2016
- गोविन्द चन्द पाण्डे, (सम्पादित) इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1999
- डॉ. बुद्ध प्रकाश, इतिहास–दर्शन, हिन्दी समिति सूचना विभाग, उ0 प्र0, 1962 (प्रथम संस्करण)
- डॉ. हीरालाल गुप्त, प्राचीन भारत के आधुनिक इतिहासकार,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1990

15.10 अभ्यास प्रश्न

1. काशी प्रसाद जायसवाल के इतिहास दृष्टि पर प्रकाश डालिए ।
2. आर.जी. भंडारकर के ऐतिहासिक अवदानों की विवेचना कीजिए ।
3. आर.सी.मजूमदार के ऐतिहासिक अवदानों को प्रकाशित कीजिए ।
4. डी. डी. कोसाम्बी की ऐतिहासिक पद्धति और अवदानों का विश्लेषण कीजिए।
5. ए.के. कुमारस्वामी के कला सिद्धांतों और अवदानों का विश्लेषण कीजिए ।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333